अन्तर्जगत्
की यात्रा का ज्ञान विज्ञान

भाग-2

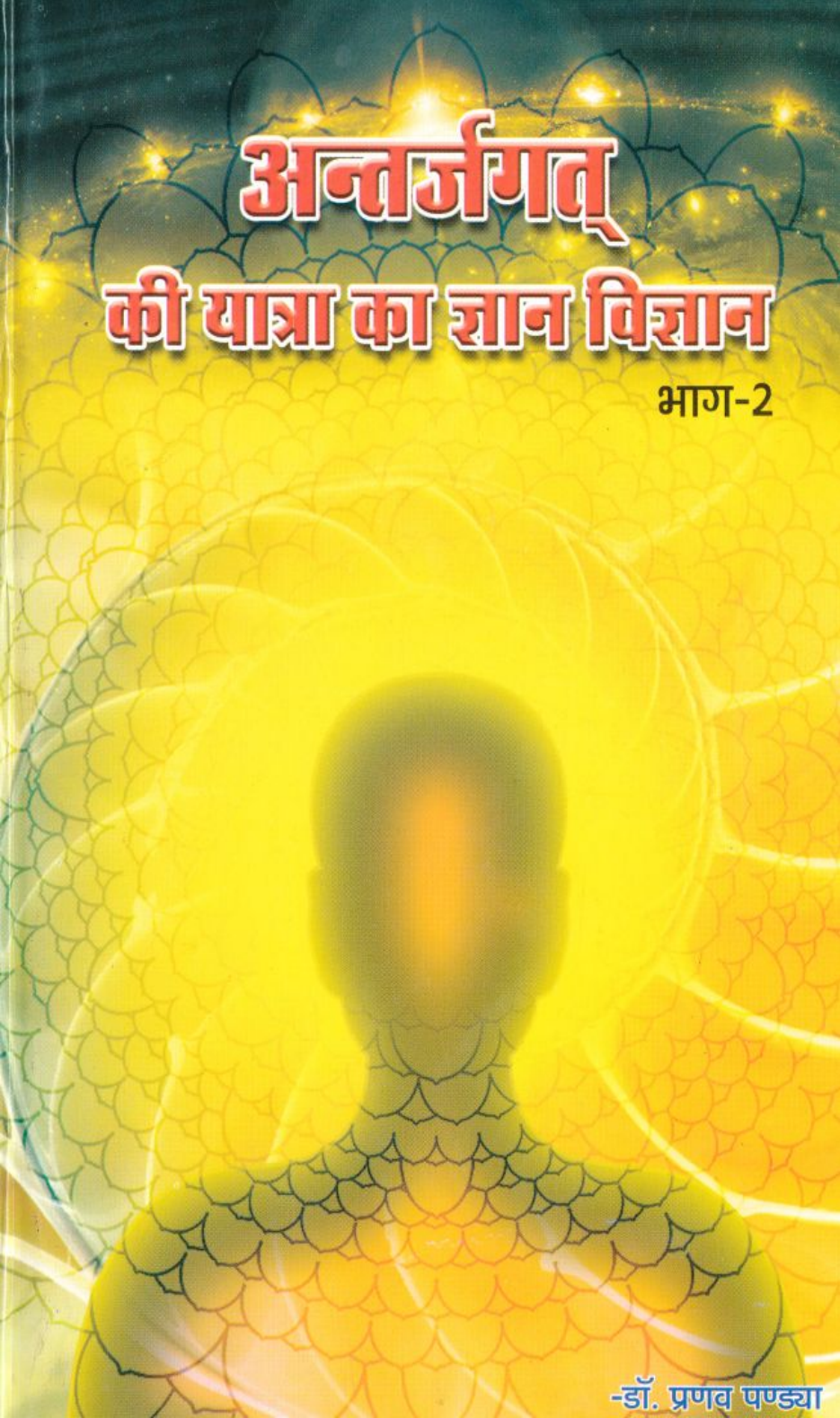

-डॉ. प्रणव पण्ड्या

अन्तर्जगत् की यात्रा का ज्ञान विज्ञान

भाग - २

साधनपाद

लेखक - डॉ. प्रणव पण्ड्या

प्रकाशक - श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट(TMD)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लेखक
डॉ. प्रणव पण्ड्या

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट(TMD)
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

प्रथम खण्ड का प्रकाशन
नवम्बर २०११

मूल्य- 52.00

पत्र व्यवहार का पता
गायत्रीतीर्थ-शान्तिकुञ्ज
हरिद्वार (उत्तराखण्ड)
249411
फोनः01334 260602 फैक्सः 01334 260866

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुक्रमणिका

चेतना के एक नूतन रहस्य का उद्घाटन.....8
क्लेशों का क्षय तप की प्रखरता द्वारा.....12
दुःखों को जन्म देते हैं पंचक्लेश.....15
ईश्वर में रमना ही क्लेशों को मिटाना.....19
अविद्या के अंधेरे में जीवन की भटकी राह.....23
स्वयं को दृश्य समझने की भूल.....27
सबसे बड़ा बैरी है 'राग'.....30
'द्वेष' साधक के लिए नरक का द्वार है.....33
देहासक्ति है मृत्युभय का मूल कारण.....36
पंचक्लेशों का जड़-मूल उपचार.....39
ध्यान एक आध्यात्मिक शल्यक्रिया.....43
अतीत के गर्भ से जन्मता वर्तमान और भविष्य.....47
कैसे बचें अशुभ कर्मों व उनके प्रभाव से.....51
पाप-पुण्य की धूप-छाया.....55
दुःखों से मुक्ति का एकमेव मार्ग- योग.....59
साधक के भविष्य के दुःख स्वतः नष्ट हो जाते हैं.....62
कैसे मिटें 'दृश्य'? कैसे मिलें इष्ट?.....66
प्रकृति में जीवन का क्या प्रयोजन है?.....70
जानें दृश्य के गुण, क्रम और भेद.....73
चित्त की विकृतियाँ ही जीवन की भ्रान्तियाँ हैं.....76
कैवल्य का सच्चा अधिकारी.....79
भोग पूर्ण होते ही प्राप्त होती है कैवल्य अवस्था.....83
मोह मुक्त होने पर ही जलेगा प्रज्ञा का दीपक.....87
अविद्या से मुक्ति ही पूर्णता की ओर ले जाती है।.....91
अविद्या का विसर्जन होते ही कैवल्य की प्राप्ति.....94
बोध की पूर्णता में अज्ञान, अविद्या का विसर्जन.....98
सम्बोधि शिखर के सात चरण.....101

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जो कलुष मुक्त कर सके, वही सच्चा योगी.....104
अष्टांग योग के आठ चरण.....108
अनुशासन को, यम के शासन को स्वीकारें.....112
पंचव्रतों को महाव्रतों की तरह निभाएँ.....116
आत्मशोधन का विज्ञान है- नियम.....120
यूँ थमे नकारात्मक विचारों का प्रवाह.....123
विकृतियाँ किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं.....127
वैर त्याग : एक बड़ी सिद्धि.....131
सत्य में प्रतिष्ठित महायोगी.....135
'अस्तेय' व्रत से साधक कभी डिगे नहीं.....138
काम ऊर्जा के परिष्कार का विज्ञान.....141
अपरिग्रह की अद्भुत महिमा.....144
देह शुद्धि से जगे वैराग्य के भाव.....148
आन्तरिक शुद्धि खोलती है सिद्धियों के द्वार.....152
संतोष के बराबर कोई सुख नहीं.....155
तप द्वारा अशुद्धियों का क्षय.....159
स्वाध्याय से इष्ट दर्शन.....163
ईश्वर शरणागति खोले समाधि के द्वार.....167
स्थिरता से शान्ति और शान्ति से सुख.....171
असीम परमात्मा से मिलन.....175
द्वन्द्वातीत बनाती है आसन सिद्धि.....179
प्राण की लय से बंधी जीवन की डोर.....183
प्राणायाम के स्थूल भेद.....187
जानें प्राणायाम का उच्चस्तरीय भेद.....190
आवरणों से मुक्त हो चित्त.....193
तब मन धारण की योग्यता पा लेता है.....197
विक्षेपों से मुक्ति की राह.....201
इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण की दशा.....205

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अन्तर्वाणी

अन्तर्यात्रा का ज्ञान-विज्ञान विरले सौभाग्यशाली साधकों को सद्गुरु की कृपा से मिलता है। यह विरल सौभाग्य मुझे युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में उन्हीं की कृपा व अनुग्रह से मिला। अपने जीवन के अनेक वर्ष मैंने अन्तर्यात्रा के इस प्रकाश पथ पर चलते और इसके विलक्षण व अलौकिक अनुभवों को बटोरते हुए बिताए। अब समय इन अलौकिक अध्यात्मिक अनुभवों के वितरण का आया है। इसी क्रम में अन्तर्यात्रा के ज्ञान-विज्ञान का प्रथम भाग प्रकाशित किया गया था। जिसकी सर्वत्र समान रूप से सराहना की गयी। अन्तर्यात्रा के पथिकों, अध्यात्म विद्या के जिज्ञासुओं, योग साधकों एवं योग के विद्यार्थियों ने इसे भाव भरे हृदय से स्वीकारा व लाभान्वित हुए।

इस इसका द्वितीय भाग प्रकाशित किया जा रहा है। यह कई अर्थों में विशेष व विलक्षण है। योगर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्रों के प्रथम पाद को समाधि पाद कहा है और दूसरे पाद को उन्होंने साधनपाद की संज्ञा दी है। पहले समाधि फिर साधन, यह बात उतनी विलक्षण है, जितनी कि पहले फल फिर बीज। संत कबीर की ही भाँति महर्षि पतंजलि भी उलटी भाषा के मर्मज्ञ हैं। दरअसल यह भाषा की उलटफेर नहीं है, गुरुओं के निराले ढंग हैं। योगमूर्ति परम पूज्य गुरुदेव अपनी वार्ताओं में कहा करते थे कि गुरु शिष्य को पहले लक्ष्य दिखाता है, फिर साधना का मार्ग बताता है।

समाधि और साधन का संयोग भी कुछ ऐसा ही है। समाधि लक्ष्य तो साधन पथ। लक्ष्य के बिना पथ का कोई अर्थ नहीं है और पथ भी लक्ष्य को

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पाकर ही पूर्ण होता है। योग का लक्ष्य चित्त का सम्पूर्णतया निरोध है। इस निरोध अवस्था के अलग-अलग चरणों में समाधि की अलग-अलग अवस्थाएँ फलती हैं। सविकल्प एवं निर्विकल्प के अलग-अलग रूप प्रकट होते हैं। चित्त शुद्ध हो- स्फटिकमणिवत् निर्मल हो तो स्वाभाविक ही अपनी निरोध अवस्था पा लेता है। शुकदेव सदृश बिरले योगी इसे जन्म से ही पा लेते हैं। उनकी अन्तरात्मा में समाधि-सत्य स्वमेव प्रकट हो जाता है।

परन्तु सामान्य जनों के लिए यह सम्भव नहीं है। उनके लिए महात्मा शुकदेव की सहज अवस्था जीवन का परम लक्ष्य है और इसके लिए उन्हें साधन का विज्ञान जानना पड़ता है। इसके प्रयोग एवं अनुभूतियों से गुजरना पड़ता है। ये साधनाएँ साधक के चित्त की अवस्थाओं के अनुरूप निर्देशित की जाती हैं। समाधि-लक्ष्य के लिए साधन-पथ पर चलना ही पड़ता है। कुसंस्कार जितने कठोर होते हैं, साधना उतनी ही कठिन होती है, परन्तु इस कठिन राह पर चले बिना मंजिल भी तो नहीं है। क्लेशों का नाश हुए बिना विवेक-ज्ञान भी तो नहीं है। यह वह सत्य है, जिसे युगों से हजारों-लाखों साधक अनुभव करते आए हैं, यह वह विज्ञान है, जिसका प्रयोग करने वालों ने अध्यात्म सत्य का निष्कर्ष पाया है। यह तथ्य कल भी सच था, आज भी सच है और कल भी रहेगा।

यह साधन क्या है ? क्या है इसका तत्त्व ? कैसी है इसकी प्रक्रिया ? और किस तरह होते हैं इसके परिणाम ? इन्हीं प्रश्नों का हल योग सूत्र के द्वितीय पाद में खोजा गया है, जिसे अन्तर्यात्रा के ज्ञान-विज्ञान के द्वितीय भाग में प्रकाशित किया जा रहा है। खोजने वाले पाते हैं, शेष को तो खोना ही पड़ता है। कबीर कहते हैं- 'जिन खोजा तिन पाइयाँ'। महात्मा ईसा कहते हैं- 'द्वार खटखटाओ और वह खुलेगा।' यह खोजना और खटखटाना ही तो साधना है, जो सरलतम है और जटिलतम भी। यह अति सहज है और अति कठिन भी। निर्भर करता है साधक की मनोभूमि पर, जो श्रद्धावान हैं, अपने गुरु के सच्चे भक्त हैं, उनके लिए राह के काँटे भी फूल बनते हैं।

सवाल स्वयं से पूछें- क्या अंत:करण साधना का पथिक बनने के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लिए राजी है ? यदि अंतस् से प्रफुल्लता भरी हाँ की अनुगूँज उठती है तो अंतर्यात्रा के द्वितीय द्वार में स्वागत के वंदनवार सजे हैं, जो साधक हैं, उनके लिए अनुभूतियों का नया लोक प्रतीक्षा में है। जो शिष्य हैं, भक्त हैं, उन्हें भावभरे अनुदान मिलने वाले हैं। करना बस इतना ही है कि बस चलना है अंतर्यात्रा की अंतर्धारा के साथ। इस साथ-साथ चलने से मेरे सभी अनुभव आपके अपने हो जाएँगे। फिर स्वयं ही आपमें महर्षि पतंजलि एवं परम पूज्य गुरुदेव के द्वारा प्रवर्तित एवं समन्वित योग साधना की प्रक्रिया एवं अनुभवों का अध्यात्म लोक प्रकट होने लगेगा।

अश्विन नवनात्रि !

डॉ. प्रणव पण्ड्या

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चेतना के एक नूतन रहस्य का उद्घाटन

अंतर्यात्रा विज्ञान की योग कथा के दूसरे चरण का अब प्रारम्भ है। महर्षि पतंजलि ने इस चरण को साधनपाद कहा है। पहला चरण समाधिपाद इसके बाद अब साधनपाद। योग सूत्रकार महर्षि ने साधकों के सामने पहले लक्ष्य रखा, इसकी व्याख्या की-अब प्रस्तुत करते हैं इसके लिए उपयुक्त साधना। लक्ष्य स्पष्ट न हो तो साधना में प्रगाढ़ता और तीव्रता नहीं आ पाती। लघु अनुष्ठान करने वाले सामान्य साधक भी इस तथ्य से सुपरिचित हैं कि उन्हें अपनी अनुष्ठान साधना के पूर्व संकल्प करना पड़ता है। यह संकल्प वस्तुतः अपने लक्ष्य का-उद्देश्य का-अभीष्ट का भावभरा पावन स्मरण है। इसका स्मरण उन्हें अपनी साधना में सतत् बनाये रखना पड़ता है, ताकि अनुष्ठान की ऊर्जा का प्रवाह संकल्पित दिशा की ओर बहता रहे।

कुछ यही सत्य अंतर्यात्रा के बारे में है। यात्रा करने वाले के लिए गंतव्य की पहचान आवश्यक है। पथ पर चलने वाले पथिक को अपनी मंजिल का पता होना जरूरी है, अन्यथा उसका भटक जाना सम्भव है। राह भटकें नहीं-पथ भूलें नहीं, यात्रा अधूरी एवं अपूर्ण न रहे इसलिए महर्षि ने योग साधकों के लिए समाधि का लक्ष्य रखा। इसके बाद वह समाधि के लिए प्रभावकारी साधना सुझाते हैं। 'साधना' शब्द उच्चारित किया जाता है तो सामान्यजन किन्हीं खास क्रियाओं अथवा कर्मकाण्डों को उसका पर्याय मान लेते हैं। परन्तु यह अधूरा सच है। सम्पूर्ण सच का आधार तो वह भावभरी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मन:स्थिति है, जिसमें साधक जीता है। जिसकी मन:स्थिति, अंत:करण साधनामय हो चुके हैं वही साधक है। क्रियाएँ अथवा कर्मकाण्ड तो इस मन:स्थिति को परिपक्व एवं प्रगाढ़ बनाने के लिए है।

फिर भी क्रियाओं का मूल्य है। विशेषतया उन क्रियाओं का जिनका सुझाव महर्षि पतंजलि देते हैं, क्योंकि इन क्रियाओं से एक नयी चेतना का उदय होता है। जिन क्रियाओं से योग सधे, महर्षि की दृष्टि में वह क्रियायोग है और वह क्रियायोग समाधि के लिए बड़ा ही प्रभावकारी है। यही क्रियायोग साधनपाद का प्रथम सूत्र है। महर्षि कहते हैं-

'तप: स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिक्रियायोग:'॥ २/१ ॥

शब्दार्थ--=तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि = तप-स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति तीनों; क्रियायोग: = क्रियायोग है। भावार्थ - क्रियायोग समाधि के लिए पहला प्रायोगिक आधार है और वह घटित होता है-तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण से।

महर्षि अपने इस सूत्र में योग की आधारभूत बातों को स्पष्ट करते हैं। इन आधारभूत बातों में पहली महत्त्वपूर्ण बात है-'तप'। यूँ तो तप बहुत प्रचलित शब्द है। पर इसके सही अर्थ का बोध विरलों को हो पाता है। अधिकांश जन तो भ्रांति और भ्रमों की गलियों में भटकते हुए दम तोड़ देते हैं। इन्हीं भ्रान्ति एवं भ्रमों में उनकी चेतना मूर्छित हो जाती है। परम योगी परम पूज्य गुरुदेव का जीवन तपोनिष्ठ था। अपने अनुभव की चर्चा में उन्होंने एक बार बताया था कि सबसे पहले हमने अपनी मार्गदर्शक सत्ता के निर्देश से तप को स्वीकारा। उनके द्वारा बतायी गयी जीवनशैली एवं चिंतनशैली को अंगीकार किया, परन्तु बाद में चौबीस वर्षों की पुरुश्चरण अवधि पूरी होने के बाद हमें इससे लगाव हो गया। तप की प्रक्रिया में मन ऐसा जुड़ा कि समूचे जीवन इसे करने एवं अपनाने की ठान ली।

यह तप आखिरकार है क्या ? इसके उत्तर में परम पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि दरअसल यह आध्यात्मिक जीवनशैली का दूसरा नाम है। जो तपस्वी होता है वह अपना सम्पूर्ण जीवन ईश्वर की साक्षी में जीता है। वह ऐसा कुछ भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नहीं करता और ऐसा कुछ भी नहीं सोचता, जिसे अपने आराध्य की उपस्थिति में न किया जा सके। जो लोग केवल भूखे रहने को या फिर पानी अथवा धूप में खड़े रहने को तप का पर्याय मान लेते हैं, दरअसल वे भ्रमित हैं। तप तो सहज संयम है। वासना, तृष्णा एवं अहंता से पीछा छुड़ाकर प्रभु की ओर बढ़ चलने का नाम है। इस डगर पर जो शारीरिक एवं मानसिक पीड़ाएँ होती हैं, तपस्वी उन्हें सहज भाव से सहन करता है।

क्रियायोग का दूसरा तत्त्व स्वाध्याय है। स्वाध्याय का अर्थ केवल पुस्तक पढ़ते रहना नहीं है। हाँ श्रेष्ठ साहित्य के अध्ययन को स्वाध्याय की प्रक्रिया का एक आवश्यक चरण जरूर कहा जा सकता है। संतों ने कहा भी है-

'पढ़िबे को फल गुनब है, गुनिबे को फल ज्ञान।
ज्ञान को फल हरि नाम है, कह श्रुति, संत पुरान॥'

पढ़ने का सुफल है कि पढ़े हुए पर चिंतन-मनन की प्रक्रिया चल पड़े और चिंतन-मनन की प्रक्रिया का सुफल विवेक का, ज्ञान का जागरण है। विवेक का सुफल है कि हरिनाम में प्रीति हो अर्थात् भगवद् भक्ति का जागरण हो। वेद मंत्र, संत वचन एवं पुराण के आख्यान् सभी यही कहते हैं।

श्रेष्ठ साहित्य के प्रकाश में आत्मानुसंधान की ओर गति स्वाध्याय है। इस स्वाध्याय का श्रेष्ठतम स्वरूप अर्थचिंतन करते हुए मंत्र का जप है। जो मंत्र का अर्थ चिंतन करते हुए जप करते हैं, वे मंत्र के मर्म को पाते हैं। अपने ईष्ट एवं आराध्य से एकरस होते हैं। फिर उनके लिए प्रभु की शरण सहज हो जाती है। जो तपस्वी हैं वे सहज ही प्रेरित होते हैं स्वाध्याय की ओर और जो स्वाध्यायशील हैं, वे स्वयं ही प्रभु की शरण का आश्रय लेते हैं।

ईश्वर प्रणिधान का या प्रभु शरणागति क्रियायोग का चरम है। सच तो यह है कि क्रियायोगी की सारी क्रियाएँ प्रभु अर्पित ही होती हैं। समर्पण मानव अस्तित्व में होने वाली-मनुष्य की चेतना में होने वाली अपूर्व प्रक्रिया है। जो मनुष्य की चेतना पहले कभी संसार की ओर बह रही थी, इन्द्रियों के द्वारों-झरोखों से बह रही थी, वह तप के प्रभाव से मुड़ती है आत्मानुसंधान की ओर। उसमें पनपती है आत्मचिंतन-आत्मसुधार एवं आत्मपरिष्कार की गहरी प्रक्रिया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अंकुरित होता है-बोध। चेतना में जागरण का पर्व मनाया जाने लगता है। और जो जाग्रत हो चुके हैं, वे फिर से नींद के अँधेरों में वापस नहीं लौटते। उन्हें स्वप्न एवं सुषुप्ति नहीं तुरीय भाती है।

समर्पण यही बोध है। जब चेतना में जागरण के दीप जलते हैं, जब बोध की ज्योति शिखा ऊँची प्रज्वलित हो रही होती है, तब यह ज्ञान होता है कि अँधेरा विलीन हो चुका है। अब तो एक प्रभु का प्रकाश रह गया है। इसी परमात्म ज्योति में आत्म ज्योति कब विलीन हुई पता ही नहीं चलता। बस स्वयं के समर्पण, विसर्जन एवं विलय की एक खबर स्वयं को मिलती है। चेतना का एक नव रहस्य उद्घाटित होता है। बड़ी हैरानी होती है कि अब मैं नहीं केवल हरि हैं। अपनी सम्पूर्ण अनुपस्थिति एवं परमात्मा की सम्पूर्ण उपस्थिति का भान होता है। अपनी उपस्थिति जब तक थी, तब तक केवल दु:ख था और अब जब अपनी उपस्थिति मिटी तो अस्तित्व के हर कोने में समाधि का आनन्द छा जाता है। यही तो क्रियायोग का सुफल है जो जीवन के दु:खों को हटाते हुए उसे समाधि की ओर ले जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्लेशों का क्षय तप की प्रखरता द्वारा

महर्षि द्वारा प्रवर्तित क्रियायोग का प्रधान आधार 'तप' है, स्वाध्याय इसका वैचारिक अवलम्ब है, जबकि ईश्वर के प्रति समर्पण इसका भावनात्मक अवलम्ब है। इन दोनों को क्रमिक रूप से प्रज्ञा और श्रद्धा का स्रोत कहा जा सकता है। जो अनुभवी हैं वे जानते हैं कि यदि प्रज्ञा की कड़ियाँ टूटे, यदि विचार धुँधले एवं दूषित होने लगे तो तप की क्रिया भी मन्द और बन्द होने लगती है। इसी तरह यदि श्रद्धा का स्रोत सूख जाय तो तप को प्रेरित करने वाली ऊर्जा क्षीण हो जाती है। साधना का इतिवृत्त यही कहता है कि जिसने भी सुदीर्घ तप किया है, उसकी स्वाध्यायशीलता में और ईश्वर के प्रति समर्पण में कोई कमी नहीं आयी है।

इसके प्रभाव की चर्चा में महर्षि अगला सूत्र कहते हैं-

'समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकारणार्थश्च'॥ २/२॥

शब्दार्थ - समाधिभावनार्थः = (यह क्रिया योग) समाधि की सिद्धि करने वाला; च = और; क्लेशतनूकारणार्थः = क्लेशों को क्षीण करने वाला है।

भावार्थ - क्रियायोग का अभ्यास क्लेश को घटा देता है और समाधि की ओर ले जाता है।

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र में मूलतः तीन तत्त्व हैं-१. क्रियायोग, २. क्लेश और ३. समाधि। इन तीनों में भी क्रियायोग ही मुख्य है। इसका क्लेश से ऋणात्मक सम्बन्ध है और समाधि से धनात्मक। यानि कि तप की प्रक्रिया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जितनी तीव्र होगी क्लेश उतने ही कम होंगे। इसी तरह तप की प्रक्रिया जितनी तीव्र होगी समाधि उतनी ही निकट होगी। यहाँ तप में स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान को अंतर्लीन माना गया है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि क्रियायोग का अभ्यास जटिल नहीं है, कोई भी इसे प्रयोग में लाकर इसके परिणाम पा सकता है। यह ऐसा प्रयोग है जिसे सामान्य एवं प्रारम्भिक साधक भी आज और अभी कर सकते हैं।

महर्षि पतंजलि के बारे में परम पूज्य गुरुदेव की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी। तपोनिष्ठ गुरुदेव के अनुसार क्रियायोग में तप की प्रधानता है। स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान इसमें स्वभावत: ही लीन है। अब तप क्या है ? इसे कैसे करें ? तो उत्तर बस इतना ही है कि प्रभु में प्राणों की लीनता ही तप है, परन्तु चित्त की अशुद्धियाँ, जन्म-जन्मान्तर के संचित दोष, दुष्प्रवृत्तियाँ, कुसंस्कार इसे होने नहीं देते। इसलिए इसके लिए खास तरह की जीवनशैली अपनानी पड़ती है। एक ऐसी जीवनशैली जिसमें ईश्वर विरोधी भाव, चिंतन एवं क्रिया न हो। ऐसी जीवनशैली जो जीवन की चेतना व ऊर्जा को प्रभु की ओर मोड़ दे। परम पूज्य गुरुदेव इसे 'उल्टे को उलटकर सीधा करना' कहते थे। अपने शब्दों में वह यह भी कहा करते थे कि 'अध्यात्म जीवन का शीर्षासन है।'

हममें से हर एक का अनुभव यही कहता है कि जो चल रहा है उसे उलटना बड़ा ही कष्टप्रद है। विचारों में मानसिक रूप से इसे हम कितना ही स्वीकार कर लें, परन्तु व्यावहारिक और क्रियात्मक रूप में इसे कर पाना अति कठिन एवं कष्टप्रद है। हमारी प्रत्येक आदत इसमें बाधा बनती है। चित्त के कुसंस्कार और उनसे उपजी विपरीत व जटिल परिस्थितियाँ इसमें पर्वताकार विघ्न खड़ी करती हैं। इन विघ्नों से पार पाना उत्तरोत्तर कठिन होता है। यह यात्रा न केवल कष्टप्रद होती है, बल्कि अंतहीन लगती है। सबसे पहले तो इस ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती। जो किन्हीं पिछले जन्मों के पुण्यों के कारण अपने गुरु की कृपा और आशीष से इसमें लगते भी हैं, उनका मन भी थोड़ी ही दूर चलने पर घबराने लगता है। इन विघ्नों एवं कष्टों के कारण पूरा अस्तित्व बेचैनी से भर जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है तो यह सब बड़ा कठिन, परन्तु परम पूज्य गुरुदेव एवं महर्षि पतंजलि दोनों ही कहते हैं कि तप के विघ्नों का समाधान केवल तप है। यह प्रक्रिया चलती रहे इसके लिए स्वाध्याय यानि कि सद्विचारों का संग-साथ। अंत:करण में इसके लिए उत्साह बना रहे इसके लिए बड़ी आकुलता, तीव्रता एवं भाव भरे मन से भगवान को पुकारना। अपने आपको क्षण-प्रतिक्षण भगवान में समर्पित, विसर्जित एवं विलीन करना। परम पूज्य गुरुदेव इस पूरी प्रक्रिया को एक दूसरे ही ढंग से परिभाषित करते थे। उनके अनुसार यथार्थ क्रियाएँ तो स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान है। इसमें जो भी कष्ट मिले उन्हें धैर्य, उत्साह एवं साहसपूर्वक प्रसन्न भाव से सहन करना ही तप है।

मीरा ने अपने साँवरे को समर्पण में जो भी सहन किया वह सबका सब तप था। ईसा ने अपने ईश्वर पिता के प्रति समर्पित भाव से जीने के लिए जो कष्ट सहे, वह सभी तप था। जिनसे ईश्वर की तात्त्विक धारणा न बन पड़ती हो, उन्हें अपने सद्गुरु के प्रति समर्पण को सब कुछ मान लेना चाहिए। इस पूरी प्रक्रिया में मिलने वाले सभी कष्टों को धैर्यपूर्वक सहन करना तप है। सार रूप में हम यह भी कह सकते हैं कि सद्गुरु का स्मरण स्वाध्याय का उच्चत्म रूप है और उन्हें समर्पण ईश्वर प्रणिधान का पर्याय। इस तरह यदि क्रियायोग की पूरी प्रक्रिया को नयी परिभाषा दे तो यह कहा जा सकता है कि सद्गुरु का स्मरण एवं उन्हें ही भाव भरे मन से समर्पण और इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में मिलने वाले सभी कष्टों को अविराम प्रसन्न भाव से सहते रहना तप है।

यह क्रियायोग योग साधक के अस्तित्त्व में अविराम चलते रहना चाहिए। यदि यह चलता रहे तो स्वत: ही क्लेशों का क्षय होता है और समाधि की स्थिति बनती है। जिन साधकों ने अभी धैर्य नहीं पाया है जो थोड़े अधीर हैं, वे पूछने को उत्सुक होंगे कि यह क्रियायोग कितने दिनों में अपना सुफल देता है तो अनुभव यही कहता है कि परिणाम की पहली किरण आने के लिए योग साधक को कम से कम २४ वर्षों तक क्रियायोग का अभ्यास करना चाहिए। यदि क्रियायोग की यह प्रक्रिया २४ वर्षों तक सम्पूर्ण तीव्रता और समूची श्रद्धा से चलती रही तो साधक की साधनाभूमि में समाधि की पहली किरण का अवतरित होना सुनिश्चित है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

दुःखों को जन्म देते हैं पंचक्लेश

अन्तर्यात्रा का पथ जैसे-जैसे प्रकाशित होता है, वैसे-वैसे अन्तर्जगत उजागर होता है। और तब योग साधक दुःखों के बीजों का साक्षात्कार करता है, उसे पता चलता है कि जीवन के सभी दुःखों के कारण बीज रूप में अपने स्वयं के अस्तित्त्व में ही दबे पड़े हैं। जो भी पीड़ा-परेशानी हम अनुभव करते हैं उसके कारण हमीं में छिपे हैं। इन्हें बाहर समझना केवल एक भ्रम है। हालांकि इस भ्रम के शिकार लगभग सभी होते हैं। ऐसे भ्रम को सच समझने की भूल भी प्रायः सभी से होती है। और हो भी क्यों न? क्योंकि खुद की आँखें इसकी गवाही देती हैं। सभी इन्द्रियाँ इसकी अनुभूति की हामी भरती हैं और अपने को चतुर व कुशल समझने वाली बुद्धि इस भ्रम को सही ठहराने के सभी आयोजन करती है।

वास्तव में दुःखों के कारण क्लेश हैं, ऐसा योग सूत्रकार मानते हैं। सामान्य जीवन में दुःख एवं क्लेश को एक दूसरे का पर्याय माना जाता है, परन्तु महर्षि पतंजलि के शब्दकोश में 'क्लेश' एक खास पारिभाषिक शब्द है। यहाँ इसके अर्थ गहरे, सूक्ष्म एवं दार्शनिक-आध्यात्मिक हैं, इन अर्थों में क्लेश दुःखों का कारण है। इसे इस भांति भी कहा जा सकता है कि 'क्लेश हटे तो दुःख मिटे'। ये क्लेश कौन-कौन से हैं? इस पहेली का हल महर्षि अपने अगले सूत्र में देते हैं-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ २/३ ॥

शब्दार्थ- अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेषः= अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (ये पाँचों); क्लेशाः = क्लेश हैं।

भावार्थ- दुःख उत्पन्न होने के कारण हैं, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

महर्षि पतंजलि के अनुसार ये पाँच क्लेश ही हमारी पीड़ा एवं सभी परेशानियों का मूल कारण हैं। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव का कहना था कि इन्हीं पाँचों के कारण चेतन, अमल और सहज सुखराशि-जीवात्मा बार-बार पंचमहाभूतों के फंदे में फंसता है, संसार और सांसारिकता के पीड़ा चक्र में अनगिनत बार उलझता और कराहता है। जीवन का रूप कोई भी हो और कहीं भी हो, दुःखों की त्रासदी हर कहीं बनी रहती है। इसके लिए कितना भी सोचा जाय, कितना भी किया जाय पर यथार्थ जस का तस बना रहता है। गुरुदेव कहते थे कि दुनिया भर के वैज्ञानिकों ने सोचा कि साधनों की कमी के कारण संसार में दुःख है। और उन्होंने साधन जुटाने के लिए अनेक तरह के अनुसन्धान किए। उनके ये अनुसन्धान सफल भी हुए, साधनों का अम्बार जुटा भी। इससे दुःखों का रूप तो बदला, परन्तु इनकी संख्या कम नहीं हुई बल्कि बढ़ी।

दुनिया में जो दार्शनिक थे उन्होंने दुःख का कारण अज्ञान में खोजा। और ये सच के काफी करीब पहुँचे। परन्तु सही ढंग से न तो सच को खोज सके और न तो पा सके। क्योंकि इन्होंने ज्ञान का अर्थ अक्षर ज्ञान तक ही सीमित रखा। शिक्षा के प्रसार से लाभ तो बहुत हुआ परन्तु पूरी बात नहीं बनी। अलग-अलग देशों के अलग-अलग दार्शनिकों ने ज्ञान के बारे में अनेकों मत और मंतव्य दिए। परन्तु सही अर्थ तक केवल अध्यात्मवेत्ता-तत्त्वदर्शी दार्शनिक ही पहुँच सके। इन्होंने कहा दुःखों का कारण अज्ञान है, यह बात सही है। पर यह अज्ञान मूल कारण नहीं है। इस अज्ञान का भी कारण है और वह कारण है अविद्या।

परम पूज्य गुरुदेव का कहना था कि यदि महर्षि पतंजलि के इस महत्त्वपूर्ण सूत्र पर गहन विचार किया जाय तो इससे कई गम्भीर अर्थ प्रकट

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होंगे। अपनी आध्यात्मिक चर्चाओं में परम पूज्य गुरुदेव का कहना था कि क्लेशों की संख्या गिनाने वाले इस सूत्र में योगर्षि द्वारा कहा गया क्लेशों का क्रम भी महत्त्वपूर्ण है। महत्त्वपूर्ण इनकी संख्या भी है। सबसे पहले संख्या की बात सोचें तो जीव के काया क्लेश का निर्माण करने वाले महाभूत भी पाँच ही हैं। इस काया में अनुभव का स्पर्श देने वाली ज्ञानेन्द्रियाँ भी पाँच ही हैं। काया को क्रियाशील करने वाली कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच ही है। काया की स्थिति, अनुभवों में व्यतिक्रम एवं कर्मों में अकुशल स्थिति इन्हीं पंचक्लेशों के कारण होती है। इन पंच क्लेशों में कमी होते ही अनुभवों में स्पष्टता, सार्थकता एवं कर्मों में कुशलता अपने आप ही आने लगती है।

महर्षि पतंजलि द्वारा उपदिष्ट इन पंचक्लेशों के क्रम को भी युगऋषि गुरुदेव महत्त्वपूर्ण मानते थे। उनके अनुसार पंच क्लेशों में सर्वप्रथम स्थान अविद्या का है। यही सभी क्लेशों का मूल है। आचार्य शंकर जैसे परम ज्ञानी ने भी अपने वेदान्त चर्चा में इसे ही प्रकारान्तर से सभी भ्रमों का कारण कहा है। इस अविद्या के कारण ही आत्मा अपने होश गंवा देती है। इस वजह से परम ज्ञानमय आत्मा का ज्ञान सुप्त और लुप्त हो जाता है। स्थिति कुछ ऐसी विचित्र बनती है, जिसे सही से बताया नहीं जा सकता। बस कुछ ऐसा कि राजा अपने राजा होने को भूल जाय और स्वयं को भिखारी समझने लगे। अपने होश गंवा देने की विडम्बना के कारण ही अस्तित्त्व में अस्मिता का उदय होता है। विराट् सर्वव्यापी ज्ञानमय आत्मा स्वयं को क्षुद्र अहं समझने लगती है। और इसी वजह से उसमें अनेकों क्षुद्रताओं का जन्म होने लगता है। अनेकों बन्धन उसे बांधने लगते हैं। परम मुक्त जीव बन्धन में छटपटाने लगता है।

अविद्या के प्रभाव में होश गंवा बैठी आत्मा अपने स्वरूप को भूलकर प्रकृति से गांठ जोड़ लेती है। अस्मिता ही है वह गांठ। इस अस्मिता से उसमें पनपती है- राग की आसक्ति। सुख की लालसाएँ उसे बांधती है। सुख मिले और सुख बना रहे। इन्द्रिय संवेदन-मानसिक अनुभव बार-बार प्रीतिकर हों, यही तो राग है। जो इसके विपरीत है, उससे स्वाभाविक द्वेष पनपता है। इसे घृणा का भी नाम दिया जा सकता है। जिससे द्वेष होता है, उससे विनाश की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावना जगती है। सुख पाने की आसक्ति हो, या दु:ख से विरक्ति, दोनों ही हमें बांधती है। दोनों ही जीवन से शरीर से मोह पैदा करते हैं। हम जीवित रहना चाहते हैं, सुखों के भोग के लिए। हम जीवित रहना चाहते हैं, दु:खों के, अपने द्वेषियों के वैरियों के विनाश के लिए।

जीवन से खास तौर पर अपने शरीर से चिपके-चिपटे रहने की लालसा अभिनिवेश है। चुंकि मृत्यु शरीर को छुड़ा देती है, इसलिए मृत्यु के भय को भी अभिनिवेश कहा जाता है। साधारण जनों की बात कौन कहे ? ज्ञानी भी मृत्यु के भय से घबराते हैं। मौत सभी को डराती है। दरअसल डर मृत्यु का नहीं होता। डर होता है इस बात का कि हमारे सुख के साधन छूट जाएँगे। डर इस बात का होता है कि जिन्होंने भी हमें दु:ख दिया अब हम कभी उनसे बदला नहीं ले पाएँगे। इस तरह से कभी कम और कभी ज्यादा दु:खों के बदलते नाम और रूपों के साथ, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश ये पाँचों क्लेश अपनी उपस्थिति जताते रहते हैं। इनमें से प्रत्येक प्रभावशाली है, जब पाँचों इकट्ठे हों तब तो कहना ही क्या ?

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ईश्वर में रमना ही क्लेशों को मिटाना

पंच क्लेशों के कारण जीव चेतना अनगिन दु:खों का अनुभव करती है। यदि ये क्लेश अपनी प्रगाढ़ता में हो तो जीवन का हर संयोग मन में छटपटाहट एवं आँखों में आँसू लाये बिना नहीं रहता। फिर इस पीड़ा का कारण हम ग्रह योगों में तलाशें अथवा परिस्थितियों की व्यूह रचना में। इसके लिए हम अलग-अलग व्यक्तियों को दोषी ठहराएँ या फिर सम्बन्धों की सृष्टि में अंकुरित होने वाली भावनात्मक उलझन में। जीवन में दु:खों के अनगिन नाम और रूपों के पीछे इन पाँच क्लेशों का ही अस्तित्त्व है। जिस तरह से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश इन पंच महाभूतों से देह की रचना होती है, उसी तरह अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश- ये पंचक्लेश मिलकर सभी दु:खों की सृष्टि करते हैं।

योगर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में इन पाँचों क्लेशों की विविध अवस्थाओं एवं मूल क्लेश को स्पष्ट करते हैं-

'अविद्या क्षेत्र मुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छन्नोदाराणाम्'॥ २/४॥

शब्दार्थ = प्रसुप्ततनुविच्छन्नोदाराणाम् = जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, और उदार-इन चार अवस्थाओं में रहने वाले हैं; एवं उत्तरेषां = जिनका वर्णन बाद में किया गया है। उन सभी का (अस्मिता आदि चारों क्लेशों का), क्षेत्रम् = कारण; अविद्या = अविद्या है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ - चाहे वे प्रसुप्तता की, प्रत्यावर्तन की या फैलाव की अवस्थाओं में हों, दु:ख के दूसरे सभी कारण क्रियान्वित होते हैं, जागरूकता के अभाव (अविद्या) के द्वारा ही।

महर्षि पतंजलि अपने इस सूत्र में क्लेशों की विविध अवस्थाओं एवं इसके मूल रूप पर विचार करते हैं। उनका कहना है कि क्लेश कोई भी हो, पर इसकी अवस्थाएँ चार हो सकती हैं। इनमें से पहली अवस्था प्रसुप्त है। यह वह स्थिति है, जबकि क्लेश चित्त में रहते हुए भी निष्क्रिय रहता है। इस निष्क्रिय अवस्था में उसके प्रभाव नहीं रहते हैं, परन्तु सक्रिय होते ही इसका प्रभाव ज्यों का त्यों हो जाता है। इस क्रम में दूसरी अवस्था तनु है। इस अवस्था में क्लेशों की क्रियाशक्ति क्षीण हो जाती है। इनका प्रभाव घट जाता है। महर्षि के अनुसार ऐसा तब होता है, जबकि योग साधक क्रियायोग आदि योग साधनों का अभ्यास करता है। अनुभव भी यही कहता है कि योग साधना करने वाले योगी का चित्त क्लेशों के मार-भार से रहित हो जाता है। साथ ही दु:खों का भास भी घट जाता है।

इन क्लेशों की तीसरी अवस्था विच्छिन्न है। ऐसा तब होता है, जबकि एक क्लेश का प्रभाव दूसरे क्लेश के कारण घट जाता है या दब जाता है। जैसे कि यदि राग प्रभावशाली हो तो द्वेष अपने आप ही दब जाता है। चौथी अवस्था उदार है- इस दशा में क्लेश अपना पूर्ण प्रभाव दर्शाते हैं। इसमें चित्त एवं चित्तवृत्तियाँ पूर्णतया प्रभावकारी क्लेश से आच्छादित रहती है। प्रवृत्तियों एवं परिस्थितियों पर भी इसकी छबि एवं छाया छायी रहती है। इस अवस्था में व्यक्ति की योग साधना में न तो रुचि जगती है और न ही उसके जीवन में ऐसे शुभ संयोग आते हैं।

महर्षि कहते हैं कि क्लेश की चारों अवस्थाएँ एवं चारों प्रकार अविद्या से ही उपजते हैं। अविद्या का प्रभाव ही अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश का जन्मदाता है। अपने को भूले रहने के कारण, जागरूकता खोने की वजह से, अपना होश खो देने के कारण ही ये सभी क्लेश अंतर्चेना में रहते एवं फलते-फूलते हैं। इनसे सचमुच ही छुटकारा पाना है, दु:खों से वाकई निजात पानी है तो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अविद्या भगानी होगी। जानना होगा स्वयं को, अन्यथा दर्द तो दूर होता रहेगा पर मर्ज कभी भी नहीं दूर होगा।

इस प्रसंग में बड़ी मीठी कथा है। इसे परम पूज्य गुरुदेव अपने चर्चा प्रसंगों में सुनाया करते थे। वह बताते थे कि पुराने दिनों में मथुरा-आगरा एवं आसपास के क्षेत्रों में मलैया बाबा नाम के एक साधु का बड़ा प्रभाव था। ये साधु सचमुच ही बड़े सीधे-सादे, फक्कड़ एवं स्वभाव से अलमस्त थे। राग-द्वेष, लोभ-मोह, कपट-द्वन्द्व उन्हें छू भी नहीं गया था। भगवन्नाम में इनकी अटूट श्रद्धा थी। जहाँ इनकी मर्जी होती वहीं धूनी रमाकर कृष्ण नाम की रटन शुरु कर देते। न तो इन्हें किसी चीज की चाहत थी और न किसी व्यक्ति की परवाह। मान-सम्मान अथवा संग्रह में इनकी कोई रुचि नहीं थी। सामान के नाम पर इनके पास मिट्टी की छोटी सी हण्डियाँ थी। बस यही इनका सब कुछ था। ब्रजभाषा में मिट्टी की छोटी हण्डियों को मलैया कहते हैं। यह मलैया सदा अपने पास रखने के कारण लोग उन्हें भी मलैयाँ बाबा कहने लगे थे।

सदा कृष्ण नाम जपते रहने वाले मलैया बाबा जहाँ भी अपनी धूनी रमाते, दुःखी लोगों की भीड़ लग जाती। अब इन्हें कोई तंत्र-मंत्र, जड़ी-बूटी अथवा टोटका तो आता नहीं था। सो ये दुःखी लोगों को बस अपनी धूनी से एक चुटकी राख निकाल कर दे देते। इसे लोगों की आस्था कहें या मलैया बाबा के नाम जप का प्रभाव, लोगों की परेशानी भी दूर होती। लेकिन बाबा को भीड़ से कोई भी रुचि न थी-सो वह जल्दी ही अपना डेरा वहाँ से उठा और हटा लेते। परन्तु लोगों की भीड़ तब भी जुटती। भीड़ इतनी होती कि बाबा की धूनी की राख भी खत्म हो जाती। अंततोगत्वा बाबा एक चुटकी मिट्टी आने वाले श्रद्धालुओं को देने लगे। श्रद्धा ने मिट्टी में भी प्राण फूँके, लोगों की पीड़ा मिट्टी से भी दूर होने लगी।

इन आने वाले लोगों में एक दिन एक सच्चा जिज्ञासु भी आ पहुँचा। उसने पूछा कि बाबा जीवन के सभी दुःख दूर करने का कोई स्थायी उपाय नहीं है क्या ? इस सवाल को सुनकर बाबा पहले तो चौंके फिर मुस्कराये और बोले- उपाय तो है, परन्तु कोई करने वाला नहीं है। जितने भी लोग आते हैं, दर्द का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इलाज ढूँढ़ते हैं, मर्ज का इलाज कोई नहीं ढूँढ़ता। यदि सचमुच ही कोई मर्ज का इलाज चाहे तो ? जिज्ञासु ने पूछा-तो उसे अपने चित्त से क्लेश मिटाने होंगे- बाबा बोले। ऐसा किस तरह सम्भव है ? बाबा बोले-तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर की शरणागति से। यह कथा सुनाते हुए गुरुदेव ने कहा था कि यदि कोई मन को सचमुच ही ईश्वर के नाम और रूप में रमा दे तो सभी क्लेश और इनकी सभी अवस्थाएँ तिरोहित होने लगती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अविद्या के अंधेरे में जीवन की भटकी राह

महर्षि पतंजलि ने अपने पिछले सूत्र में क्लेशों की जिन चार अवस्थाओं की चर्चा की थी, उनकी जड़ ही क्रियायोग के प्रयोग से क्षीण होने लगती है। महर्षि ने अपने पिछले सूत्र में बताया था कि जो प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न एवं उदार इन चार अवस्थाओं में रहने वाले हैं। उनका कहना है कि क्लेश कोई भी हो, पर उसके प्रकार चार ही होंगे और इन सभी का कारण अविद्या है। अविद्या न रहे तो कोई भी क्लेश न रहेगा। अविद्या ही आत्मा का मुख्य बन्धन है। इसके कटते ही जीव स्वत: ही कैवल्य अवस्था में, अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इस भावदशा में वह स्वयं का स्वामी एवं ईश्वरीय भावों एवं शक्तियों से सम्पूर्ण होता है, पर ऐसा होता तभी है जब अविद्या का अँधेरा मिटे।

महर्षि अपने अगले सूत्र में इस अविद्या की व्याख्या करते हैं-

'अनित्याशुचिदु:खानात्मसु नित्याशुचिसुखात्म-ख्यातिरविद्या'॥ २/५॥

शब्दार्थ - अनित्याशुचिदु:खानात्मसु = अनित्य, अपिवत्र, दु:ख और अनात्मा में; नित्यशुचिसुखात्मख्याति: = नित्य, पवित्र, सुख और आत्मभाव की अनुभूति; अविद्या = 'अविद्या' है।

भावार्थ = अविद्या है-अनित्य को नित्य समझना, अशुद्ध को शुद्ध समझना, पीड़ा को सुख और अनात्म को आत्म जानना।

महर्षि का यह सूत्र अपने में गहन दार्शनिक एवं आध्यात्मिक रहस्यमयता सँजोये है। अविद्या क्या है ? और इसके परिणाम क्या हैं ? इसकी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जितनी सुमनोहर व्याख्या महर्षि पतंजलि करते हैं-सम्भवत: उतनी सरल एवं सरस व्याख्या कोई अन्य नहीं कर सका है। महर्षि के इस सूत्र के गहरे में प्रवेश करें तो यह बात साफ हो जाती है कि अविद्या है भ्रम एवं अविवेक का कारण। इसके प्रभाव से विवेक एवं बोध अज्ञान के अँधेरे से ढँक जाता है और जीवन उल्टी राह पर चल देता है। इस उल्टी समझ के कारण नश्वर शरीर को अविनाशी मानने की भूल होती है। यहाँ तक कि इसी भूल की वजह से मरणधर्मा शरीर के मोह में पड़कर आत्म तत्त्व को विस्मृत कर दिया जाता है। यह बात भी ध्यान में नहीं रहती कि पंचतत्त्व की देह में हड्डी, माँस, मल, मूत्र आदि अपवित्र तत्त्वों के सिवा और भला क्या है ? जबकि आत्म तत्त्व तो परम पवित्र है, परन्तु फिर भी इस परम पवित्र तत्त्व से मुख मोड़कर अपवित्रता को सब कुछ समझ लिया जाता है।

बात केवल इतनी भर नहीं है, बल्कि जो अपवित्र एवं मरणधर्मा है वह सदा दु:खों का ही कारण बना रहता है। भोगों की प्रवृत्ति एवं लालसा के कारण रोग उसे घेरे रहते हैं। उपाय कितने भी क्यों न किए जाएँ, पर शरीर को सम्पूर्ण रूप से न तो निरोग बनाया जा सकता है और स्वस्थ। कोई न कोई विकृति एवं विकार इसे पीड़ा देते ही रहते हैं। फिर भी अविद्या के कारण भ्रम का मायाजाल इतना जटिल होता है कि इस पीड़ा के स्रोत को सुख का स्रोत मान लिया जाता है। हठवादिता तो वहाँ तक देखी जाती है कि आत्मा के अस्तित्व तक से इंकार कर इस जड़ देह को ही सब कुछ मानने की जिद की जाती है। प्रथम दृष्टि में यह सभी बातें लगती तो आश्चर्यजनक हैं, पर जमाने का सच यही है। उलटबाँसी की यह सारी लीला अविद्या के कारण रची जाती है।

अविद्या की सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या करने में महान् दार्शनिकों ने अपने समूचे तर्क कौशल का प्रदर्शन किया है। हालाँकि ये सभी व्याख्याएँ प्राय: भाष्यकार आचार्य शंकर के मत के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती है। इन भाष्यकार भगवान शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य के २/१/१४ प्रकरण में कहा है कि सत् और असत् से विलक्षण संसार प्रपंच के बीजभूत नाम और रूप, जो अविद्या कल्पित है, सर्वज्ञ ईश्वर के मानो आधारभूत है, इन्हीं को ईश्वर की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

माया, शक्ति और प्रकृति नामों से श्रुतियों तथा स्मृतियों में पुकारा गया है। ब्रह्मसूत्र भाष्य के १/४/३ प्रकरण में आचार्य अविद्या, अव्यक्त, आकाश, अक्षर एवं माया आदि शब्दों को समानार्थक बतलाते हैं और कहते हैं कि माया को तत्त्व या तत्त्व से भिन्न कहकर निरूपित नहीं किया जा सकता।

भाष्यकार आचार्य ने श्रीमद्भगवद्गीता का भाष्य करते हुए अविद्या को तामस प्रत्यय भी बताया है। इस प्रकरण में वह कहते हैं-'तामसो हि प्रत्ययः आवरणात्मक त्वात् अविद्या'-अर्थात् आवरणकर्त्ता होने के कारण तामस प्रत्यय ही अविद्या है। इन भाष्यकार भगवान ने इस विषय में अपने विभिन्न भाष्य प्रकरणों में अति गहन एवं सूक्ष्म विवेचन किया है। आचार्य का यह विवेचन इतना गूढ़ एवं गहन है कि उनके बाद के अनेकों आचार्यों एवं दार्शनिकों ने इसकी व्याख्या में अलग-अलग ग्रंथों की रचना की है। अनुभवी साधकों एवं संतों ने भी अविद्या या माया पर अपनी मार्मिक टिप्पाणियाँ की हैं। अक्कड़-फक्कड़ संत कबीर ने अपने अनुभव की बात करते हुए कहा है-'माया महाठगिनि हम जानी'-अर्थात् यह माया महाठगिनी है, हम जान गये हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहते हैं-'रमैया की दुलहिन लूटा बजार। ब्रह्मा लूटे-महादेव लुटि गए.....' अर्थात् माया जो राम (ईश्वर) की पत्नी है उसने पूरा बाजार ही लूट लिया है। अरे! उसने तो ब्रह्मा एवं महादेव को भी नहीं छोड़ा।

अपने गोस्वामी जी महाराज इसे मोह का मुख्य कारण मानते हैं। वह कहते हैं कि माया या अविद्या की मोह शक्ति इतनी प्रबल है, यह शिव एवं ब्रह्मा को भी नहीं छोड़ती। वह कहते हैं कि 'युधा भेद जधपि कृत माया,' यानि कि सारे भेद असत् होते हुए भी माया के द्वारा किये हुए है। इन दार्शनिकों एवं संतों के विचारों की गहराई में पैठ करते हुए यदि अनुभूतियों के अतल तल में प्रवेश करें तो अनूठी एवं अनोखी बात यही है कि अविद्या ही भ्रान्ति बन्धन, अविवेक का कारण है और इसका उपाय यही है कि किसी तरह यह भ्रम टूटे और विवेक जाग्रत हो। हालाँकि यह है अतिकठिन। तुलसी बाबा तो कहते हैं- कि 'बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया'-भगवान का भजन किये बिना यह करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं जाती।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और यदि भक्ति पनप जाय, योग साधक का परम तत्त्व परमात्मा से योग बनने लगे तो अविद्या का निवारण-निराकरण अति सरल हो जाता है। तुलसी बाबा तो यहाँ तक कहते हैं-'हरि सेवकहिं न व्याप अविद्या' अर्थात् भगवान के भक्त को अविद्या व्यापती भी नहीं है। सम्भवत: यही कारण है कि योगऋषि पतंजलि ने क्लेशों को घटाने वाले अपने क्रियायोग में ईश्वर प्रणिधान को मुख्य स्थान दिया है। ईश्वर प्रणिधान रूप भगवद् भक्ति का साधक के हृदय में उदय होते ही अविद्या रूपी क्लेश स्वत: ही घटने-मिटने लगता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्वयं को दृश्य समझने की भूल

अविद्या के भ्रम टूटने पर, माया के छूटने पर जीवात्मा को अपने स्वरूप का बोध हो जाता है। यह माया का आवरण यदि प्रगाढ़ बना रहे तो सूत्रकार पतंजलि कहते हैं कि 'अस्मिता' उतनी ही प्रबल होती है। अस्मिता के स्वरूप को महर्षि अपने अगले सूत्र में स्पष्ट करते हैं-

'दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ २/६ ॥'

शब्दार्थ = दृग्दर्शनशक्त्यो = दृक्शक्ति और दर्शन शक्ति इन दोनों का; एकात्मता इव = एक रूप सा हो जाना; अस्मिता = 'अस्मिता' है।

भावार्थ = अस्मिता है-द्रष्टा का दृश्य के साथ तादात्म्य।

महर्षि का यह सूत्र अपने में गहरे अर्थ छुपाये है। बड़ा गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक रहस्य है इस सूत्र में। इस क्रम में थोड़ा विचार करें तो स्पष्ट होता है कि ये क्लेश क्रम से एक-दूसरे से जुड़े हैं। पहले क्लेश का परिणाम अगला क्लेश। इसी तरह से अगले क्लेश का कारण है पहला क्लेश। इस दृष्टि से अविद्या का ही परिणाम है अस्मिता और अस्मिता का कारण अविद्या है। माया का इन्द्रजाल ज्यों-ज्यों सघन और प्रगाढ़ होता है, त्यों-त्यों अहंता बढ़ती जाती है। इस अहंता की वजह से मनुष्य गलत सोचता है, गलत देखता है और समझता भी गलत है। उसकी निर्णय शक्ति भी जाती रहती है। उसके द्वारा दुष्कर्म की स्वभाविक संरचना होने लगती है। विवेक समाप्त हो जाता है। फिर उसे कोई भी कुछ भी समझाये-सब का सब अर्थहीन एवं निरर्थक हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परम पूज्य गुरुदेव अपनी अंतरंग आध्यात्मिक चर्चाओं में इस सूत्र की बड़ी अनूठी एवं दुर्लभ व्याख्या करते थे। वह अहं, अहंकार व अस्मिता के बड़े गूढ़ अर्थ बताते हैं। एक चर्चा में उन्होंने कहा वैसे तो अहं अंत:करण चतुष्ट्य का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। मन, बुद्धि, चित्त, अहं-यही है अंत:करण चतुष्ट्य। इसमें मन एवं बुद्धि चेतन मन में क्रियाशील होते हैं, जबकि चित्त एवं अहं की क्रिया अचेतन में होती है। उनके अनुसार यह अहं वह पहला और मुख्य झरोखा है जिसके द्वारा आत्मा-प्रकृति को निहारती है, परन्तु मायावश, अविद्यावश, जब आत्मा प्रकृति के दृश्यों में इतना खो जाती है कि स्वयं के स्वरूप को भूलकर अपने आपको झरोखा समझ लेती है तो सब गड़बड़ियाँ पनपने लगती हैं। अहं ही उसका परिचय होता है। इसी को कर्त्ता होने का अभिमान होता है। स्थितियाँ कुछ ऐसी बनती है कि आत्मा का विराट्, व्यापक एवं दैवी स्वरूप सम्पूर्णतया विस्मृत हो जाता है।

अब बची रहती है तो केवल अहं की क्षुद्रता जो अभिमानवश अपना आकार बढ़ाना चाहता है। अहं का यह बढ़ता आकार ही तो अहंकार है। इसी वजह से द्रष्टा स्वयं को दृश्य समझने की भूल कर बैठता है। जो यथार्थ में देखने वाला है वह अपने को झरोखा समझ बैठता है और अपना विस्तार प्रकृति के निरन्तर परिवर्तित होते हुए दृश्यों में करता है। इनके बनने पर स्वयं को बनता हुआ अनुभव करता है और इनके मिटने पर स्वयं को मिटते हुए दिखने का भय करता है। यह पहेली कुछ उलझी हुई जरूर लगती है, परन्तु थोड़ा सा ध्यान दें तो हमारे अपने स्वयं के दैनिक जीवन में घटित होती है।

इस सच के बारे में हम यूँ भी सोच सकते हैं कि जैसे कुछ व्यक्तियों की भीड़ किसी कमरे की खिड़की से बाहर होते हुए किन्हीं रोचक दृश्यों को निहार रही है। इन व्यक्तियों में हर एक व्यक्ति खिड़की से चिपका खड़ा है और दृश्यों की रोचकता कुछ इस कदर है कि वह स्वयं को भूल गया है। यहाँ तक कि अब खिड़की नहीं छोड़ना चाहता। यदि कोई उससे खिड़की छोड़ने की बात कहता है तो वह उससे झगड़ बैठता है। उसे उस समय लगता है कि यदि खिड़की छूट गयी तो जैसे सब कुछ छूट जायेगा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पतंजलि यही सच तो समझाते हैं अपने इस सूत्र में। वह कहते हैं कि पाँच इन्द्रियों द्वारा तुम्हारा-हमारा माध्यम के साथ, शरीर के साथ तादात्म्य बन जाता है और तभी इन पाँचों के कारण अहं रोज अपने आकार को प्रकट करके अहंकार पैदा करता है। अहंकार झूठा अस्तित्व है। अहंकार वह सब कुछ है जो न आप हैं और न हम ही हो सकते हैं। यह सब कुछ वैसा ही है जैसे कि खिड़की में खड़ा हुआ आदमी स्वयं को खिड़की सोचने लगता है। ध्यान से सोचें तो हम सभी यही तो कर रहे हैं। अहं, चित्त, मन एवं बुद्धि अन्दर की खिड़कियाँ हैं। अंतर के कार्य के साधन है, इसीलिए तो इन्हें अंत:करण कहते हैं।

जबकि बाहर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाह्य कारण है। हमारी आँखें खिड़कियाँ होती है, कान झरोखे हैं। जिस हाथ से हम किसी को छूते हैं, वह एक माध्यम होती है। हममें से कोई भी न तो आँख है, न कान और न ही हाथ-पाँव। फिर भी हम सब आत्मा को भूले हुए, स्वयं को देह और अहंकार माने हुए हैं। यह सब अविद्या के भटकावे, भुलावे और बहकावे ही तो परिणाम है। यह परिणाम ही अस्मिता है, यही है अहंकार।

यही है जीवन का मूलभूत सच। जो हमें बार-बार बताता है, चेताता है कि अहंकार है द्रष्टा का माध्यम के साथ दृश्य का तादात्म्य। यदि हम माध्यम के तादात्म्य गिरा सकें तो यह अहंकार गिर जाता है। अहंकार को मिटाने का रास्ता यही है कि हम न बनाएँ अपने शरीर व इन्द्रियों के साथ तादात्म्य। यह हो सके तो तभी यह अहंकार विलीन हो सकता है। इसी पीड़ा से बचने का एक रास्ता और भी है, यदि इस अहंकार को अपने सद्गुरु का सेवक बनादें। इसे बना डालें प्रभु का अनन्य भक्त। तो फिर यह नष्ट तो नहीं होता है, रूपान्तरित अवश्य हो जाता है। कुछ इस तरह जैसे कि जली हुई रस्सी, जो दिखती तो सामान्य रस्सी की ही भाँति है पर बाँधने में समर्थ नहीं। ठीक इसी तरह से रूपान्तरित अहं भी पीड़ादायक नहीं रहता है। यदि इसे न मिटाया गया तो क्लेशों का क्रम आगे बढ़ता रहता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सबसे बड़ा बैरी है 'राग'

अहंकार का विस्तार राग के रूप में होता है। अहं के बारे में एक बड़ी अनुभव की बात यह भी है कि अहं अथवा मैं को तब तक तृप्ति नहीं मिलती, जब-तक कि उसे मेरे का अहसास न हो। मैं की तृप्ति के लिए मेरे का दायरा चाहिए, यह मेरापन ही राग है।

इसी की व्याख्या में महर्षि अपना दूसरा सूत्र उच्चारित करते हैं-

'सुखानुशयी रागः ॥ २/७ ॥'

शब्दार्थ = सुखानुशयी = सुख की प्रतीति के पीछे रहने वाला क्लेश; रागः = 'राग' है।

भावार्थ = सुख के आभास के प्रति आकर्षण एवं आसक्ति राग है। महर्षि का यह सूत्र अनमोल है। यह सम्पूर्ण सूत्र प्रायः हम सभी के जीवन में नित्य नवीन ढंग से घटित होता है। इसका मूलतत्त्व तो यथावत् बना रहता है, बस बदलते हैं तो केवल रूप। महर्षि का कहना है कि यथार्थ में तो सम्भवतः सुख कहीं है ही नहीं, बस केवल उसकी प्रतीति भर है। केवल उसका आभास मात्र होता है, उसी में साधक विरमना चाहता है। इसी आभासी छाया में वह विश्रान्ति तलाशता है जो उसे कभी मिलती नहीं, बस भटकन बनी रहती है। यहाँ-वहाँ, इधर-उधर वह भटकता रहता है। इसमें उसका जीवन ही नहीं जन्म बीत जाते हैं, पर न तो कभी विवेक जगता है और न यथार्थ की अनुभूति हो पाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महर्षि कहते हैं कि तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान हो तो इस क्लेश के क्षीण होने की उम्मीद बाँधी जा सकती है, अन्यथा तो राग का संसार बड़ा व्यापक है। राग पनपता है व्यक्तियों में। कोई हमें यूँ ही अच्छा लगने लगता है और हम अटक जाते हैं। आसक्ति और आकर्षण की डोर से बँधे हम गँवाते रहते हैं अपने संचित पुण्यों को, संचित तप को। होश तब आता है जब यह बहुमूल्य कोश सम्पूर्णतया रिक्त हो जाता है। स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का चुम्बकत्व-आसक्ति की दृढ़ रज्जु इसी सुख के आभास के कारण ही तो आ प्रकट होती है। इसे कितना ही अविवेकपूर्ण कहा जाय, पर इससे बचता कोई भी नहीं है। यहाँ तक कि जो प्रवचन देते हैं, ज्ञान की बातें करते हैं, उनके स्वयं के जीवन भी इस कालिख एवं कालिमा से दागदार दिखाई देते हैं।

सुख का आभास केवल व्यक्तियों में नहीं, बल्कि जड़ वस्तुओं में भी पनपता है। मोटर-कार, कोठी-बँगले, फैशन की चीजें और भी बहुत सी वस्तुओं से जीवात्मा की चैतन्य सत्ता को जड़ से बाँध लेती हैं, क्योंकि उसे लगने लगता है कि सम्भवत: सुख यही है। जब तक यह प्रतीति बनी रहती है, तब तक जीवनधारा वहीं अटकी रहती है। और एकदिन जब किसी अप्रत्याशित आघात से उस वस्तु के प्रति आसक्ति की डोर टूटती है तो भी चेतन नहीं होता। बल्कि ऐसी किसी अन्य वस्तु की तलाश में वह चल देता है। सारे बोध वचन इस आसक्ति के सामने फीके पड़ जाते हैं। न तो चेत आता है और न होश रहता है, क्योंकि इसके लिए कोमल-पुष्पित वाणी नहीं क्रियायोग की कठिन डगर पर चलना पड़ता है।

सुख की यह प्रतीति केवल वस्तुओं एवं व्यक्तियों में ही नहीं पनपती, बल्कि विचार और भाव-यहाँ तक कि कल्पनाओं का मायाजाल भी इस आकर्षण को बढ़ाता है। इनका स्थूल अस्तित्व न रहने पर भी चेतना इससे बँधती है। किसी को यश आकर्षित करता है तो कोई प्रेम की कच्ची डोर से बँध जाता है। किसी को विचार का आग्रह होता है तो कोई किसी अन्य भाव को पकड़कर बैठ जाता है। हालाँकि ये सभी होते हैं किसी विशेष कालखण्ड में। पानी में पनपने वाले बुलबुलों की भाँति इनका निरन्तर उदय-अस्त होता रहता है। परन्तु इसके बावजूद यह प्रक्रिया चलती रहती है। देह के रहने पर चित्त में इसके गाढ़े हुए संस्कार अगले जीवन में पुन: इस ओर चल पड़ने के लिए प्रेरित, बाधित एवं विवश करते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परम पूज्य गुरुदेव इस बारे में एक बोध कथा कहते थे। घटना सुनी हुई होने पर भी मार्मिक है। तपोलीन विश्वामित्र को अप्सरा मेनका ने सुख की छाया से बाँध लिया। गुरुदेव कहा करते थे कि सुख की लिप्सा के लिए प्राय: दो ही इंद्रियाँ लालायित रहती हैं। पहली तो जिह्वा और दूसरी जननेन्द्रिय। तभी तो ऋषि वाणी के मुखर स्वर कहते हैं-'जिह्वेपस्थ परित्यागे पृथिव्या किं प्रयोजनम्' अर्थात् जिसने जिह्वा एवं उपस्थ (जननेन्द्रिय) का परित्याग कर दिया, उसे भला समूची पृथ्वी से क्या प्रयोजन, अर्थात् फिर उसे पृथ्वी में कोई चीज नहीं बाँध सकती।

अप्सरा मेनका ने विश्वामित्र को इन्हीं दोनों की डोर से बाँध लिया था। पहले उसने वर्षों से तप कर रहे विश्वामित्र को सु-स्वादु भोजन का रसपान कराया। सालों-साल से तपस्वी विश्वामित्र सुखे-हरे पत्ते खाकर रह रहे थे। उन्होंने सालों से स्वाद जाना ही नहीं था। तभी एकायक मेनका ने उन्हें अनायास सुस्वादु भोजन आग्रहपूर्वक खिलाया। साथ ही अपने हाव-भाव से उनकी वासनाओं को हवा दी। फिर क्या मन में मनसिज पनप गया। ऊर्ध्वरेता तपस्वी का तप स्खलित होने लगा। वर्चस् ही नहीं ओजस् और रेतस् का नित्य क्षय होने लगा। दुष्कर तपस्या सुख की चाहत में नष्ट होने लगी।

इस कथा को सुना रहे गुरुदेव से जब पूछा गया कि गुरुदेव अपने असाधारण तप के बावजूद महर्षि विश्वामित्र अपने राग को क्यों नष्ट न कर सके। तो गुरुदेव ने कहा-विश्वामित्र के पास तप तो था, परन्तु स्वाध्याय से विचार शुद्धि एवं ईश्वर प्रणिधान से भावशुद्धि न की थी। इसी कमी के कारण वह सालों-साल वासनाओं की प्रबल धारा में बहते रहे। एक दिन अनायास प्रात: बेला में उदय होते सूर्य ने उन्हें चेताया। उनके भावों में गायत्री महामंत्र के स्वर पुन: मुखरित हुए। और उन्होंने मेनका को देखा फिर सूर्य की ओर-अपनी भूल उन्हें समझ में आ गयी। तपस्वी में विवेक को जगते देख सहमी मेनका वहाँ से भाग खड़ी हुई। महर्षि विश्वामित्र भी राग को क्षीण कर विराग की डगर पर बढ़ने लगे, परन्तु राग को क्षीण कर लेना ही योग साधक के लिए पर्याप्त नहीं, उसे द्वेष का कंटक भी निकालना पड़ता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

'द्वेष' साधक के लिए नरक का द्वार है

इसके लिए दु:ख के प्रति सही सोच अभीष्ट है। दु:ख के प्रति यदि सोच सकारात्मक है तो दु:ख मुक्त करता है, परन्तु यदि सोच नकारात्मक है तो यह बड़ी आसानी से साधक के गले में द्वेष का फन्दा डाल देता है। इस द्वेष की चर्चा करते हुए महर्षि पतंजलि का अगला सूत्र है–

'दु:खानुशयी द्वेष: ॥ २/८ ॥'

शब्दार्थ = दु:खानुशयी = दु:ख की प्रतीति के पीछे रहने वाला क्लेश; द्वेष: = 'द्वेष' है।

भावार्थ – द्वेष उपजता है किसी उस चीज से जो दु:ख देती है।

योग के तत्त्वद्रष्टा महर्षि पतंजलि इस सूत्र में साधना जीवन के अद्‌भुत रहस्य उजागर करते हैं।

जो मानव प्रकृति के जानकार हैं, उनसे यह सच छुपा नहीं है कि सामान्य क्रम में मानव मन की एक निश्चित संरचना है। उसके अंत:करण का एक निश्चित ढाँचा है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने विश्वास, आग्रह, मान्यताएँ, दृष्टिकोण एवं सोच हैं। इसे गलत भी नहीं ठहराया जा सकता। गलती तो होती है तब, जब वह प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति एवं परिस्थिति को अपनी इस सीमित संरचना में बाँधना चाहता है। जो भी व्यक्ति, वस्तु अथवा परिस्थिति उसकी इस सीमित मानसिक संरचना में नहीं बँधता, उसी से उसका विरोध होता है। उसके ही अपने आग्रह, मान्यताएँ एवं विश्वास उसे दु:ख देने लगते हैं। और यहीं से शुरु

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

होती है द्वेष की सृष्टि, जो बैर की कई शृंखलाओं को जन्म देती है। जिससे मनुष्य जीवन जन्मों-जन्मों तक बँधा जकड़ा रहता है।

जो द्वेष के संजाल में उलझते हैं, वे अपनी सीमित सोच के कारण न तो यह देख पाते हैं और न यह अनुभव कर पाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य, यहाँ तक कि प्रत्येक जीवधारी अपनी प्रकृति के अनुसार आचरण करता है। अब जैसे सर्प की प्रकृति क्रोध है। इस क्रोध के कारण ही वह फुफकारते हुए डसता है और अपने अन्दर का जहर उड़ेल देता है। इस प्रकृति को परिवर्तित नहीं किया जा सकता। भले ही कोई उसे कितना ही दूध पिलाये। जब कभी वह किसी को डसेगा, जहर ही उड़ेलेगा। हाँ यदि उसके विषदन्त तोड़ दिये जाएँ तो और बात है। इसी तरह नागफनी एवं बबूल को काँटों से विहीन नहीं किया जा सकता। जो भी इनसे उलझेगा उसे ये काँटें चुभेंगे ही।

जो विवेकवान हैं, जिनकी सोच समग्र एवं दृष्टिकोण परिष्कृत है वे जीवन की इस सच्चाई को समझते हैं। और वे अपनी जीवन यात्रा में प्रत्येक स्थिति का सदुपयोग कर लेते हैं। उदाहरण के लिए अमृत की मधुरता तो उपयोगी है ही, परन्तु यदि विष को औषधि में परिवर्तित कर लिया जाय तो वह भी अमृत की ही भाँति जीवनदाता हो जाता है। संसार के समूचे जीवनक्रम में जो व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति में निहित सत्य को जान लेते हैं, वे प्रत्येक घटनाक्रम का जीवन के लिए सार्थक उपयोग कर लेते हैं। उन्हें न कभी राग की डोर बाँधती है और न ही उन्हें कभी द्वेष के कंटक चुभते हैं। लेकिन जो अपनी मन:स्थिति को अपरिवर्तनीय रखकर उसके अनुरूप प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति एवं परिस्थिति को बदलना चाहते हैं, उन्हें सदा ही राग एवं द्वेष से बँधना ही पड़ता है।

और जो भी साधक इनसे बँधता है वह अपने जन्मों के संचित पुण्य एवं तप का नाश करता है। इस प्रसंग को स्पष्ट करने वाली बड़ी मधुर कथा है। यह कथा भगवान महावीर से सम्बन्धित है, जिसे परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी संगोष्ठी में सुनाया था। कथा कहती है कि मगध सम्राट बिम्बसार भगवान महावीर के दर्शनों के लिए नियमित जाते थे। राह में एक तपस्वी की कुटिया थी, जिन्हें वह वर्षों से कठिन तप करते हुए देख रहे थे। उन्हें ये भी मालूम था यह तपस्वी पहले एक बड़े राज्य के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

राजा थे। वर्षों पूर्व उन्होंने राज्य का त्याग करके तपस्वी जीवन का व्रत लिया था। एक दिन सम्राट बिम्बसार ने भगवान महावीर से जिज्ञासा की-भगवन्! आपके पास आते समय राह में मुझे जिन तपस्वी के दर्शन होते हैं, उनकी अंतिम गति क्या होगी ?

इस प्रश्न ने सभी को उद्वेलित किया। सभी भगवान महावीर के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। भगवान महावीर ने उत्तर में संक्षिप्त शब्दों में कहा-यदि वे इसी समय अपना शरीर छोड़ें तो वे सातवें नरक में जायेंगे। इतने महान तपस्वी की ऐसी दुर्गति। सहसा किसी को विश्वास नहीं हुआ। सभी ने सोचा जरूर भगवान से कोई भूल हुई है, सो प्रश्न फिर से पूछा गया। भगवान ने शून्य में देखा और मुस्कराये। फिर रुककर वह बोले-यदि तपस्वी नरेश इस समय अपना शरीर छोड़ें तो वे देवलोक में जायेंगे। उन्हें स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति होगी। कुछ ही क्षणों में ऐसा विरोधी उत्तर। मगध सम्राट हतप्रभ थे। वह सहमे से काफी देर खड़े रहे। फिर उन्होंने हिम्मत करके एक बार फिर अपना वही सवाल दुहराया। अब की भगवान महावीर के मुख पर आह्लादकारी हँसी थी। उन्होंने उस तपस्वी की दिशा को प्रणाम् किया और बोले-अब वह महान तपस्वी सभी बंधनों से मुक्त होकर कैवल्य को प्राप्त हो गये हैं। अब वह अरिहन्त हैं, उन्हें प्रणाम करो।

भगवान महावीर के इन विचित्र उत्तरों से सभी उपस्थित जन परेशान हो गये। उनकी इस परेशानी को पहचान कर महावीर ने कहा-जब मैंने पहली बार उत्तर दिया था, उस समय उन तपस्वी को सूचना मिली थी कि पड़ोसी राजा ने उनके राज्य पर हमला कर दिया है और उनके पत्नी-पुत्र मारे गये हैं। इस सूचना ने तपस्वी को आकुल कर दिया और द्वेषग्रस्त हो बदले की भावना से भर गये। इस द्वेष ने उनके लिए सातवें नरक के द्वार खोल दिये थे, परन्तु थोड़ी ही देर में उस महान तपस्वी ने स्वयं को द्वेषमुक्त कर लिया और वे फिर अपनी स्वाभाविक साधनाभूमि में विचरण करने लगे। यही उनके लिए देवलोक के प्रवेश का मार्ग था, परन्तु इस बीच उनके ध्यान की तीव्रधारा में सभी कर्म बीज विलीन हो गये। अब उनके लिए कैवल्य सहज हो गया। अपनी बात पूरा करके भगवान महावीर बोले-द्वेष साधक के लिए नरक के द्वार खोलता है जो इससे मुक्त हो सका उसके लिए कैवल्य का पथ प्रकाशित है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

देहासक्ति है मृत्युभय का मूल कारण

द्वेष के पश्चात् महर्षि पतंजलि के अनुसार अगला क्लेश अभिनिवेश है, जो अंतिम एवं चरम है। महर्षि का अगला सूत्र इसी की व्याख्या है-

'स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारुढ़ोऽभिनिवेशः' ॥ २/९ ॥

शब्दार्थ = स्वरसवाही = जो परम्परागत स्वभाव से चला आ रहा है एवं; विदुषः अपि = जो मूढ़ों की भाँति विवेकशील पुरुषों में भी विद्यमान देखा जाता है; वह (मरण भय रूप क्लेश); अभिनिवेशः = 'अभिनिवेश' है।

भावार्थ = जीवन से गुजरते हुए मृत्यु भय है, जीवन से सघन आसक्ति है और यह बात सभी में प्रबल है, विद्वानों में भी।

महर्षि के इस सूत्र में समाये हुए रहस्य गहरे और गहन होते हुए भी अनायास ही सभी की अनुभूति बनते हैं। मरण भय सभी को है फिर वह जड़ मूर्ख हो या परम विद्वान। जो आत्मा की अमरता की चर्चा करते हुए नहीं थकते, वेदान्त वचनों पर प्रवचन जिनकी जीविका है, वे सब भी मरण भय से त्रस्त रहते हैं। मरण संकट उपस्थित होने पर उनके सारे विचार ठिठके-सहमे खड़े रहते हैं। यहाँ तक कि यदि मरण का भ्रम भी उपस्थित हो जाए तो भी उनकी स्थिति डावाँडोल हो जाती है। इस मामले में ऐसे विद्वान जड़मूर्खों से किंचित मात्र भी कम नहीं है। मृत्यु का भय जितना मूर्खों को सताता है, उतना ही विद्वानों को भी। इससे तो केवल वही बच पाते हैं, जिन्होंने योगाभ्यास करते हुए तत्त्व को जान लिया है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परम पूज्य गुरुदेव अपनी अंतरंग चर्चाओं में कहा करते थे कि मैं और मेरा मरण भय को और सघन बना देते हैं। जो जितना परिग्रही है, जितना अधिक राग-द्वेष के जटिल बन्धनों से जकड़ा है, उसे उतना ही मरण भय सताता है। मृत्यु संकट और मृत्यु उसे उतना ही कष्ट देती है। जंजीर देह, दैहिक कष्ट, पारिवारिक सामाजिक संताप होते हुए भी वह मरना नहीं चाहता। मरण की घड़ी आने पर भी वह नये जीवन एवं जन्म की कल्पना करता है। मोह की डोर में बँधा हुआ वह यह सोचता है कि अपने ही घर के किसी सदस्य के घर मुझे नया जन्म एवं जीवन मिले। मृत्यु भय की सघनता के पीदे एक तत्त्व और भी है कि यह भय हमें-हम सबको पूर्व जन्मों में भी मिला होगा। फिर भी आसक्ति की डोर नहीं टूटती। बार-बार मरण होने पर भी न तो किसी तरह मरण का भय छूटता है और न ही जीवन की लालसा।

पुराणों में कथा है राजा शतद्रुम की। यह बोधकथा बड़ी प्रबोधक एवं मर्मस्पर्शी है। पुराणकार कहते हैं कि महाराज शतद्रुम बड़े प्रतापी सम्राट थे। उनका विशाल साम्राज्य, चतुरंगिणी सेना, राज ऐश्वर्य सभी कुछ ऐसा था जिसकी कथा कहते हुए लोग थकते नहीं थे। राजा शतद्रुम के सेनापति, मंत्रीगण सभी अति विश्वस्त थे। स्वयं महाराज के पराक्रम का भी पारावार नहीं था। वे जितने रणकुशल थे, उतने ही नीतिकुशल। परन्तु अपने इन अनेक गुणों के साथ महाराज राग-रंग के रसिक भी थे। विलासिता उनके अस्तित्व में रची-बसी थी।

सभी की देह कभी न कभी काल का कौर बनती है। महाराज शतद्रुम की बारी भी आ गयी। राजवैद्यों के अनगिन प्रयास भी उन्हें बचा न सके। अंत में उन्हें मरना ही पड़ा, परन्तु मरते-मरते भी उनकी जीवन लालसा छूटी नहीं। उन्होंने मरते समय अपने विश्वासपात्र मंत्रियों एवं महारानी से कहा कि मरने के बाद भी मेरा शरीर जलाया न जाए, बल्कि उसे सुरक्षित रखने का यत्न किया जाए और इस बीच किसी ऐसे तेजस्वी मुनि की खोज की जाए जो मेरे मृत शरीर में पुनः प्राणों का संचार कर दें। मंत्रियों एवं महारानी ने महाराज शतद्रुम के इस आदेश का यथावत् पालन किया। बड़े यत्न से उन्होंने महाराज की मृतकाया को सुरक्षित करने का यत्न किया और लगे परम तेजस्वी पराविद्याओं के जानकार किसी महर्षि की खोज में।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संयोग कहें या दैवकृपा ऐसे ऋषि मिल भी गये। मंत्रियों एवं महारानी ने उन्हें राजा की इच्छा से अवगत कराया। सारी बातें सुनकर महर्षि विचार मग्न हो गये। काफी देर चुप रहने पर उन्होंने कहा-इस कार्य में दो कठिनाइयाँ हैं। जिनमें से एक का हल मैं करूँगा, परन्तु दूसरी कठिनाई तुम सभी को मिलकर हल करनी पड़ेगी। ये कठिनाइयाँ हैं क्या महर्षि? यह प्रश्न महारानी का था। उत्तर में महर्षि बोले-पहली कठिनाई यह है कि हमें यह पता करना पड़ेगा कि इस समय अपनी मृत्यु के बाद महाराज की जीवात्मा कहाँ किस योनि में है? इसका हल मैं अपने योगबल से कर लूँगा और दूसरी कठिनाई यह है कि महाराज इस समय जिस योनि में हैं, उन्हें उस योनि के शरीर से मुक्त करने का दायित्व आप सब पर है, क्योंकि मैं किसी प्राणी की हत्या नहीं कर सकता हूँ। हाँ उनके उस शरीर से मुक्त करने पर मैं उन्हें परकाया प्रवेश विद्या से महाराज के शरीर में अवश्य प्रवेश करा दूँगा।

महर्षि की बात सभी को ठीक लगी। महर्षि ने अपने कथानुसार पता लगाया कि महाराज इस समय राजोद्यान में एक कीड़े की योनि में है। राज उद्यान की आसक्ति ही उन्हें वहाँ ले गयी है। सुनकर आश्चर्य तो सभी को हुआ, परन्तु साथ ही इस बात का संतोष था कि एक कीड़े को मारने में कोई हानि भी नहीं है। सेनापति दल-बल के साथ उस कीड़े को मारने राजोद्यान पहुँच गये। भागदौड़ होने लगी। वह कीड़ा अपने मरण भय से विह्वल था। इधर-उधर छिपता भाग रहा था। यह स्थिति देखकर महर्षि हँस पड़े और बोले-यही अभिनिवेश है। जो एक कीड़े में उतना है, जितना कि महाराज शतद्रुम में था। महाराज शतद्रुम जितना अपने पूर्व शरीर में सुखी थे, उतने ही वे अभी भी हैं। जब वह स्वयं अपने इस कीड़े के शरीर को नहीं छोड़ना चाहते तो उन्हें व्यर्थ परेशान न करो। सभी ने आश्चर्य चकित होते हुए महर्षि की बात मान ली। महर्षि आकाश की ओर देखते हुए जैसे स्वयं से कह रहे थे कि इस मरण भय रूपी अभिनिवेश से तो केवल कैवल्य ज्ञानी ही मुक्त होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पंचक्लेशों का जड़-मूल उपचार

योग साधक हैं, वे अनुभव करते हैं कि जीवन के आध्यात्मिक विकास पथ का यथार्थ अवरोध अपने ही कर्मबीज और कर्म संस्कार हैं। इनमें से प्रत्येक अपने सुनिश्चित समय पर सुनिश्चित कर्मफल के रूप में प्रकट होता है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आने वाले सुयोग-दुर्योग, सुअवसर-कुअवसर यथार्थ में इन्हीं की प्रतिच्छाया मात्र है।

ऐसे में हम यदि अपने जीवन के वर्तमान एवं भविष्य के स्वरूप को बदलना चाहते हैं तो हमें एक बार पुनः फिर से अपने गहरे अतीत की ओर झाँकना होगा, क्योंकि यहीं हमारे अपने वर्तमान और भविष्य की जड़ें है। हमारे जीवन की प्रत्येक सम्भावित घटना यहीं पर छुपी है। चित्त में समाहित इन कर्मबीजों में ही हमारा सम्पूर्ण भविष्य छुपा है। यदि भविष्य में हम फेरबदल के इच्छुक और उत्सुक हैं तो एक बार अतीत में बने इन कमबीजों-कर्मसंस्कारों में फेरबदल करनी होगी। ऐसा न किया गया तो हमारा सम्भावित भविष्य अपने ठीक समय पर इन्हीं कर्मबीजों-कर्मसंस्कारों के अनुरूप प्रकट हुए बिना न रहेगा। यह एक ऐसा सच है जिसे अनुभव तो सभी करते हैं, परन्तु इसे समझते कुछ विरले ही हैं।

जिस सच को योगऋषि महर्षि पतंजलि ने सम्पूर्णता में अपने सूत्रों में कहा है-उसके बहुत थोड़े से अंश को आंशिक रूप से आधुनिक मनोविज्ञान ने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपने प्रयोगों में परखा है और निष्कर्ष में यह स्पष्ट घोषित किया है कि मनुष्य अपने अतीत के किये से बच नहीं सकता। हालाँकि मनोविज्ञान की यह खोज प्रायः मनोविकृतियों तक ही सीमित है। मनोविशेषज्ञ आज यह साफतौर पर स्वीकारते हैं कि मानसिक विकृतियाँ कोई भी क्यों न हों, परन्तु उनके कारण हमारे अतीत में ही होते हैं। यदि मनोव्याधि की, बाधा की जड़ को खोजना है तो हमें अनिवार्यतः अचेतन और अवचेतन की परतें टटोलनी पड़ेंगी। इस अचेतन एवं अवचेतन की खोज की कई विधियाँ मनोचिकित्सकों ने दी हैं। कई बार तो इस प्रक्रिया में अतीत की ओर लौट पड़ना बड़ा ही अनिवार्य होता है और ब्रायन वीज जैसे मनोचिकित्सक इस विधि को रिग्रेशन थेरेपी की संज्ञा देते हैं।

महर्षि पतंजलि ने अपने प्रयोगों की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के इस दायरे को बृहद् व्यापकता दी है। उनका कहना है-केवल मनोविकृतियाँ ही नहीं, बल्कि हमारा सम्पूर्ण वर्तमान और भविष्य हमारे अपने अतीत की कोख से जन्म लेते हैं। इसलिए यदि क्लेशों के भूत को मिटाना है, दुःखों-दुर्योगों को समाप्त करना है तो एक बार फिर से हमें अंतर्यात्रा पथ पर चलकर अतीत के कर्मबीजों, कर्मसंस्कारों की सूक्ष्म संरचना में परिवर्तन करने पड़ेंगे। यह प्रयोग अपनी प्रक्रिया एवं परिणाम में बड़ा गहन एवं सूक्ष्म है। महर्षि के अगले सूत्र का विषय यही है। इसमें वह कहते हैं-

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्मा॥ २/१०॥

शब्दार्थ = ते = वे; सूक्ष्माः = सूक्ष्मावस्था को प्राप्त (क्लेश); प्रतिप्रसवहेयाः = प्रति प्रसव साधना के द्वारा करने योग्य हैं।

भावार्थ = पाँचों क्लेशों के मूल कारण मिटाये जा सकते हैं। उन्हें पीछे की ओर उद्गम तक विसर्जित कर देने से।

महर्षि का यह सूत्र अपने में कई रहस्य समेटे है। यदि इन्हें समझ लिया जाए तो व्यावहारिक जीवन की उलझनों का समाधान मिल जाता है। इस सूत्र में पहली और अनिवार्य बात महर्षि कहते हैं कि केवल वे ही क्लेश मिटाये जा सकते हैं जो अपनी अवस्था में तनु या सूक्ष्म हो चुके हैं। जो क्लेश अभी तक सूक्ष्म नहीं हुए हैं, जो अपनी अवस्था में अभी प्रगाढ़ या उदार है, उनका मिटाया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जा सकना सम्भव नहीं। क्लेशों का यही सिद्धान्त प्रारब्ध कर्मों एवं कर्मबीजों में भी लगता है। जो प्रारब्ध परिपक्व होकर अपना फल देने के लिए तैयार है, उसे भोगना ही पड़ता है। परन्तु जो अभी केवल संस्कार रूप में हैं-वह योग साधनों के द्वारा मिटाया जा सकता है।

इस सत्य को ध्यान में रखते हुए शास्त्रों-संतों ने दो तरह की बातें कही हैं। पहली बात-जिसमें कबीर कहते हैं-'**होनी होय सो होय**' अर्थात् जो होनी होने वाली है, वह होकर ही रहती है। गोस्वामी तुलसीदास महाराज भी कहते हैं-

सुनहु भरत भावी प्रबल, विलखि कहा मुनिनाथ।
हानि-लाभ जीवन-मरन, जस-अपजस विधिहाथ॥

मुनि वशिष्ठ जी भरत जी से कहते हैं कि हे भरत! प्रबल भावी होकर ही रहती है। हानि, लाभ, जीव, मरण सभी कुछ तो विधि के हाथ में है।

परन्तु बाबा कबीर और गोस्वामी जी महाराज अपनी ही इन बातों की विपरीत बातें भी कहते हैं। कबीर का कथन है-

दुःख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
सुख में सुमिरन जो करे तो दुःख काहे को होय॥

अर्थात् दुःख में सभी लोग स्मरण साधन करते हैं, परन्तु सुख में कोई नहीं करता है। यदि साधना सुख में भी हो तो फिर जीवन में दुःख हो ही क्यों?

गोस्वामी जी कहते हैं-'**भाविहु मेटि सके त्रिपुरारी**' भगवान शिव की साधना की जाय तो वे महेश्वर भावी मेटने में समर्थ हैं।

सामान्य दृष्टि से देखें तो ये दोनों बातें दो तरह की लगती हैं, परन्तु यथार्थ में दोनों बातें परस्पर सम्बन्धित हैं और ये दोनों ही महर्षि पतंजलि के सूत्र में समायी हैं। पहली बात है कि प्रारब्ध प्रबल है तो उसे भोगना ही पड़ता है। परन्तु यदि सामान्य समय में जिसे कबीर सुख में स्मरण कहते हैं-यदि साधना की अविरामता बनी रहे तो इसे क्षीण करना सम्भव है। और यह क्षीण प्रारब्ध बाद में योग साधना की प्रति प्रसव तकनीक से नष्ट भी किया जा सकता है। परन्तु यह तभी सम्भव है, जबकि कर्मबीज, कर्मसंस्कार या प्रारब्ध पहले

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

योगाभ्यास की साधना के द्वार तनु अथवा सूक्ष्म कर लिये गये हों। यही स्थिति पंचक्लेशों की है। यदि इन्हें क्रियायोग के निरन्तर अभ्यास से तनु या सूक्ष्म कर लिया गया है तो फिर प्रतिप्रसव तकनीक से इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

महर्षि पतंजलि की यह प्रतिप्रसव तकनीक ब्रायन वीज की आधुनिक रिग्रेशन थेरेपी का बड़ा ही विस्मयकारी एवं प्रभावकारी रूप है, इसमें योग साधक अपने प्रसव यानि जन्म के उल्टी ओर अंतर्यात्रा करता है। अर्थात् जन्म के मूल की ओर लौटता है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है, जब तक जन्म के कारण रूप चित्त को अपने ही कारण में विलीन न कर दिया जाय। यह प्रक्रिया न केवल जोखिम भरी है, बल्कि कई अर्थों में असाध्य एवं दुःसाध्य है। परन्तु जो ध्यानयोग में आरूढ़ हैं, वे इसे कर सकते हैं। परन्तु तभी जब उनके ध्यान ने व्यक्तिगत सूक्ष्म चेतना एवं सामूहिक सूक्ष्म चेतना की परतों को कुरेदने-खोजने की सामर्थ्य प्राप्त कर ली हो।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ध्यान एक आध्यात्मिक शल्यक्रिया

वस्तुतः ध्यान अन्तर्यात्रा विज्ञान का सबसे गम्भीर प्रयोग है। इस विज्ञान की अन्य सभी तकनीकें, प्रक्रियाएँ एवं प्रयोग विधियाँ ध्यान की सहायता के लिए हैं। ध्यान हो सके, समुचित ढंग से हो सके, इसके सही और सटीक परिणाम आ सके, इसलिए अन्य तकनीकों, प्रक्रियाओं एवं प्रयोग विधियों का उपयोग जरूरी है। ध्यान की इस रहस्यात्मक गम्भीरता को बहुत कम ही लोग जानते हैं। हालांकि आजकल के जीवन में इसकी चर्चा और चलन बहुत है। देश में, विदेश में इसके वैज्ञानिक प्रयोगों एवं परिणाम के बारे में भारी बहस छिड़ी है, परन्तु समर्थ योगी जन ऐसी चर्चाओं पर बस मुस्करा कर रह जाते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि यह सब सतही हैं। ऐसी चीजें अन्तर्चेतना के गहन आयामों तक अपनी पहुँच नहीं रखती। योग साधक की अन्तर्यात्रा में भी इनका कोई उपयोग नहीं है।

आधुनिक जगत् जिसे ध्यान का विज्ञान कहकर फूला नहीं समाता, उसके दायरे में कतिपय शारीरिक एवं मानसिक प्रक्रियाएँ ही आती हैं। विज्ञान एवं वैज्ञानिकता की बातें करने वाले ये लोग-ध्यान को महज एकाग्रता एवं तनाव दूर करने वाली तकनीक भर मानते हैं। इनके अनुसार ध्यान का परिणाम है, जीवन शक्ति की अभिवृद्धि, शरीर के जैव रासायनिक घटकों में परिवर्तन, हृदय आदि अवयवों का सुदृढ़ होना, बस इतना ही। जो ध्यान की प्रक्रिया का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अध्ययन मन की परतों पर करते हैं उनका कहना है कि ध्यान मानसिक हलचलों में भारी फेर-बदल करता है। इसके परिणाम रचनात्मक क्षमता एवं प्रतिभा विकास के रूप में उभरते हैं। इससे अधिक कुछ और भी है, यह बात वैज्ञानिक जगत् नहीं सोच पाता।

इस चिन्तन चेतना के विशेषज्ञ तो योगियों एवं सिद्धों का समुदाय है। इनका कहना है कि ध्यान यथार्थ में तो अन्तर्यात्रा विज्ञान का प्रयोग है। ध्यान की घटना समूचे अस्तित्त्व में कहीं भी घटे परन्तु इसके प्रभाव एवं परिणाम सम्पूर्ण अन्तर्चेतना में व्याप्त हुए बिना नहीं रहते। इसके दायरे में शरीर और मन तो है ही, परन्तु साथ में चित्त की गहरी परतें भी हैं। हमारा सम्पूर्ण अतीत और हमारे सम्पूर्ण भविष्य का समूचा ताना-बाना अपने आप ही इस अनूठी प्रक्रिया के माध्यम से अपना रूप और आकार बदलता है। जन्म-जन्मान्तर के कर्मबीज, संस्कार और ऐसी कितनी ही रहस्यात्मक घटनाएँ इससे प्रेरित, प्रवर्तित, परिवर्तित एवं प्रभावित होती है।

योगकथा के पिछले सूत्र में महर्षि पतंजलि ने बताया था कि पाँचों क्लेशों के मूल कारण मिटाए जा सकते हैं। उन्हें पीछे की ओर उद्गम तक विसर्जित कर देने से। परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जबकि ये पाँचों क्लेश सूक्ष्मावस्था में आ चुके हों। यदि ऐसा नहीं है तो फिर प्रतिप्रसव साधना से कोई लाभ नहीं होगा। बल्कि इस सम्बन्ध में सच तो यह है कि ऐसे में योग साधक की प्रतिप्रसव साधना की स्थिति ही नहीं बनेगी। पाँचों क्लेशों की सघन व उदार अवस्था न तो ऐसी प्रवृत्ति होने देगी और न ही ऐसी परिस्थिति विनिर्मित हो सकेगी। प्रतिप्रसव साधना तो उनके लिए है जिन्होंने लम्बे समय तक क्रियायोग का अभ्यास किया हो अथवा फिर उनके लिए जो नियमित ध्यान साधना का अभ्यास करते हैं।

इसी सत्य का उद्घोष महर्षि अपने अगले सूत्र में करते हैं-

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥२/११॥

शब्दार्थ- तद्वृत्तयः= उन क्लेशों की (स्थूल) वृत्तियाँ, ध्यानहेयाः = ध्यान के द्वारा हेय करने योग्य हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ- पाँचों क्लेशों की स्थूलवृत्तियाँ (बाह्य अभिव्यक्तियाँ) ध्यान के द्वारा मिटायी जा सकने योग्य हैं।

महर्षि का यह सूत्र स्थूल एवं सूक्ष्म साधना के बीच की देहरी है। जो योगी हैं वे जानते हैं कि आध्यात्मिक साधना के महत्त्वपूर्ण दो आयाम हैं। पहला है- स्थूल आयाम, जिसमें क्रियाएँ, कर्मकाण्ड एवं स्थूल प्रयोग आते हैं। दूसरा आयाम सूक्ष्म है, इसमें साधना का कोई भी चिह्न बाहर प्रकट नहीं हो पाता। लेकिन साधना सतत और अविराम चलती रहती है। इसके परिणाम स्वरूप कर्मबीजों एवं संस्कारों का निस्तारण होता रहता है। साथ ही ब्रह्माण्डीय चेतना से सूक्ष्म आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रवाह भी आता रहता है। इन दोनों के अतिरिक्त योग साधना का एक अन्य आयाम भी है। परन्तु इसकी चर्चा इन पंक्तियों में करने का मन नहीं है। इसका रहस्यात्मक सत्य केवल उन्हीं के द्वारा जानने योग्य है, जो इसके सचमुच ही अधिकारी हैं।

आध्यात्मिक साधना स्थूल हो या फिर सूक्ष्म, पात्र-भेद से इन दोनों की उपयोगिता है। साधक की स्थिति जहाँ है, जैसी है, उसकी साधना भी उसी प्रकार से होनी चाहिए। जब तक चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में विकृतियाँ है, तब तक साधना के स्थूल उपक्रम आवश्यक है। इस अवस्था में साधक को क्रियायोग के अभ्यास में दृढ़ता से लगे रहना चाहिए। इसी के साथ ध्यान साधना का अभ्यास भी आवश्यक है। ध्यान साधना के क्रम में एक बात बता देना यहाँ आवश्यक है कि ध्यान साधना स्थूल भी है और सूक्ष्म भी। मानसिक एकाग्रता, पवित्र विचार, छवि अथवा भाव की धारणा, ध्यान के स्थूल प्रयोग-प्रयासों में आते हैं। इस अवस्था के बाद ध्यान का सूक्ष्म आयाम प्रकट होता है। इस अवस्था में ध्यान एवं उसके परिणाम रहस्यमय हो जाते हैं।

महर्षि पतंजलि का कहना है कि प्रतिप्रसव साधना को करने वाले के लिए आवश्यक है कि वह ध्यान साधना से पंचक्लेशों की स्थूल वृत्तियों का नाश करे। महर्षि का सूत्र बहुत ही गहरे अर्थ को प्रकट करता है। इसकी चर्चा में एक सत्य यह भी जान लेना चाहिए कि ध्यान जहाँ अपने प्रारम्भिक चरण में व्यवहार, चरित्र एवं विचार का रूपान्तरण करता है, वहीं अपने अगले चरण में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त की गहरी परतों में छुपे संस्कारों कर्मबीजों को ऊपरी परत पर लाता है। यह प्रक्रिया बड़ी ही रहस्यमय है। इसे कई अर्थों में आध्यात्मिक शल्यक्रिया कहा जा सकता है।

जिस तरह से शल्य चिकित्सक अपनी शल्य क्रिया से पहले शरीर में छुपी विकृति को कुरेदकर ऊपरी परत पर लाता है। बाद में उसे काटकर बाहर निकाल देता है। ठीक यही कार्य ध्यान योग के साधक का है, व्यवहार, विचार एवं चरित्र के रूपान्तरण का सामाजिक अर्थ एवं मनोवैज्ञानिक अर्थ तो बहुत है पर इसका आध्यात्मिक अर्थ न्यून है। इसकी आध्यात्मिक महत्ता केवल इतनी ही है व्यवहार, चरित्र एवं विचारों की विकृतियाँ साधक को अस्तित्त्व की गहराई में प्रवेश नहीं करने देती। इनके रूपान्तरण से अस्तित्त्व में प्रवेश सुगम हो जाता है।

परन्तु यथार्थ कार्य तो गहराई में प्रवेश के बाद शुरू होता है। यह अवस्था आध्यात्मिक शल्यक्रिया की है। ध्यान की आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रभाव से गहरे दबे हुए छुपे संस्कार ऊपरी परत पर आते हैं। पंचक्लेशों की अवस्था भी परिवर्तित होती है। इस प्रक्रिया के दौरान और इसके प्रभाव से संस्कार एवं पंचक्लेश दोनों ही बहुत ज्यादा सूक्ष्म हो जाते हैं। और तब इनको प्रतिप्रसव साधना से मिटा देना सम्भव बन पड़ता है। यह सब कुछ इतना अनूठा एवं प्रभावी होता है कि योग साधक का भाग्य एवं भविष्य पूरी तरह से उसकी मुट्ठी में आ जाता है। वह अपनी क्षमता के अनुसार उसमें सम्पूर्णतया अथवा आंशिक परिवर्तन करने में सक्षम होता है। इसके रहस्यात्मक आयाम और भी हैं, जिन्हें योग साधक आगे पढ़ेंगे।

-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अतीत के गर्भ से जन्मता वर्तमान और भविष्य

अन्तर्यात्रा विज्ञान के द्वारा योग साधक को अनुभूति होती है- कर्माशय की। 'कर्माशय' शब्द के शिल्पी महर्षि पतंजलि स्वयं हैं। उन्हीं की भांति यह शब्द भी बड़ा अनूठा है। इसके भाव गहरे हैं और अर्थ व्यापक। सामान्य प्रचलन में कर्माशय की ही भांति - इससे मिलते-जुलते शब्द गर्भाशय का प्रयोग होता है। गर्भाशय- महिलाओं के प्रजनन तन्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। गर्भाशय न हो तो प्रजनन एवं प्रसव सम्भव नहीं है। इस गर्भाशय में गर्भबीज प्रस्थापित होता है। फिर समयानुसार- शरीरगत प्राकृतिक व्यवस्था से इसका विकास होता है। अपने विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरकर गर्भ शिशु का आकार लेता है- फिर प्रसव वेदना के साथ वह निश्चित समय में गर्भ के बाहर आ जाता है।

गर्भाशय से ही मिलती-जुलती प्रक्रिया एवं व्यवस्था कर्माशय की है। बस अन्तर इतना है कि गर्भाशय स्थूल शरीर का हिस्सा है, जबकि कर्माशय सूक्ष्य शरीर का- चित्त का अभिन्न अंश है। हमारे-हम सबके किए हुए कर्म बीज रूप में यहीं संचित होते हैं। फिर निश्चित क्रम में इनका अभिवर्धन विकास एवं परिपाक होता है। परिपक्व हो जाने पर ये कर्म संस्कार सुखप्रद या दुःखप्रद परिस्थितियों के रूप में व्यक्ति के सामने आ जाते हैं। हां यदि इन्हें कर्माशय में नष्ट किया जा सके तो स्थितियों को बदला जा सकता है। जिस तरह से स्त्री रोग विशेषज्ञ अपनी कुशलता से गर्भाशय के गर्भ को गिरा, हटा अथवा निरस्त कर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सकती है, उसी तरह योगविद्या के मर्मज्ञ अपनी सूक्ष्म प्रक्रियाओं से कर्म संस्कारों के समूह में काफी कुछ फेर-बदल एवं परिवर्तन कर सकते हैं।

इस योग कथा की पिछली कड़ी में इसके लिए ध्यान के प्रयोग की बात समझायी गयी थी। इस सूत्र में बताया गया था कि पंच क्लेशों की बाह्य वृत्तियाँ या बाहरी अभिव्यक्तियाँ ध्यान के द्वारा मिटायी जा सकती हैं। ध्यान महत्त्वपूर्ण प्रयोग है कर्म संस्कारों एवं उनके स्रोत क्लेशों को मिटाने का। इस रहस्य को जानने वाले अपनी जीवन की परिस्थिति एवं मनःस्थिति के निर्माता होने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। और इन्हीं के लिए कहा जाता है कि 'मनुष्य अपने भाग्य के निर्माता आप हैं।' दरअसल पंचक्लेश ही हमारे किए कर्मों को कर्मबीज और कर्मसंस्कार का रूप देते हैं। इनके अभाव में कर्म तो हो सकेगा परन्तु कर्मबीज या कर्मसंस्कार नहीं विनिर्मित हो पाएँगे।

अपने इस अगले सूत्र में महर्षि पतंजलि इसी सत्य को उजागर करते हैं-

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥२/१२॥

शब्दार्थ- क्लेशमूलः = क्लेशमूलक; कर्माशयः= कर्म संस्कारों का समुदाय; दृष्टादृष्टवेदनीयः= दृष्ट (वर्तमान) और अदृष्ट (भविष्य में होने वाले) दोनों ही प्रकार के जन्मों में भोगा जाने वाला है।

भावार्थ- चाहे वर्तमान में पूरे हो या फिर भविष्य में, कर्मगत अनुभवों की जड़ें होती है पाँच क्लेशों में।

महर्षि पतंजलि में अर्थ व्यापकता है। इसमें जो सबसे पहली बात ध्वनित होती है- वह है कर्म सिद्धान्त का सच। और यह सच इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि हम अपने कर्मों के सम्पूर्ण जिम्मेदार स्वयं हैं। हमारे जीवन में सुखप्रद अथवा दुःखप्रद जो परिस्थितियाँ और साधन हैं उन्हें हमने ही कभी न कभी विनिर्मित किया है। हमारे अतीत की कोख से ही वर्तमान ने जन्म लिया है। और इसी की अगली पीढ़ी के रूप में भविष्य जन्म लेगा। ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जिस तरह मनुष्य अपने वंशवृक्ष से सम्बन्ध नहीं तोड़ सकता- उसी तरह से कोई भी अपने अतीत एवं वर्तमान से अप्रभावित रहकर भविष्य

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का निर्माण नहीं कर सकता। अतीत सदा ही हमें प्रेरित, प्रभावित एवं परिवर्तित करता है। हमारी आदतें, प्रवृत्तियाँ, संस्कार, जीवन के प्रत्येक क्षण हम पर दबाव बनाए रखते हैं। और शृंखला सदा चलती रहती है। यही जन्म-जन्मान्तर की कर्मराशि का स्वरूप निर्धारण करती है।

इससे उबरने का उपाय है- जिसे महर्षि पतंजलि 'चित्त प्रसादन' के रूप में स्वीकारते हैं। और योगेश्वर श्रीकृष्ण - निष्काम कर्मयोग के रूप में। जो लोग केवल पूजा-पत्री अथवा भांति-भांति के कर्मकाण्डों का सहारा लेकर जन्म-जन्मान्तर की वेदना से छुटकारा पाना चाहते हैं- वे अपने को छलावा या भुलावा दे रहे हैं। ऐसा कहीं भी और कभी भी नहीं होगा। अथवा जो केवल परिस्थिति को दोष देकर जीवन से मुँह मोड़ने के चक्कर में हैं, उनके इस पलायनवाद से भी किसी समस्या का कोई भी समाधान नहीं निकलेगा। हम इन पंक्तियों में मंत्र साधना अथवा किन्हीं अन्य साधना प्रक्रियाओं की अवहेलना नहीं कर रहे, पर सच यही है कि ये सारी साधनाएँ ईश्वर की निष्काम भक्ति से जुड़कर ही अपना यथोचित प्रभाव-परिणाम प्रस्तुत करती हैं।

योग साधकों को इस सच पर सोचना और चेतना चाहिए। भागे नहीं, सामना करें अपने किए हुए का। इसके लिए जिस उचित सामर्थ्य की जरूरत है उसे ईश्वर भक्ति-गुरुभक्ति से प्राप्त करें। यही मार्ग है- अन्य कोई उपाय नहीं है। ऐसा करते हुए जो हो चुका है, वह क्षीण और क्षय होता है। ध्यान रहे कि निष्काम होकर ही साधना समर्थ बनती है। ईश्वर शरणागति और गुरुकृपा ही साधक को सक्षमता का वरदान देती है। यही वह कठिन कुठार है- जिससे कर्मवृक्ष की और जन्मवृक्ष की जड़े कटती हैं।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश से सम्पूर्ण छुटकारा बड़ा कठिन है। हां इनकी अवस्थाएँ अवश्य परिवर्तित की जा सकती हैं। ये पंचक्लेश यदि उदार अवस्था में हों तो कर्म स्वभावत: ही दूषित होने लगते हैं। और इन दूषित कर्मों का कर्माशय भी दूषित होगा। परन्तु यदि इनकी अवस्था तनु या क्षीण हो तो होने वाले कर्म भी उत्तरोत्तर शुद्ध होते चले जाएँगे, क्योंकि पंचक्लेश और उनकी स्थिति ही कर्मों का स्वरूप निर्धारित करती है। और जिन कर्मों का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जैसा स्वरूप होता है, उसी के अनुसार उनके कर्मबीज या संस्कार होते हैं। जिनका भोग वर्तमान जन्म एवं अगले जन्मों में करना पड़ता है।

जब तक कर्म की यह शृंखला चलती रहेगी, जन्म-जन्मातर का खेल भी चलता रहेगा। जब तक किए गए कर्मों से कर्मबीज बनते रहेंगे, इनके परिणाम भी सामने आते रहेंगे। यह एक ऐसी सुनिश्चित और प्रकृतिगत व्यवस्था है कि इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय ही नहीं है। यदि उपाय है तो केवल एक कि कुछ ऐसी व्यवस्था बनायी जाय, कोई ऐसी प्रक्रिया अपनायी जाय कि किसी भी तरह से कर्मबीजों का निर्माण न हो। क्योंकि यदि कर्म बीज बन गए तो फिर जन्म भी होंगे। इसलिए कर्मबीजों के निर्माण की प्रक्रिया रुकनी ही चाहिए। और यह प्रक्रिया तभी रुक सकती है जबकि कर्म पंचक्लेश की कोख जन्म न ले। कारण कि जब तक यह होता रहेगा तब तक इस सिलसिले को रोका नहीं जा सकता।

इसका उपाय एक ही है, कर्म तो हो पर वे ईश्वर भक्ति के लिए हो। उनमें हो गहरी निष्कामता। प्रभु स्मरण, प्रभु अर्पित कर्म- यही और यही एकमात्र उपाय है। यदि कर्म निष्काम होते रहे और साधना अविराम बनी रहे तो कर्माशय का नाश निश्चित है। अन्यथा कुछ भी करें जड़ें बनी ही रहेंगी और जन्म पर जन्म होते ही रहेंगे।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कैसे बचें अशुभ कर्मों व उनके प्रभाव से

इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण परिवर्तन सदा असाध्य ही बना रहता है। लेकिन यदि योग साधक संकल्पवान एवं ईश्वर परायण है और यदि उसमें जन्मों-जन्मों तक साधना करने की सामर्थ्य है तो यह असाध्य-साधन भी सिद्ध हो जाता है। परन्तु इसके लिए तप के साथ विवेक-वैराग्य का होना भी जरूरी है।

इसके बिना जो स्थिति बनती है, उसके लिए महर्षि पतंजलि कहते हैं-

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ २/१३ ॥

शब्दार्थ- मूलेसति= मूल के विद्यमान् रहने तक; तद्विपाकः= उस (कर्माशय) का परिणाम; जात्यायुर्भोगाः= पुनर्जन्म, आयु और भोग होता रहता है।

भावार्थ- जब तक जड़ें बनी रहती है, तब तक कर्माशय का परिणाम- पुनर्जन्म, आयु और भोग के द्वारा प्रकट होता रहता है।

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र के अर्थ और अनुभव गहरे हैं। बार-बार जन्म, कम या अधिक आयु, सुख-दुःख के प्रीतिकर या अप्रीतिकर भोग, इन सबकी जड़ें अन्य कहीं नहीं हमारे अपने ही चित्त में है। बीता हुआ कल, आज और आने वाला कल हमारे अपने ही कर्माशय से प्रकट हुआ है। यदि हम

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपनी स्थिति में परिवर्तन चाहते हैं तो हमें जड़ों से परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी होगी। इस सामान्य सच को प्राय: हम सभी जानते और मानते हैं कि शुभ कर्मों के परिणाम शुभ एवं अशुभ कर्मों के परिणाम अशुभ होते हैं। यदि हम शुभ परिस्थितियों को चाहते हैं- तो हमें शुभ कर्मों के द्वारा शुभ संस्कारों के बीज बोने होंगे। यदि हम ऐसा कर पाने में चूक गए तो अशुभ कर्मों से उपजे अशुभ संस्कार बीज अपने अनुरूप अशुभ परिस्थितियों को जन्म देंगे ही। इसे किसी भी तरह से रोक पाना सम्भव नहीं है।

परन्तु क्या कोई कर्म सर्वथा शुभ होता है ? यह सवाल महत्त्वपूर्ण है। योगी जनों के आराध्य व परम आचार्य भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- जिस तरह प्रत्येक अग्नि में धूम होने का दोष होता है उसी तरह से प्रत्येक कर्म भी दोष युक्त होता ही है। यदि उत्कृष्ट प्रयास किए जाएँ तो अग्नि में धुएँ की मात्रा कम और बहुत कम की जा सकती है, परन्तु इसका सम्पूर्णतया समाप्त होना असम्भव है। इसी तरह शुभ कर्मों के पुण्य अनुष्ठान में दोष कम और बहुत कम किए जा सकते हैं। इन्हें हटाए जाने की कोशिश की जा सकती है, पर इन्हें सम्पूर्णतया समाप्त कर सकना, मिटाया जा सकना असम्भव है। कितने भी प्रयास क्यों न किए जाए कोई भी कर्म सर्वथा दोष मुक्त नहीं हो सकता।

युग ऋषि परम पूज्य गुरुदेव इस सम्बन्ध में एक पुराण कथा सुनाया करते थे। यह कथा महाराज नृग की है- सम्भव है कि पौराणिक कथाओं से सुपरिचित लोग इससे परिचित भी हों। कथा कहती है कि महाराज नृग बड़े ही पुण्यशील नरेश थे। वे हमेशा सेवा एवं दान आदि शुभ कर्मों में निरत रहते थे। एक बार उन्होंने एक ब्राह्मण को एक हजार गायों का दान दिया। दान के काफी दिनों के पश्चात् ब्राह्मण की इन गायों में से एक गाय किसी तरह से बिछुड़कर महाराज नृग की गोशाला में आकर सम्मिलित हो गयी। इस सच का पता ब्राह्मण को चला। उसने देखा-गिना और पाया कि उसकी एक गाय कम है।

इधर अपने दान के व्रत का पालन करने वाले महाराज नृग ने अपनी गोशाला की एक हजार गायें फिर से एक अन्य ब्राह्मण को दान में दी। इन गायों में उसे पहले ब्राह्मण की भागी हुई गाय भी थी। उस पहले ब्राह्मण ने अपनी गाय

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पहचान ली और दूसरे ब्राह्मण को चोर ठहराया। इस कथन पर दूसरे ब्राह्मण ने कहा- ऐसा कैसे ? ये गाएँ तो मुझे महाराज ने दान में दी है। इन दोनों ब्राह्मणों का विवाद महाराज के पास दरबार में गया। उन्होंने वस्तुस्थिति की जांच गरायी। जांच करने पर सच उजागर हुआ। यह पता चला कि पहले ब्राह्मण की गाय किसी तरह बिछुड़कर महाराज की गायों में आ मिली थी। और महाराज ने भूलवश पुनः उसका दान कर दिया। स्थिति का पता चलने पर महाराज ने आग्रह किया कि वह ब्राह्मण उस गाय के बदले चाहे जितनी गाय ले ले। परन्तु वह तो केवल अपनी गाय लेने के लिए अडिग था। ऐसे में महाराज ने दूसरे ब्राह्मण से निवेदन किया कि वह पहले ब्राह्मण को उसकी गाय वापस कर दे, बदले में चाहे जितनी गाएँ ले ले। परन्तु वह भी टस से मस न हुआ। उल्टे दोनों ब्राह्मण कहने लगे- महाराज हम लोभी नहीं हैं। परन्तु तुमने अविवेकपूर्ण कार्य किया है।

महाराज को कुछ भी न सूझा वह मौन हो गए। काल-कर्म के विधान के अनुसार उनकी जीवन लीला समाप्त हुई। सयंमिनी पति यम एवं उनके सहयोगी चित्रगुप्त ने जब उनकी कर्म गणना की, तो महाराज के द्वारा किए गए अनगिनत पुण्यों के साथ यह पाप भी था। उन्होंने कहा- महाराज पहले आप अपने पुण्य कर्मों को भोगना पसन्द करेंगे अथवा इस एक पाप कर्म को भोगना चाहेंगे। महाराज नृग ने पहले पाप कर्म के भोग की इच्छा जतायी। परिणाम स्वरूप उन्हें गिरगिट की योनि में जन्म लेना पड़ा। अपने भोगवश महाराज नृग एक सूखे कुएँ में गिरगिट बनकर जा पड़े। परन्तु पुण्य कर्मों के कारण उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान था। सो वे वहाँ भी भगवान् का स्मरण करते रहे।

महाराज के इस कर्म संस्कार के द्वारा मिले पुनर्जन्म की आयु एवं भोग समाप्त होने की अवधि जब आयी, तब भगवान् श्री कृष्ण इस धरा पर अवतार लीला कर रहे थे। उन्होंने महाराज नृग का उद्धार किया। इसी के साथ उन्होंने महाराज से कहा- राजन्! आप मुझसे कोई वरदान मांग लें। महाराज ने कहा- हे योगश्वर! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो समझाएँ मनुष्य किस तरह अशुभ कर्मों एवं उनके प्रभाव से कैसे बच सकता है ? किस तरह वह कर्माशय के कर्म

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संस्कारों के व्यूह से बच सकता है ? तब भगवान् कृष्ण ने कहा- इसके लिए उपाय केवल एक ही है- कि प्रत्येक कर्म केवल और केवल भगवान् के लिए करे। वह परमेश्वर के अलावा अन्य किसी से भी भावनात्मक सम्बन्ध न जोड़े। सम्पूर्ण अनासक्ति और समर्पित भगवद्भक्ति ही जन्म, आयु एवं भोग से बचने का उपाय है। इस कथा की समाप्ति करते हुए गुरुदेव ने कहा- ऐसा न होने की स्थिति में मनुष्य को हर्ष एवं शोक भोगना ही पड़ता है। इसकी चर्चा महर्षि ने अपने अगले सूत्र में की है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पाप-पुण्य की धूप-छाया

योग सूत्रों की पिछली कड़ी में कहा गया था कि चित्त में स्थित कर्माशय का परिणाम पुनर्जन्म, आयु और भोग के रूप में प्रकट होता रहता है। इस कथन में निहित सच यही है कि जन्म, आयु एवं भोग कर्माशय के कर्मबीजों का अंकुरण एवं प्रकटन भर है। और जब तक कर्मबीज बने रहेंगे तब तक यह अंकुरण एवं प्रकटन भी होता रहेगा। इसमें यह सच भी समावेशित है कि कर्मबीज भी तब तक रहेंगे, जब तक कर्मों को किया जाता रहेगा। इसे और भी स्पष्ट रीति से कहते हुए योगऋषि पतंजलि अपने अगले सूत्र सत्य का उच्चारण करते हैं-

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्॥ २/१४॥

शब्दार्थ- ते= वे (जन्म, आयु और भोग); ह्लादपरितापफलाः= हर्ष और शोक रूप फल को देने वाले होते हैं; पुण्यापुण्यहेतुत्वात्= क्योंकि उनके पुण्य कर्म और पापकर्म दोनों ही कारण हैं।

भावार्थ- पुण्य लाता है सुख और अपुण्य लाता है दुःख।

महर्षि पतंजलि अपने इस सूत्र में कर्म की गहराई में उतरते हैं। पुण्य और पाप; सुख और दुःख- छांव और धूप की तरह से जीवन में आते रहते हैं। इनका आना और जाना अविरल एवं अविराम बना रहता है। इनकी अनुभूतियाँ मनुष्य को प्रसन्नता और पीड़ा का अहसास कराती रहती है। इन अहसासों से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उबरना आसान नहीं है और न ही आसान है जीवन के जाल को तोड़कर मुक्त होना। परन्तु फिर भी यह असम्भव भी नहीं है। हां इसके लिए कर्म से कर्मबीज बनने की यात्रा की छान-बीन जरूर करनी पड़ेगी। गीता में योगेश्वर कृष्ण कहते हैं कि 'न हि कश्चितक्षणमपि जात्यतिष्ठतिकर्मकृत' किसी भी क्षण में मनुष्य बिना कर्म किए नहीं रह सकता।

कर्म- जीवन की सबसे समर्थ और सार्थक परिभाषा है। और यह परिभाषा गढ़ी जाती है अन्त:करण में उपजी हुई इच्छा, संकल्प, विचारों की तीव्रता एवं भावनाओं के स्थिति के मेल और बाहरी तौर पर घटित होने वाली क्रिया के सम्मिश्रण से। अन्त:करण की चेतन धाराओं के शुभ और अशुभ स्वरूप की तीव्रता ही किसी भी क्रिया को पाप और पुण्य का स्वरूप प्रदान करते हैं। ध्यान रहे कि कोई भी क्रिया स्वयं में कृष्ण और शुक्ल अथवा पाप एवं पुण्य नहीं होती है। इसे यह दर्जा तो उन भावों से मिलता है, जो इसके पीछे सक्रिय है।

जो क्रिया भाव और विचार जगत् में जितनी तीव्र एवं सघन विक्षोभ करने में समर्थ होती है, उसके परिणाम भी उतने ही व्यापक एवं चिरस्थायी होते हैं। इसे यूं भी कहा जा सकता है कि जितने तीव्र विचार और जितने सघन भाव, जिस क्रिया के पीछे सक्रिय होते हैं, उसके परिणाम भी उतने ही तीव्र एवं सघन होते हैं। इनके पुण्य और पाप के रूप से परिवर्तित होने की कथा यह कहती है कि ये कर्म किसी को सुख पहुँचाने के लिए किए गए अथवा किसी को दु:ख पहुँचाने के उद्देश्य से। इन्हें किसी को पीड़ित करने के लिए किया अथवा किसी को प्रसन्न करने के लिए। जो भी कर्म किसी को पीड़ित करने के लिए किए जाते हैं, वे सभी कर्म कृष्ण या अपुण्य है। परन्तु जिन्हें किसी को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है, वे सभी शुक्ल या पुण्य हैं।

यदि कोई व्यक्ति अपने द्वेष या वैमनस्य के कारण क्रोध में भर कर किसी की हत्या करता है, तो यह उसके द्वारा किया गया महापाप हुआ। परन्तु जब यही हत्या किसी पीड़ित व्यक्ति को बचाने के लिए हो जाती है, तो इसे हत्या नहीं वीरता कहते हैं। और यह पुण्य कर्म हुआ। सैनिक अपने देश के लिए अपनी जान को जोखिम में डालकर कितने ही आतंकवादियों को मारकर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मासूमों की रक्षा करते हैं, यह उनका पुण्य कर्म है। परन्तु जब ये आतंकवादी किसी बस या सिनेमाहाल को बम से उड़ाकर सैकड़ों की हत्या कर देते हैं, तो यह महापाप होता है। इस पुण्य पाप की तीव्रता इस बात पर निर्भर होती है कि उनके इस शुभ या अशुभ कृत्य के पीछे भाव एवं विचार की कितनी ऊर्जा प्रवाहित हो रही थी। कर्म में प्रवाहित हो रही यह भावों एवं विचार की शुभ एवं अशुभ ऊर्जा इससे प्रभावित होने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के आशीर्वाद अथवा अभिशाप की सकारात्मक या नकारात्मक ऊर्जा को अपने में समेट कर कर्मबीज में परिवर्तित हो जाती है।

सच कहें तो ये कर्मबीज शुभ या अशुभ ऊर्जाओं के बीज हैं। जो एक निश्चित काल में परिपक्व होकर अपने सुखद या दुःखद परिणाम प्रकट करते हैं। यदि ऊर्जाओं का घनत्व बढ़ जाए तो कर्म का परिणाम अतिशीघ्र प्रकट हो जाता है। जैसे कि रामायण की कथा के अनुसार शृंगी ऋषि द्वारा महाराज दशरथ के लिए कराया गया पुत्रेष्ठि यज्ञ। इसमें भाव-विचार की आध्यात्मिक ऊर्जा इतनी सघन थी कि उसके सकारात्मक परिणाम तुरन्त सामने आ गए। इसी तरह किसी महातांत्रिक के द्वारा किए जाने वाले मारण आदि अभिचार कर्म, जो अपने अशुभ प्रभाव को तुरन्त प्रकट कर देते हैं। हालांकि इसमें यह सच अवश्य जुड़ा है कि कोई भी कर्म भले ही किसी व्यक्ति के द्वारा क्यों न किया गया हो वह यदि शुभ उद्देश्य के लिए और सुख पहुँचाने के लिए किया गया है तो यह पुण्य होगा। परन्तु यदि इसके उद्देश्य में किसी को पीड़ा देने का भाव है, तो यह पाप ही होगा।

कर्म के पीछे सक्रिय शुभ एवं अशुभ ऊर्जा की तीव्रता व घनत्व यदि अधिक है तो बिना किसी बाहरी क्रिया के भी कर्म घटित हो जाते हैं। और इनका भी कर्मबीज में परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए महान् तपस्वियों, योगियों के द्वारा दिए जाने वाले- आशीर्वाद एवं अभिशाप भी एक प्रकार का कर्म ही है। और उन्हें भी इसके शुभ एवं अशुभ प्रभावों का सामना करना ही पड़ता है। उनके द्वारा किए गए इस कर्म के कर्मबीज भी समय आने पर उनके जीवन में सुखद एवं दुःखद परिणाम को प्रकट करते हैं। कर्म की यह प्रक्रिया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनवरत एवं निरन्तर है। इसमें फेर-बदल तो तभी सम्भव है जब कोई निष्काम कर्मयोग का चित्तशुद्धि के लिए प्रयोग करें। यदि कोई व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन शैली को अपनाकर ईश्वर अर्पित कर्म करता है, तो वह अपने कर्मजाल को सर्वथा काट लेता है। अन्यथा उसके जीवन प्रवाह में पुण्य व अपुण्य के अनुपातिक गणित के अनुसार सुख एवं दु:ख के भंवर आते ही रहते हैं। अपने किए से कोई भी नहीं बचता। सुख और दु:ख के विविध रूप उसके अन्त: व बाह्य जगत् में प्रकट होते ही हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

दुःखों से मुक्ति का एकमेव मार्ग- योग

इस सत्य को और भी अधिक सुस्पष्टता देते हुए योग ऋषि पतंजलि अगले सूत्र का उच्चारण करते हैं-

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वविवेकिनः ॥

॥ २/१५ ॥

शब्दार्थ- परिणामतापसंस्कारदुःखै= परिणाम दुःख, तापदुःख और संस्कार दुःख- ऐसे तीन प्रकार के दुःख में विद्यमान रहने के कारण; च= और, गुणवृत्ति-विरोधात्= तीनों गुणों की वृत्तियों में परस्पर विरोध होने के कारण; विवेकिनः= विवेकी के लिए, सर्वम्= सब के सब (कर्मफल); दुःखम् एव= दुःख रूप ही हैं।

भावार्थ- विवेकवान व्यक्ति जानता है कि प्रत्येक स्थिति दुःख की ओर ले जाती है, अपने परिणाम के कारण, वर्तमान के कष्ट के कारण एवं संस्कार के कारण और उन द्वन्द्वों के कारण जो तीन गुणों और मन की पांच वृत्तियों के बीच आ जाते हैं।

महर्षि अपने इस सूत्र में बड़े बेबाक ढंग से जिन्दगी का सच बताते हैं। सुख की मृगतृष्णा से ही संसार अस्तित्त्व में है। किसी भी तरह से यदि मन से यह मृगतृष्णा हट जाय, मिट जाय तो संसार-संसार रूप में नहीं बल्कि आदिशक्ति जगदम्बा की लीला के रूप में अनुभव होता है। तत्त्ववेत्ता इसे ब्रह्म रूप में अनुभव करते हैं। परन्तु सुख का मायाजाल है ही कुछ ऐसा कि यथार्थ में इसका अस्तित्त्व न होने पर भी यह मनुष्य के मन पर कुंहासे की तरह छाया

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रहता है। मन में या तो अतीत के सुखों की याद उमड़ती रहती है अथवा फिर भविष्य के सुखों की कल्पनाएँ कुहेलिकाएँ करती रहती हैं। मनुष्य का अस्तित्त्व इसी अतीत एवं भविष्य के हिडोंले में झूलता रहता है।

लेकिन जो विवेकवान हैं, जिन्होंने निरन्तर के सत्संग से, स्वाध्याय से विवेक को पाया है, केवल वे ही सुख की मृगतृष्णा से उबर पाते हैं। वे जीवन के यथार्थ से, उसके अन्तर्निहित सत्य से परिचित होते हैं। हालांकि ऐसा कम ही लोग कर पाते हैं, क्योंकि विवेकवान् होना सहज बात नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कहते हैं- 'बिनु सत्संग विवेक न होई, रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥' अर्थात्- बिना सत्संग के विवेक नहीं होता है और प्रभु कृपा के बिना-राम कृपा के बिना यह सत्संग मिलता नहीं है। कुसंग बिना मांगे, बिना चाहे आसानी से मिल जाता है, किन्तु जीवन में सत्संग का होना तो अनेक जन्मों की प्रार्थनाओं का सुफल है। जिन्होंने सत्संग किया है, रामकृपा से जिनके विवेक का तीसरा नेत्र खुला है, केवल वही महर्षि पतंजलि के इस सूत्र के मर्म को आत्मसात कर सकते हैं।

इस सूत्र में महर्षि दुःख को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं। इनमें से पहला दुःख है- १. परिणाम दुःख- अनेक वृत्तिकारों एवं भाष्यकारों ने इसकी विविध व्याख्याएँ की हैं। परन्तु सद्गुरु ने जो ज्ञान की अनुभूति दी है, वह कहती है कि परिणाम दुःख-सुख के गर्भ में पलता है। सुख के समय भोग की लालसा, भोगों की क्रिया अपने परिणाम में अनेक दुःखों को प्रकट करती है। सुख के समय अहंकार के जो उन्माद और उपद्रव खड़े होते हैं, उनका ही परिणाम दुःखों के रूप में प्रकट होता है। संक्षेप में सुख के समय मनुष्य अपने आचरण-व्यवहार से दुःख को जन्म देता है। यदि सुख के समय, सुख देने वाले संसाधनों से सेवा की जा सके, लोक जीवन की पीड़ा मिटाई जा सके और यदि इस समय को अहं को विनष्ट करने वाली साधना में लगाया जा सके तो यह सुख-परिणाम दुःख देने की बजाय समाधि का साधन भी बन सकता है।

२. दूसरा दुःख है- तापदुःख। परिणाम दुःख भविष्य का दुःख है, तो ताप दुःख वर्तमान का दुःख। यह दुःख बना तो हर स्थिति में रहता है, परन्तु इसकी ओर ध्यान कम ही लोगों का जाता है। सुख के समय सुख को और

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अधिक बटोर लेने की चिन्ता ताप दुःख का एक कारण है। मेरा सुख मुझसे कोई छीन न ले यह भी ताप दुःख है। वर्तमान में दुःख देने वाली अन्य स्थितियाँ रोग, शोक, सन्ताप भी शारीरिक-मानसिक ताप देती है। सो ये भी ताप दुःख कही जा सकती है। यह ताप दुःख न तो हटाए हटता है और न मिटाए मिटता है। इसे हटाने और मिटाने के लिए महान् गुरु नानक देव की यह सीख ही माननी पड़ेगी- जिसमें वह कहते हैं- 'नानक दुःखिया सब संसार, सोई सुखिया जो राम आधार।' अर्थात्- नानक इस संसार में सभी दुःखी हैं, सुखी तो केवल वही है जिसने राम को-परमात्मा को अपना आधार बना लिया है।

तीसरी श्रेणी का दुःख है- ३. संस्कार दुःख। यह संस्कार दुःख और कुछ नहीं है, हमारे अपने ही किए गए नकारात्मक कर्मों, सोचे गए नकारात्मक विचारों एवं हृदय से उफनने वाले नकारात्मक भावों की नकारात्मक ऊर्जा के बीज हैं। जो परिपक्व होने पर अपना नकारात्मक परिणाम प्रस्तुत करते हैं। दैनिक जीवनमें हम थोड़ी सी खुशी पाने के लिए थोड़ी सी प्रतिष्ठा पाने के लिए, थोड़ा सा यश पाने के लिए चाहे-अनचाहे, बहुत सारे नकारात्मक कर्म, चिन्तन एवं भावों में उलझे रहते हैं। इनकी यादें, इनके संस्कार संस्कार दुःख के रूप में दुःखद अनुभूति बनकर मानसिक चेतना पर छा जाते हैं। इस तरह के दुःखों को यदि हम और भी अधिक स्पष्ट करें तो सभी तरह के मनोरोग संस्कार दुःख का ही प्रतिबिम्ब है। मनोरोगों का जन्म इन्हीं से होता है।

दुःख की इन तीन श्रेणियों के अलावा प्रकृति के तीन गुणों एवं मन की पाँच वृत्तियों- १. प्रमाण, २. विपर्यय, ३. विकल्प, ४. निद्रा, ५. स्मृति - में उपजने वाला द्वन्द्व भी दुःख देता है। वृत्तियों एवं गुणों के बीच में यह द्वन्द्व की स्थिति तब तक बनी रहती है, जब तक वृत्तियाँ निरुद्ध नहीं हो जाती। जब तक कि वृत्ति निरोध की डगर पर योग साधक चल नहीं देता। इस सूत्र के विवेचन की यदि हम सार अनुभूति करें, तो यही है कि जीवन की हर घटना, हर स्थिति एवं हर पल में कहीं न कहीं दुःख की छाया छुपी रहती है। यदि दुःखों से सम्पूर्णतया मुक्ति पानी है तो योग साधना ही प्रशस्त मार्ग है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साधक के भविष्य के दुःख स्वतः नष्ट हो जाते हैं

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अपने परिणाम में जीवन के दुःखों का नाश करते हैं। जीवन दुःखमय है, किसी न किसी रूप में यह अनुभूति कभी न कभी सभी करते हैं। परन्तु ऐसा क्यों है ? इस प्रश्न का सही उत्तर विरले खोज पाते हैं। दुःखों के निराकरण-निवारण की सही दशा और समुचित विधि का ज्ञान भी विरलों को ही हो पाता है। अन्यथा आमतौर पर तो सुखों की तलाश में दुःखों की कालिमा से ही दामन कलंकित होता रहता है। सुख पाने की ललक और लालसा तो सभी में भरपूर होती है, परन्तु सही दिशा और सम्यक् विधि के अभाव में भटकन और भटकाव में ही जिन्दगी खपती-बीतती रहती है। सुख पाने के सारे प्रयास एवं पुरुषार्थ का अन्त किसी न किसी दुःखद मोड़ पर होता है।

योग साधना के अनुभूति सम्पन्न साधकों का इस सम्बन्ध में यह कहना है कि इसका कारण जीवन की सही समझ का न होना है। हम सभी जीवन की सतही समझ तो रखते हैं, परन्तु इसकी परत दर परत में छुपे रहस्यों का हमको पता नहीं होता है। इसकी अतल गहराइयों में क्या छुपा है, इसे जान पाना तो केवल तत्त्वज्ञानी सिद्धों के लिए ही सम्भव होता है। सही समझ के न होने की वजह से जिन्दगी के दुःखों को हम किसी न किसी वस्तु या स्थिति के अभाव से जोड़कर देखते हैं। जैसे कि दुःख का कारण धन का अभाव है। अथवा फिर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ऐसी स्थिति में अपने जीवन में होती तो दुःख न रह जाते। या अपनी असमर्थता-असहायता पर मन पीड़ा का अनुभव करता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि दुःख का यथार्थ कारण विवेक का न होना है, क्योंकि यदि विवेक होता तो शायद सुख की ललक एवं लालसाएँ ही थम जाती।

अपनी अमृतवाणी में परम पूज्य गुरुदेव ने एक स्थान पर कहा है- बेटा! भगवान् वह नहीं है जो मन की मनोकामनाओं को पूरा करते हैं, बल्कि भगवान् वह है जो मन से मनोकामनाओं का नाश करते हैं। योगकथा की पिछली कड़ी में महर्षि पतंजलि की सूत्रचर्चा में कहा गया था कि परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख, ऐसे तीन प्रकार के दुःख विद्यमान रहने के कारण और तीनों गुणों की वृत्तियों में परस्पर विरोध होने के कारण विवेकी जनों के लिए सबके सब कर्मफल दुःख रूप ही है। महर्षि के इस सूत्र में एक बात तो स्पष्ट हो ही गयी कि जीवन के इस यथार्थ का अनुभव केवल विवेकी जन ही कर पाते हैं। अन्य सब तो केवल बालू में से तेल निकालने की झूठी जुगत में फँसे रहते हैं। उनकी यह मृगतृष्णा उन्हें उम्र भर भटकाती रहती है।

लेकिन जो विवेकवान हैं, जो जिन्दगी के यथार्थ का-सच का अपनी गहराइयों में अनुभव करते हैं, उनका जीवन के प्रति एक अनिवार्य कर्त्तव्य भी है। इसका उद्घाटन महर्षि ने अपने अगले सूत्र में किया है-

हेयं दुःखमनागतम्॥ २/१६॥

शब्दार्थ- अनागतम्= जो आया नहीं है, आने वाला है वह; दुःखम्= दुःख; हेयम्= हेय (नष्ट करने योग्य) है।

भावार्थ- भविष्य के दुःख को विनष्ट करना है।

योगर्षि पतंजलि का यह सूत्र प्रत्येक योग साधक के जीवन का कर्त्तव्य सत्य है। जो अपने इस कर्त्तव्य को पूरा करने में समर्थ नहीं हैं- उसे न तो योगी कहा जा सकता है और न योग साधक। दुःख का स्वरूप कोई हो, प्रकार कोई हो, पर उसकी जड़ें चित्त में कहीं न कहीं दबी होती हैं। चित्त की अवस्था एवं स्थिति के अनुरूप ही उसकी वृत्तियों का रूप होता है। इन वृत्तियों के आरोह-अवरोह ही व्यक्ति को प्रेरित करते रहते हैं। यदि बात परिणाम दुःख की करें तो

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसे तभी नष्ट किया जा सकता है जब इस तरह के शारीरिक-मानसिक कार्य न किये जाएँ, जो अपने परिणाम में दुःख पैदा करते हैं। उदाहरण के लिए योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं- **ये हि संस्पर्श जा भोगा दुःखयोनय एव ते,** इन्द्रियों के स्पर्श से मिलने वाले जितने ही सुख भोग हैं, वे सभी दुःख योनि (परिणाम में दुःख देने वाले) हैं।

ताप दुःख की भी यही स्थिति है। सुखो को भोगते समय उनके छूटने की सदा आशंका-चिन्ता बनी रहती है। इस चिन्ता से मन सदा ही सन्तप्त रहता है। कुछ यही दशा संस्कार दुःख के साथ भी जुड़ी है। भोग से उपजे संस्कार सदा ही दुःखदायी होती है। इन्हें फिर से पाने की लालसाएँ तड़पाती हैं। साथ ही इनके कारण संस्कारों में जो नकारात्मक ऊर्जा इकट्ठी हो चुकी है, वह समय-समय पर रोग, शोक एवं पतन के रूप में प्रकट होती है। रही बात गुणवृत्ति विरोध की, सो सत्, रज, तम के त्रिकोण में समूची चित्त चेतना उलझी-फँसी रहती है। अब यदि इन सभी स्थितियों से उबरना है, दुःखदायक पीड़ाओं से छुटकारा पाना है, तो उपाय एक ही है- चित्त शुद्धि, चित्तवृत्ति निरोध और अपने आत्म स्वरूप में अवस्थिति।

जो इस डगर को छोड़कर अन्य कहीं सुख की तलाश में भटकता है, वह सदा पीड़ाओं को ही समेटता है। उसकी आन्तरिक अशान्ति उसे हमेशा ही बेचैन किए रहती है। इसलिए योग साधना ही वह सुलभ पथ है, जिस पर चलकर भविष्य में आने वाले सभी दुःखों को नष्ट किया जा सकता है। परन्तु यह सुलभ उनके लिए अति दुर्लभ है, जो लोभ, मोह एवं अहंता के पाश में बंधे हुए हैं। जो कामनाओं की कीचड़ में धँसे है, जो लालसाओं की ललक से लिपटे हैं, उनके लिए भविष्य के दुःखों को नष्ट करना सम्भव नहीं है। क्योंकि सुखदायी योग की साधना उन्हें दुःखदायी लगती है। ऐसी स्थिति में उन्हें अपनी साधना का प्रारम्भ तप से करना होगा।

यह तप भविष्य के दुःखों को नष्ट करने का प्राथमिक उपाय है। परन्तु ध्यान रहे जो तपश्चर्या भोग की लालसा से किए जाते हैं उनसे दुःख के साधन ही जुटते हैं। जैसा कि रावण, हिरण्यकश्यपु आदि के साथ हुआ। प्रारम्भिक साधक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के द्वारा किए जाने वाले कठिन व कठोर तप का एक ही उद्देश्य होना चाहिए, तप के द्वारा आन्तरिक शुद्धि, योग के लिए उपयुक्तत मनोभूमि का निर्माण। अनुष्ठान विधि से की जाने वाली गायत्री साधना अथवा चान्द्रायण आदि तप उपक्रमों के साथ किए जाने वाले गायत्री अनुष्ठान इस उद्देश्य को आसानी से पूरा करते हैं।

तप करते-करते योग का पथ स्वयं ही प्रशस्त हो जाता है। योग साधना से चित्त की अवस्थाएँ बदलती हैं। साधना की परिपक्वता एवं प्रगाढ़ता के अनुरूप ही योग साधक में विवेक का उदय होता है। इस अवस्था में साधक के अन्तःकरण में पवित्रता एवं प्रतिभा का भरपूर विकास होता है। उसके आन्तरिक जीवन में प्रसन्नता एवं बाहरी जीवन में क्षमता अठखेलियाँ करती हैं। योग साधना की इस प्रगाढ़ता में उसके अनुभवों का संसार बदल जाता है। और उसे ज्ञान की उपलब्धि होती है। उसका यह ज्ञान सूचनाओं और विचारों पर आधारित नहीं बल्कि अनुभवों पर आधारित होता है। वह सम्पूर्णता में अपने अस्तित्त्व को जान लेता है। वह अपने एवं परमात्मा के सम्बन्धों को पहचान लेता है।

और तब उसका अन्तःकरण पवित्र भावों से, भक्ति के अतिरेक से भर जाता है। जिस तरह से तप का सही परिणाम योग है, उसी तरह से योग का सही परिणाम ज्ञान है। और इस ज्ञान का सम्यक् सत्परिणाम भक्ति है। और इस भक्ति का परिणाम- स्वयं भगवान् हैं। इस अनुभूति के बाद साधक गोस्वामी तुलसीदास की भाषा में कह उठता है- **सकल करम करि थकेउ गोसाई। सुखी न भयउँ अबहि की नाई॥** अर्थात्- सारे कर्म करते-करते थक गया पर अब की तरह पहले कभी सुखी न हुआ। इस अवस्था में किसी भी तरह के दुःख की पीड़ा साधक को नहीं सताती। उसके भविष्य के सभी दुःख स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। वह हर तरह से सुखी हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कैसे मिटें 'दृश्य'? कैसे मिलें इष्ट?

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम है- द्रष्टा का दृश्य से सम्बन्ध टूट जाना। यदि ऐसा सम्पूर्ण रूप से हो सके तो द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। किसी भी योग साधक के लिए यह आदर्श स्थिति है। योग विज्ञान के सारे यत्न, प्रयत्न, विधियाँ एवं विधान इसी को पाने के लिए है। परन्तु ऐसा करना आसान नहीं है। क्योंकि वर्तमान की वस्तु स्थिति तो यह है कि द्रष्टा अपने स्वरूप को पूरी तरह से भूलकर दृश्य में रम गया है। वह दृश्यों में इतना तदाकार है कि स्वयं को ही दृश्य समझ बैठा है। जीवन के परिदृश्य से इन दृश्यों को हटने एवं मिटने को वह स्वयं का हटना या मिटना मान लेता है। दृश्यों में हलचल होने से वह स्वयं में हलचल अनुभव करता है। इनमें होने वाले आलोड़न, विलोड़न उसे अस्थिर व चंचल बनाते हैं। और अपनी इन स्थितियों से वह दु:खी एवं परेशान रहता है।

किन्तु महर्षि पतंजलि के अनुसार अब जबकि अन्त:करण में विवेक का दीप जल उठा है, अब जबकि साधक योग साधना की डगर पर चल पड़ने के लिए कृत संकल्प हुआ है, तब ऐसे में उसके जीवन में सुखद परिवर्तन आने ही चाहिए। उसे इस बात का निश्चय करना चाहिए कि जिन दु:खों को हमने सहन कर लिया वही बहुत है, अब भविष्य में हम किसी भी दु:ख को अपने जीवन में आने न देंगे। अब हमारा अस्तित्त्व व व्यक्तित्व दु:ख की किसी भी भंवर में न पड़ेगा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महर्षि पतंजलि कहते हैं कि योग साधक ऐसा निश्चय कर सकता है। उसमें ऐसी सामर्थ्य है कि वह अपने इस निश्चय को पूरा कर सके। अपने अगले सूत्र में महर्षि इसकी विधि भी निर्देशित करते हैं। वह कहते हैं-

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ २/१७ ॥

शब्दार्थ- द्रष्टृदृश्ययोः= द्रष्टा और दृश्य का; संयोगः= संयोग; हेयहेतुः= (ऊपर कहे गए) हेय का कारण है।

भावार्थ- द्रष्टा और दृश्य का सम्बन्ध- यही दुःख बनाता है। इस सम्बन्ध को तोड़ देना है।

महर्षि अपने इस सूत्र में दुःखों के समूल विनाश का सत्य कहते हैं। यदि द्रष्टा और दृश्य के सम्बन्ध न रहे तो द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित हो जाएगा। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसा ठीक-ठीक घटित हो पाना सम्भव नहीं है। हां इस महत् कार्य को विभिन्न चरणों में अवश्य पूरा किया जा सकता है। जैसे-जैसे योग साधक इस ओर आगे बढ़ेगा उसके दुःख धीरे-धीरे कम होते जाएँगे। और अन्ततः समाप्त भी हो जाएँगे। जो पतंजलि के पथ पर चलने वाले हैं, उनके मन में पहला सवाल यह होगा, कि वे कहाँ से प्रारम्भ करें अपनी यह दुःख निवारक साधना? तो इसके उत्तर में यह कहना है कि वे विविध दृश्यों में और उनके परिवर्तनों में भटकने की बजाय, किसी एक दृश्य में रमें। उस दृश्य से जोड़े अपने सम्बन्ध की डोर।

इस प्रयोग में बेहतर यह होगा कि वह दृश्य सात्त्विक-मंगलमय एवं शुभ हो। साधकों का अनुभव कहता है कि यह दृश्य अपने सद्गुरु अथवा अपने आराध्य का चित्र अथवा मूर्ति हो सकती है। अथवा अपने सद्गुरु साक्षात् भी हो सकते हैं। ऐसा नहीं है कि गुरु या ईष्ट के साथ सम्बन्ध जुड़ने से जीवन के अन्य कार्य व कर्त्तव्य समाप्त हो जाएँगे। ये सब यथावत् चले रहेंगे। इन प्रक्रिया में कोई भी बाधा या व्यवधान नहीं पड़ेगा। बस अन्तर यह आएगा कि इनसे किसी भी तरह का लगाव या जुड़ाव नहीं रहेगा। गुरुभक्त या ईश्वरभक्त के जीवन में किसी भी कार्य या उद्देश्य केवल चित्तशुद्धि है। फिर वह कार्य कुछ भी हो। वह कार्य सामान्य गृहकार्यों के रूप में भी हो सकता है और विशिष्ट राजकीय दायित्वों के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रूप में भी। बाहर सब कुछ यथावत चलने के बावजूद योग साधक के मन में किसी भी विशेष कार्य के लिए कोई भी आग्रह न रहेगा। वस्तुओं, व्यक्तियों एवं कार्यों के छूटने, बिछुड़ने अथवा अमिलने की कोई भी चिन्ता न रहेगी।

ऐसा इसलिए क्योंकि उसका मन तो सम्पूर्ण रूप से अपने गुरु अथवा ईष्ट में है। जब साधक को ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाए तो इस साधना के द्वितीय चरण में प्रवेश करना चाहिए। इस चरण में उसके मन में सद्गुरु अथवा ईष्ट के स्थूल स्वरूप के लिए, उनके सान्निध्य के लिए कोई आग्रह नहीं होना चाहिए। उसे अपने गुरु व भगवान् को हृदय मन्दिर में बिठा लेना चाहिए। भावों के मन्दिर में भगवान् की प्रतिष्ठा और उनकी पूजा के उपचार भी मानसिक एवं भावनात्मक होने चाहिए। इस दूसरे चरण की साधना में पूजा के स्थूल उपायों की कोई आवश्यकता नहीं है। उल्टे इन्हें छोड़कर मानसिक एवं भावनात्मक पूजा करने में ही कल्याण है।

ऐसा करने के लिए उसे अपने समक्ष अथवा अपने हृदय स्थल पर या कि अनाहद् कमल में गुरु या ईष्ट के भाव विग्रह को अनुभव करते हुए उनकी सम्पूर्ण विधि-विधान से पूजा करनी चाहिए। मन ही मन उन्हें धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, आरती, जल आदि अर्पित करना चाहिए। यह मानसिक पूजा जितने विस्तार से की जाय, जितने मनोयोग से की जाय उतना अच्छा। मन जब-जब भटके-बहके उसे फिर से अपने भावमय भगवान् में लगाना चाहिए। और पूजा की प्रक्रिया प्रारम्भ से करना चाहिए। प्रात: सायं इसके निरन्तर अभ्यास से बहुत ज्यादा मानसिक उन्नति होती है। मानसिक शक्तियों का असाधारण विकास होता है।

यहाँ तक कि अभ्यासकर्त्ता साधक स्वयं ही सविकल्प और निर्विकल्प की अवस्थाओं को पार करते हुए सविचार में प्रवेश कर जाता है। ऐसी स्थिति में उसका प्रवेश सूक्ष्म जगत् में अपने आप ही हो जाता है। सूक्ष्म लोक वहाँ के निवासी, उसकी अपनी अनुभूतियों के साथी-सहचर बनने लगते हैं। इस साधना के थोड़े उन्नत होने पर वह स्वयं के तथा औरों के भविष्य को जान सकता है। परन्तु यह योगी का गन्तव्य नहीं है। उसे इन दृश्यों से भी अपना

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सम्बन्ध तोड़कर आगे बढ़ जाना चाहिए। आगे की स्थिति में उसे अपने गुरु व ईष्ट के निराकार स्वरूप का साक्षात्कार होता है। और उसे निर्विचार समाधि का अनुभव होता है।

इस निर्विचार और निराकार अवस्था में क्रमिक रूप से वह अपनी सूक्ष्म सत्ता को विसर्जित करता है। विसर्जन-विलय की यह अवस्था कई चरणों में पूरी होती है। इनमें से पहले चरण में अपने सूक्ष्म तत्त्व का बोध होता है। फिर वह पाता है कि उसके गुरु व ईष्ट एक है। और स्वयं वह भी उनसे अभिन्न है। इस अवस्था की प्रगाढ़ता में प्रकृति के गुण भी उसे लय होते नजर आते हैं। और अन्त में वह प्रकृति के सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त होकर अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। अब सब कुछ उसमें और वह सबमें होता है। यहाँ पर दुःखों का सदा-सदा के लिए अभाव हो जाता है। इस उपलब्धि में कठिनाई भले ही हो, परन्तु इस ओर बढ़ने मात्र से दुःखों का नाश होने लगता है। यह काल्पनिक नहीं अनुभूत सत्य है। इसकी अनुभूति को कोई भी अपने जीवन में प्राप्त कर सकता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रकृति में जीवन का क्या प्रयोजन है?

दु:ख के कारण की चर्चा करते हुए पिछले पृष्ठों में कहा गया है कि द्रष्टा व दृश्य का संयोग इस दु:ख का कारण है। द्रष्टा की दृश्य के प्रति आसक्ति, उसके राग एवं द्वेष उसे दु:खी करते हैं। इस सत्य का अनुभव कराने के बाद महर्षि पतंजलि न केवल दृश्य का स्वरूप बताते हैं, बल्कि इसके उद्देश्य को भी स्पष्ट करते हैं। उनके इस एक सूत्र में जीवन जीने की कला के सभी आयाम, सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व एवं सत्य सार रूप में समाए हुए हैं। इस सूत्र को समझ लेने पर प्रकृति में जीवन के प्रयोजन की समस्या हल हो जाती है।

महर्षि का यह सूत्र कहता है-

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥२/१८ ॥

शब्दार्थ- प्रकाशक्रियास्थितिशीलं= प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वरूप है; भूतेन्द्रियात्मकम्= भूत (पंचमहाभूत) और इन्द्रियाँ (कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ) जिसका प्रकट स्वरूप है; भोगापवर्गार्थम् (पुरूष के लिए) भोग और मुक्ति का सम्पादन करना जिसका प्रयोजन है ऐसा; दृश्यम्= दृश्य है।

भावार्थ- दृश्य जो कि प्राकृतिक तत्त्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) से और इन्द्रियों (कर्मेन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों) से संघटित होता है। उसका स्वभाव होता प्रकाश (सात्त्विकता), सक्रियता (राजसिकता) एवं निष्क्रियता (तामसिक) और द्रष्टा को अनुभव (भोग) उपलब्ध हो और अन्तत: मुक्ति फलित हो, इस हेतु यह होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र में अनेकों तत्त्व बड़ी सूक्ष्मता के साथ गुंथे हैं। इसमें सबसे पहली बात जो महर्षि कहते हैं कि जीवन का परम प्रयोजन अपवर्ग है- मोक्ष है। इसे कुछ इस तरह अनासक्त भाव से, राग-द्वेष से रहित होकर जीना है, जिससे कि मोक्ष स्वाभाविक फलित हो। यह जीवन स्थूल एवं सूक्ष्म का, जड़ एवं चेतन का विलक्षण संयोग है। प्रकृति के स्थूल तत्त्व- पंचभूत एवं सूक्ष्म तत्त्व- पंच तन्मात्राएँ इसे रूप और आकार देते हैं। पुरूष एवं प्रकृति, चेतन एवं जड़ के संयोग से बना चित्त इसका अनुभव करता है। बात अनुभव तक रहे तो ठीक है, परन्तु जब अनुभव के साथ आसक्तियाँ घेरती हैं, राग और द्वेष सताते हैं, तो परिणाम मोक्ष न होकर कर्म बन्धन के रूप में फलित होता है।

परम पूज्य गुरुदेव अपनी गोष्ठियों-चर्चाओं में इस सच को बड़ी मार्मिक रीति से उद्घाटित करते थे। उनका कहना था कि सारी गड़बड़ तब होती है, जब व्यक्ति अपना गन्तव्य भूल जाता है। यदि किसी को अपने घर से देश की राजधानी दिल्ली पहुँचना है, तो उसे सबसे पहले इस यात्रा के लिए अपने लिए अनुकूल मार्ग एवं वाहन तय करना होगा। उसे सोचना होगा कि यह यात्रा किस रास्ते से करनी है। क्योंकि यह तो निश्चित है कि उसके घर से दिल्ली तक के लिए कई रास्ते होंगे। उसे यह भी सोचना है कि उसकी अपनी साधन सम्पदा क्या है। जहाँ वह है, वहाँ से वह बस, ट्रेन, हवाई जहाज में से क्या चुन सकता है। अथवा फिर उसे पैदल ही जाना पड़ेगा।

यह निश्चत कर लेने के बाद उसे अपनी यात्रा प्रारम्भ करनी पड़ेगी। और इसमें यह सावधानी बरतनी होगी कि राह में वह न तो कहीं अटके और न ही भटके। यह अटकन दो तरह से हो सकती है, पहली उसे राह में ट्रेन अथवा बस में सफर करते समय कोई उसके मन को भा जाए। अथवा फिर दूसरी स्थिति में उसका किसी से झगड़ा हो जाय। इन दोनों ही स्थिति में उसकी यात्रा अवरुद्ध एवं बाधित होगी। तीसरी स्थिति भटकने की है, इस स्थिति में कुछ ऐसा हो जाता है कि राहगीर अपना मार्ग ही बदल दे। बस ट्रेन से उतरकर कहीं, किसी और जगह के लिए चल दे। यदि इनमें से कोई स्थिति बन जाय तो फिर वह अपने गन्तव्य तक कभी भी नहीं पहुँच पाएगा। होश आने पर उसे केवल पछतावा ही उठाना पड़ेगा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

युगऋषि गुरुदेव कहा करते थे कि योग साधक की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। प्रकृति के तीन गुण एवं इनके अनेक तरह से मिलने से स्थूल, सूक्ष्म में अपने दृश्यों की अनुभूति जीवन में होती है। ये दृश्य व्यक्ति, वस्तु, परिस्थितियों के रूप में अनुभव होते हैं। कई बार ये अनुभव लुभाते हैं, तो कई बार भय पैदा करते हैं। सच्चा साधक वह होता है जो न तो राग और मोह की स्वर्ण शृंखला से बंधता है और न ही द्वेष की लौह शृंखलाओं से बंधता है। वह अपने साथ विवेक, वैराग्य एवं भगवद्भक्ति के ऐसे साधन रखता है कि बस चलता ही चला जाता है। जीवन की राह में प्रकृति के दृश्यों का वह अनुभव तो करता है, परन्तु वह इन्हें सुख भोग के साधन नहीं समझता।

किसी भी अटकन-भटकन से दूर उसकी दृष्टि में केवल अपना गन्तव्य रहता है। चर्चा में जब गुरुदेव से यह पूछा कि इस राह में आपने जो बस-ट्रेन अथवा हवाई जहाज की बात कहीं, वह क्या है ? तो उत्तर में उन्होंने कहा कि यह है पिछले जन्मों में की गयी योग साधना। पिछले जीवन में किसने कितनी साधना की है, कहाँ तक वह पहुँचा है, उसी के अनुरूप उसका मार्ग सुखकर या दुःखकर होता है। जो पिछले जन्म में सामान्य साधक रहे हैं वे समझो कि बस से सफर करते हैं। जिन्होंने अपनी साधना में प्रकृति की सूक्ष्म परत को पार किया है, उनके लिए ट्रेन की उपमा कही गयी है। परन्तु विदेह या प्रकृतिलय योगी है, उनके लिए यह यात्रा हवाई यात्रा की तरह सुखद एवं सुलभ हो जाती है।

रही बात इस मार्ग पर चलने वाले पदयात्री की, सो यह वह व्यक्ति है, जिसने अभी अपनी साधना प्रारम्भ की है। हालांकि उसमें यदि भगवद्भक्ति है, अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठा है, तो वह भी एक जीवन में पहुँच जाएगा। क्योंकि साधन कोई भी हो और कैसा भी हो, अन्तिम छोर तक पहुँचने के लिए एक जीवन पर्याप्त है। बस उसे यह ध्यान रखना होगा, प्रकृति के दृश्यों में उसे अनुभव करते हुए आगे बढ़ना है। न तो उसे कहीं अटकना और न भटकना है, क्योंकि गन्तव्य भोग नहीं अपवर्ग है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जानें दृश्य के गुण, क्रम और भेद

अगले सूत्रोच्चार में महर्षि पतंजलि दृश्य के विविध आयामों का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ २/१९ ॥

शब्दार्थ- विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि = विशेष, अविशेष, लिङ्ग मात्र एवं अलिङ्ग, ये चार; गुणपर्वाणि = सत्त्वादि गुणों के भेद (अवस्थाएँ) हैं।

भावार्थ- दृश्य के चार आयाम हैं, विशेष, अविशेष, लिंगमात्र एवं अलिंग। इन चार आयामों के भी सत्, रज एवं तम गुणों के अनुसार भेद हैं।

योग सूत्रकार महर्षि पतंजलि के इस एक सूत्र में सम्पूर्ण प्रकृति एवं उसमें होने वाले सभी परिवर्तन समाए हैं। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक संगोष्ठियों में कहा करते थे कि द्रष्टा पुरुष एवं दृश्य प्रकृति दोनों ही सीमातीत हैं। यूँ तो सामान्यतया प्रकृति जड़ है- परन्तु जैसे ही पुरुष की दृष्टि उस पर पड़ती है, वह सजीव एवं सचेतन हो उठती है। और फिर उसमें अवस्थाओं एवं गुणों के बहुविधि सम्मिश्रण से अनन्त-अनन्त रंग-रूप उभरने लगते हैं। यह इतना सम्मोहक एवं वशीकारक होता है कि द्रष्टा पुरुष अपना आपा खोकर बरबस कर्त्ता और भोक्ता बन जाता है। यह सब इस ढंग से और इस गति से होता है कि पता भी नहीं चल पाता कि कब, क्या और कैसे हो गया ?

बहुआयामी दृश्य उत्पन्न करने वाली प्रकृति को महर्षि चार आयामों में वर्गीकृत करते हैं। इन चार आयामों में पहला आयाम है- १. विशेष- पृथ्वी,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जल, अग्नि, वायु एवं आकाश ये पाँच स्थूल महाभूत तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन- इस प्रकार सब मिलाकर इन सोलह का नाम विशेष है। गुणों के विशेष धर्म इनसे अभिव्यक्त होते हैं। इसीलिए सूत्रकार ने इसे विशेष कहा। सांख्यकारिका में इसे विकार कहा गया है। संक्षेप में- सम्पूर्ण स्थूल जगत् एवं स्थूल जीवन इन विशेष के अन्तर्गत आते हैं। फिर इनकी उपस्थिति इस धरती पर हो या फिर किसी और ग्रह मण्डल में।

दृश्य का दूसरा आयाम २. अविशेष है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ हैं इनको सूक्ष्म महाभूत कहते हैं; क्योंकि ये स्थूल पञ्च महाभूतों के कारण हैं तथा छठा अहंकार जो कि मन एवं इन्द्रियों का कारण है। इन छः का नाम अविशेष है। इन्द्रियों से दिखाई न देने के कारण इसे अविशेष कहा गया है। दृश्य का तीसरा आयाम ३. लिंग मात्र है। ऊपर कहे गए बाईस तत्त्वों का जो कारणभूत महातत्त्व है। जिसका वर्णन उपनिषदों में एवं गीता में बुद्धि के नाम से किया गया है। उसका नाम लिंगमात्र है। यही समस्त सृष्टि सृजन का उद्‌गम है। इसकी उपलब्धि केवल सत्तामात्र से होती है। इस कारण इसे लिंग मात्र कहते हैं।

दृश्य का चौथा आयाम ४. अलिंग है। यह मूल प्रकृति है जहाँ तीनों गुण अपनी साम्यावस्था में रहते हैं। महत्तत्त्व जिसका प्रथम परिणाम है। उपनिषद एवं गीता में इसे अव्यक्त कहा गया है। इसका नाम अलिंग इसलिए है क्योंकि यहाँ साम्यावस्था को प्राप्त गुणों के स्वरूप की अभिव्यक्ति नहीं होती। इसलिए प्रकृति की इस अवस्था को चिह्नरहित, अलिंग या अव्यक्त कहते हैं। इन चार आयामों में भी सत्, रज, तम गुणों के अनुरूप अनगिन भेद हैं।

प्रकृति के ये सभी आयाम अथवा अवस्थाएँ, प्रकृति के तीन गुणों के मिश्रण से अनन्त-अनन्त रूपों, आकारों, प्राणियों एवं लोकों की सृष्टि करती है। सृष्टि का यह क्रम क्रमिक रूप से स्थूल से सूक्ष्म होता जाता है। इसके प्रत्येक आयाम में जीवन के सभी नवरस अपनी सम्पूर्ण विविधता के साथ है। विवेक के परिपूर्ण न होने तक मनुष्य यहाँ कब तक और कितने काल तक भटकता रहेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। इस भटकन से उबरना तभी सम्भव है, जब

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बोध प्रदाता सद्गुरु बोध का वर प्रदान करे। अथवा स्वयं जगज्जननी कृपालु होकर जीव को मुक्ति का वरदान दे दें।

यहाँ कहे जा रहे ये शब्द प्रत्येक योग साधक के अनुभव का सच बनते हैं। अपनी योग साधना करते हुए साधक जैसे-जैसे अपने चित्त को विक्षेप से निर्भार करता है, संस्कार के मल को धो डालता है। ठीक वैसे-वैसे ही उसकी चेतना सूक्ष्म होती जाती है। और तब उसे इस सूत्र में बताए गए सच का अनुभव होता है। वह जान पाता है कि जगत् एवं जीवन केवल स्थूल महाभूतों तक ही सीमित नहीं है। इसका विस्तार तन्मात्राओं के जगत् में है। और यह क्रमिक रूप से अधिक प्रकाशपूर्ण ऊर्जामय एवं ज्ञानमय है। इस क्रम में साधक की चेतना जैसे-जैसे ऊर्ध्वगामी होती है, उसे यक्षों, गन्धर्वों एवं देवों की सृष्टि के संगीत के स्वर सुनायी देने लगते हैं।

अपने अनुभव के इस क्रम को पार करता हुआ वह क्रमशः ऋषियों के प्रकाशपूर्ण लोकों में प्रवेश करता है, जहाँ से उसके सामने ब्रह्मलोक का मार्ग प्रशस्त होता है। इसके बाद समाधि के उन्नत सोपान उसे अखण्ड के घर तक ले जाते हैं। वह अव्यक्त प्रकृति को भी पारकर परम अव्यक्त एवं अक्षर परमेश्वर के धाम में पहुँच जाता है। इस अन्तर्यात्रा में उसके यात्रा पथ का पाथेय बनता है विवेक जिससे उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकसित होते हुए विवेक ख्याति का पद पाना होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

चित्त की विकृतियाँ ही जीवन की भ्रान्तियाँ हैं

दृश्य एवं प्रकृति के रंगों में- रूपों में भेद तब और भी गहरे व विविध हो जाते हैं, जब चित्त वृत्तियों के रंगों में रंगा रहता है। इसी सत्य का सूत्रोच्चार महर्षि ने अगले क्रम में किया है-

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२/२०॥

शब्दार्थ- दृशिमात्रः= चेतन मात्र (ज्ञानस्वरूप आत्मा); द्रष्टा= द्रष्टा; शुद्धःअपि= यद्यपि स्वभाव से सर्वथा शुद्ध (निर्विकार) है, तो भी; प्रत्ययानुपश्यः= (बुद्धि के सम्बन्ध से) बुद्धि वृत्ति के अनुरूप देखने वाला है।

भावार्थ- द्रष्टा यद्यपि शुद्ध चेतना है, फिर भी वह चित्त की वृत्तियों, विकृतियों एवं संस्कारों के माध्यम से देखा करता है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र बड़े अनूठे एवं मीठे अर्थों को लिए है। इस सूत्र पर गहन मनन करने पर सत्य की कई परतें उजागर होती हैं। इस क्रम में जो पहली बात समझनी है, वह यह है कि द्रष्टा जिसे पुरुष अथवा आत्मा कहा जाता है, वह जीवन की समस्त अनुभूतियाँ चित्त के माध्यम से करता है। जैसी जिसकी चित्त की अवस्था है, उसे वैसी ही अनुभूतियाँ होती हैं। चित्त पर चढ़े रंग के अनुसार ही प्रकृति के सत्य नजर आते हैं। जैसे कि कोई लाल या पीले रंग का चश्मा अपनी आँख में चढ़ा ले तो उसे पेड़-पौधे, वन-उपवन, वस्तुएँ और व्यक्ति उसी रंग में नजर आते हैं। हालांकि यह यथार्थ में ऐसा होता नहीं है। फिर भी जब तक चश्मा आँख में चढ़ा है, तब तक सब कुछ वैसा ही दिखता रहता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस तरह चित्त में संस्कारों, कर्मबीजों की जितनी और जैसी परतें चढ़ी हैं, उसी के अनुरूप यह जगत् उतना ही भ्रान्तिपूर्ण हो जाता है। जबकि देखने वाला उस भ्रान्ति को सम्पूर्ण सच मानता रहता है, हालांकि सच तो यह है कि यह सब अपूर्ण सच भी नहीं होता। पर किया क्या जाय ? विकृतियों के रंग में रंगे चित्त की महिमा ही कुछ ऐसी है। परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक संगोष्ठियों में कहा करते थे- भ्रान्तियों के रंग बड़े अजब-गजब हैं फिर इनका विस्तार भी अनन्त है। जहाँ तक प्रकृति है, वहाँ तक विकृतियाँ एवं भ्रान्तियाँ हैं। उन्होंने एक दिन सौन्दर्य एवं शृंगार की चर्चा करते हुए कहा था कि यह सारा खेल चौथाई मिलीमीटर की खाल का है, परन्तु वासना में रंगा हुआ चित्त इसमें ऐसा कुछ देख लेता है, जिसकी कभी भी इसमें होने की सम्भावना ही नहीं रहती।

सम्बन्धों के संसार का सच भी यही है। दो लोगों में परस्पर तीव्र आकर्षण किसी न किसी संस्कारवश ही होता है। जो दो लोग पहले कभी एक-दूसरे को नहीं जानते थे, संस्कारवश जब मिलते हैं, तो अनायास ही उनमें तीव्र आकर्षण पैदा हो जाता है। वे एक-दूसरे को अपने जीवन का सर्वस्व मान लेते हैं। आपस में मिले अथवा बात किए बिना उन्हें एक पल काटना दूभर हो जाता है। जिन अगली-पिछली जिन्दगियों का उन्हें अता-पता भी नहीं है, उनकी कसमें खाते हैं, उनके सपने देखते हैं। अपनी इस संस्कारवश उपजी भ्रान्ति में उन्हें जीवन के सारे सुख नजर आते हैं। वे सोच भी नहीं पाते कि जिसे वे अपनी जिन्दगी का सम्पूर्ण सच मान रहे हैं, वे केवल निरी भ्रान्ति के अलावा और कुछ भी नहीं।

अनुभवी साधक एवं शास्त्र तो इसमें कुछ और ही सत्य देखते हैं। उनका यह कहना है कि कई बार जन्म-जन्मातर की शत्रु आत्माएँ जब एक-दूसरे से संस्कारवश मिलती हैं, तो उनमें अनायास ही बड़ा प्रबल एवं प्रगाढ़ आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। और वे इस आकर्षण को प्रेम मानकर एक-दूसरे के साथ जीवन भर बंधने के लिए आतुर और उतावले हो जाते हैं। कई बार संस्कार प्रबल होने के कारण उनकी यह इच्छा पूरी भी हो जाती है, परन्तु जब ऐसा हो जाता है तब चित्त के संस्कार का यथार्थ रंग निखरता है। उनका प्रेम अनायास की घृणा में बदलने लगता है। वे दोनों ही अपनी प्रत्येक गतिविधि से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

एक दूसरे को सिर्फ कष्ट देने की सोचते हैं। जाने-अनजाने वे एक-दूसरे से बदला लेते रहते हैं। और यह सिलसिला तब तक निरन्तर चलता रहता है, जब कि उस निश्चित संस्कार का भोगकाल पूर्ण नहीं हो जाता। इसलिए युगऋषि गुरुदेव अपनी चर्चा में यदा-कदा कहा करते थे कि यदि अनायास ही किसी से प्रगाढ़ प्रेम पैदा हो जाए तो थोड़ा ठहर कर जांचना-परखना चाहिए। इसके औचित्य या अनौचित्य को समझना चाहिए। फिर भी यदि सत्य न समझ में आए तो किसी प्रज्ञावान पुरुष की शरण में जाकर समाधान पाना चाहिए।

योगी जन कहते हैं कि प्रत्येक संस्कार का भोग अनिवार्य नहीं है। इन्हें तप साधना से हटाया और मिटाया जा सकता है। हालांकि यह भी सच है कि कुछ ऐसे भी जटिल संस्कार होते हैं, जिनका भोग अनिवार्य हो जाता है। फिर भी तपश्चर्या से इसे कम तो किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि के इस सूत्र का महत्त्वपूर्ण सच यह है कि द्रष्टा की चेतना भले ही कितनी ही शुद्ध एवं निर्विकार हो, परन्तु चित्त की विकृतियों के कारण उसके अनुभवों में भ्रान्तियाँ बनी रहती हैं। इन भ्रान्तियों के निराकरण के लिए आवश्यक है कि चित्त को शुद्ध व निर्विकार करने के लिए सदा ही साधक को साधनारत रहना चाहिए।

तीव्र योग साधना से यह कार्य सम्भव है, सुकर है। इसे करते हुए जैसे-जैसे चित्त निर्मल होता जाता है, वैसे-वैसे अनुभव भी भ्रान्तिमुक्त होते जाते हैं और साथ ही जीवन में पदार्थ, परिस्थितियों एवं घटनाक्रमों के सही स्वरूप का यथार्थ बोध होता है। और तब ऐसा लगता है कि अब तक जो भी जीवन जिया गया, वह यूँ ही व्यर्थ की भ्रान्तियों में गुजर गया। ध्यान रहे चित्त की विकृतियाँ ही जीवन की भ्रान्तियाँ हैं। विकृतियों के समाप्त होते ही भ्रान्तियाँ स्वतः ही समाप्त होने लगती हैं। इसलिए भ्रान्तियों से उबरने के लिए चित्त की विकृतियों को दूर करने की साधना, प्रत्येक योग साधक के लिए अनिवार्य है। ऐसा होने पर ही द्रष्टा की निर्विकार एवं शुद्ध चेतना जीवन में अपनी सही और सार्थक अभिव्यक्ति कर पाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कैवल्य का सच्चा अधिकारी

विवेक ज्योति के जलते ही साधक के आन्तरिक व बाह्य जीवन के अनुभवों का संसार बदल जाता है और उसमें बोध का अंकुरण होता है। वह जान पाता है कि दृश्यों की स्थिति, इनका स्वरूप दरअसल द्रष्टा के चित्त की छाया मात्र है, जिसका व्यक्तिगत एवं समूहगत अस्तित्त्व है।

इस सत्य को और भी अधिक स्पष्टता देते हुए महर्षि योगकथा के नूतन सच का सूत्रोच्चार करते हैं-

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २/२१ ॥

शब्दार्थ- दृश्यस्य= (उक्त) दृश्य का; आत्मा= स्वरूप; तदर्थ एव= उस (द्रष्टा) के लिए ही है।

भावार्थ- दृश्य का अस्तित्त्व होता है केवल द्रष्टा के लिए।

यह सूत्र योग एवं वेदान्त की साधना के अनुभव का चरम शिखर है। जो योग या वेदान्त की साधना में निरत हैं, वे क्रमिक रूप से अनुभव के विभिन्न चरणों से गुजरते हुए अन्ततोगत्वा इस चरम अनुभव तक पहुँच जाते हैं। और यहाँ उन्हें इस सूत्र का मर्म-सत्य का अनुभव होता है। जो साधक नहीं हैं, जो अपने चित्त के क्रमिक परितर्वनों को नहीं अनुभव कर पा रहे हैं, वे इस सूत्र के सत्य को नहीं जान सकते। वे इस सच्चाई को जान ही नहीं सकते कि विवेक की अंकुरित अवस्था से विवेक ख्याति के विस्तार तक दृश्य का स्वरूप किस तरह से बदलता है। और अन्तिम अवस्था में जब चित्त विलीन हो जाता है, जब द्रष्टा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्वयं के स्वरूप में स्थित हो जाता है, तब उसके लिए दृश्य भी विलीन हो जाता है। ऐसी स्थिति में परिवर्तनशील त्रिगुणमयी प्रकृति खो जाती है। और साधक केवल अपने सर्वव्यापी स्वरूप का, पुरूष का अनुभव करता है। वेदान्त की शब्दावली का प्रयोग करें तो यह मायामय जगत्- ब्रह्ममय हो जाता है।

हालांकि यह स्थिति किसी भी साधक के लिए सहज अनुभवगम्य नहीं है। इस अनुभव से पहले उसे अनेकों गली-गलियारों से, चौराहों-चौबारों से, वन-वीथियों से गुजरना पड़ता है। उसे सामना करना पड़ता है, अपने जटिल प्रारब्धकर्म का और संचित कर्मों के विशालकाय ढेर का। इनमें से किसी भी कर्मबीज का उदय न केवल चित्तभूमि की संरचना परिवर्तित कर देता है, बल्कि परिस्थितियों में भी परिपूर्ण परिवर्तन कर देता है। हां यदि ऐसे में योग साधक के अन्त:करण में विवेक ज्योति जल रही है तो उसे यह बोध बना रहता है कि यह सब एक निश्चित काल तक ही है। यदि इस अवधि तक साक्षीभाव से सजग रहा जा सका, जो यह कर्मबीज फूल-फल कर स्वयं ही नष्ट हो जाएगा। और बची रह जाएगी केवल चित्त की परिष्कृत स्थिति।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव ने अपने एक वार्ताक्रम में भगवान् महावीर के जीवन का एक प्रसंग सुनाया था। उन्होंने बताया कि भगवान् महावीर उन दिनों राजगृह में थे। उनके पास एक नवयुवक दम्पत्ति अपनी रुग्ण सन्तान को लेकर आए। सन्तान की असहाय स्थिति थी। छोटे से बालक की यह स्थिति उसके माता-पिता की पीड़ा का कारण बनी हुई थी। माता-पिता चाहते थे कि तीर्थंकर महावीर के आशीष से उनका बालक निरोग व दीर्घायु हो। उन्होंने तीर्थंकर की भगवत्ता और उनके अमोघ आशीष की भूरि-भूरि प्रशंसा सुनी थी। बड़ी आशा और उम्मीद से वह उनके श्रीचरणों में उपस्थित हुए थे। उन्हें भरपूर भरोसा था कि भगवान् महावीर की कृपा से उनका बालक अवश्य ही आरोग्य आयुष्य का वरदान पाएगा।

तीर्थंकर प्रभु ने उन दम्पति के याचना भरे नेत्रों को देखा- फिर उनके शिशु की ओर देखा जो अपने नयन मुंदे मां की गोद में शान्त था। भगवान् ने उसे पुकारा- उत्तर में उस बालक की माता ने कहा- प्रभु! मेरा यह बच्चा न तो देख

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सकता है और न ही सुन सकता है। मां के इस कथन पर महावीर ने शान्त स्वर में कहा- आयुष्मती! तुम्हारा यह बालक किसी अन्य की ओर देखे अथवा न देखे, उसे सुने अथवा न सुने, परन्तु यह मुझे देखेगा भी और सुनेगा भी। ऐसा कहते हुए भगवान् तीर्थंकर ने उसके मस्तक पर हाथ रखा, बालक ने आँखें खोल दी, उसके तेजहीन नेत्र तेजपूर्ण हो गए, उसके कानों को स्वर सुनायी देने लगे। उस बालक ने महावीर के मुख की ओर ताका, उसके भोले से मुख पर पीड़ा घनी हो गयी और नेत्रों से अश्रु छलक पड़े। इस कुसुम कोमल बालक के होंठ कुछ बोलने के लिए खुले, परन्तु बोल न सके बस रुदन का मन्द स्वर ही प्रकट हो सका।

तीर्थंकर कुछ क्षणों तक बालक के मस्तक पर हाथ रखे रहे। मानों वह उसकी आत्मा से संवाद कर रहे हों। कुछ क्षणों के मौन के बाद उन्होंने बालक की माता की ओर निहारा और बोले- पुत्री! मैं तुम्हारी प्रार्थना सुनूँ या फिर तुम्हारे शिशु की जो बड़े विकल स्वरों में मुझसे अपनी आप बीती बड़े मौनभाव से कह रहा है। माँ धैर्यवान थी, उसका विवेक ज्योतिष्मान था, उसने कहा- प्रभु! आप मेरे बालक की याचना को ही सुनें। क्योंकि वही जानता है कि वह क्या चाहता है? महावीर तथास्तु कहकर समाधिस्थ हो गए हालांकि इस अवस्था में भी उनका एक हाथ उस बालक के माथे पर था। महावीर के समाधिस्थ होते ही बालक के चेहरे का भाव परिवर्तित होने लगा। एक के बाद एक अनेकों भाव उसके मुख पर उभरे और विलीन हुए। फिर उसका मुख भगवान् महावीर के समरूप होने लगा। उसके मुख पर भी वही शान्तिपूर्ण प्रभा छा गयी जो तीर्थंकर के मुखपर थी। इस अवस्था में उसने एक बार प्रभु के मुख की ओर देखा, फिर आँखें बन्द कर लीं। उसकी श्वांस की गति मन्द हुई थम गयी।

शिशु की स्थिति पर बालक के पिता व्यथित थे, परन्तु मां अपने नयन मूंदे शान्त थी। उसने अनुभव किया- उसके शिशु की आत्मा कृतज्ञ भाव से उससे कह रहा हो कि हे माता! तुम्हारा परम आभार, जो तुम हमारे लिए कैवल्य का द्वार सिद्ध हुई। वहाँ उपस्थित जन चकित थे, व्यथित थे। महावीर के चरणों

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में एक बालक की मृत्यु का वह कोई तर्कपूर्ण समाधान नहीं ढूँढ पा रहे थे। उन सभी के इस आश्चर्य को भंग करते हुए महावीर ने बालक की मां से कहा- पुत्री! तुम्हारा यह बालक पिछले कई जन्मों से आध्यात्मिक साधनाओं में लीन रहा है। एक जन्म में प्रमादवश उससे एक अनुचित कर्म हो गया। जिसे भोगने के लिए उसने यह जीवन धारण किया था। उसके परम निर्मल चित्त में बस यही एक दाग था, जिसे धोने के लिए इसने जन्म लिया था। उसकी आत्मा के लिए दृश्य प्रकृति का बस यही स्वरूप शेष था।

प्रकृति का प्रयोजन पुरूष के लिए है। वह विविध अनुभूतियों को देते हुए उसे अन्तिम अनुभूति के रूप में मोक्ष देती है। तुम्हारा शिशु अपने विगत जन्मों में प्रकृति के विविध परिवर्तनों को अनुभव कर चुका था। इस एक कर्म के नि:शेष होने के बाद वह कैवल्य का स्वत: सिद्ध अधिकारी था। उसने मुझसे बड़े विकल स्वरों में यही प्रार्थना की थी, उसका यह कर्म शीघ्रातिशीघ्र नि:शेष हो और कैवल्य पा सके। मैंने उसकी यह प्रार्थना पूर्ण कर दी। भगवान् महावीर के इस कथन पर बालक के माता-पिता ने अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ उनके चरण पकड़ लिये। वह उपस्थित लोगों को भी यह सत्य समझ में आ गया कि दृश्य का स्वरूप केवल इसलिए है कि द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित हो सके।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भोग पूर्ण होते ही प्राप्त होती है कैवल्य अवस्था

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की प्रगाढ़ता एवं परिपक्वता के अनुरूप योग साधक का चित्त शुद्ध होता जाता है। इसी के साथ रूपान्तरित होने लगती है चित्त एवं वृत्तियों की स्थिति, थमने लगती है, इनकी चंचलता। वृत्तियों का आकर्षण-विकर्षण, इनके परस्पर अन्तर्विरोध, अन्तर्द्वन्द्व ही हमारे मानसिक अस्तित्त्व का निर्माण करते हैं। इसी के अनुसार होता है हमारा सामाजिक व्यवहार। ये दोनों ही मिलकर हमारे जीवन का ढांचा गढ़ते हैं। सामान्य क्रम में यह संरचना ऐसी होती है, जिसका कोई न छोर मिलता है और न सिरा। बस हर नई उलझन अपने सुलझने के क्रम में कई नई उलझनों को जन्म देती है। अविद्या और अस्मिता से उपजे राग-द्वेष व अभिनिवेश और भी मजबूत होते जाते हैं। पुराने संस्कारों से नए कर्म पैदा होते हैं और फिर इन कर्मों से उत्पन्न होते हैं नए संस्कार। जो चित्त और उसकी वृत्तियों को अपने रंगों में रंगते रहते हैं।

लेकिन जब योग साधक अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों में लीन होता है, तो स्थिति परिवर्तित होने लगती है। संस्कारों से अशुद्ध हुआ चित्त शुद्ध होने लगता है। कर्मबीजों से भरा हुआ कर्माशय निराशय होने लगता है। फिर ऐसी स्थिति में योग साधक के चित्त में विवेक और वैराग्य प्रदीप्त होने लगते हैं। वैराग्य का ईंधन विवेक को प्रदीप्त करता है। विवेक की प्रभा वैराग्य को और अधिक प्रज्वलित करती है। इन विवेक और वैराग्य के प्रकाश में योग साधक को जीवन के गूढ़ रहस्य समझ में आने लगते हैं। उसे परिस्थिति एवं मनःस्थिति

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के अन्तर्सम्बन्धों का ज्ञान होता है। उसको यह सच अनुभव होने लगता है कि मन:स्थिति बदले तो परिस्थिति बदले। क्योंकि सामान्य क्रम में सामान्य जन तो सदा ही परिस्थिति को बदल डालने की जोड़-जुगत, गुणा-भाग लगाते रहते हैं। उनका सारा जोर इस बात पर रहता है कि कैसे परिस्थिति को परिवर्तित कर उसे अपने अनुकूल बनाया जाय। जबकि योग साधक इस सच का सर्वदा अनुभव करता है कि परिस्थिति तो मन:स्थिति की छायामात्र है। यदि योग साधना के द्वारा चित्त की स्थिति बदल दी जाय तो परिस्थिति स्वयं ही बिना किसी प्रयास के बदल जायगी।

इस सत्य के और भी गहरे मर्म को महर्षि अपने अगले सूत्र में सुस्पष्ट करते हैं-

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥२/२२॥

शब्दार्थ- कृतार्थम् प्रति= जिसका भोग और अपवर्ग रूप कार्य पूर्ण हो गया, उस पुरुष के लिए; नष्टम्= नाश को प्राप्त हुई; अपि= भी (वह प्रकृति); अनष्टम्= नष्ट नहीं होती; तत् अन्यसाधारणत्वात्= क्योंकि दूसरों के लिए भी वह समान है।

भावार्थ- यद्यपि दृश्य उसके लिए समाप्त हो जाता है, जिसने कैवल्य पा लिया है, जो अपने स्वरूप में स्थित हो गया है, फिर भी औरों के लिए वह यथावत रहता है, क्योंकि वह सर्वनिष्ठ, सबके लिए होता है।

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र का मर्म बताते हुए परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक चर्चाओं में कहते थे- स्वप्न का अस्तित्त्व किसी के लिए तभी तक रहता है, जब तक कि वह जाग्रत् नहीं हुआ। नींद से जगते ही उसके लिए स्वप्न की सत्ता समाप्त हो जाती है। परन्तु यह केवल उस व्यक्ति विशेष के लिए होता है। जो लोग अभी तक सो रहे हैं, उनकी नींद में तो सपने आएँगे ही। स्वप्न एक चेतना की अवस्था है, जो भी इस अवस्था में जिएगा, उसे इसकी अनुभूतियाँ यथावत होती रहेगी। ठीक कुछ ऐसी ही बात प्रकृति के लिए भी है। सांख्यकार महर्षि कपिल एवं योगसूत्रकार महर्षि पतंजलि के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष दोनों ही सनातन तत्त्व हैं। किसी भी अवस्था में इनका नाश नहीं होता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पुरुष जितना शाश्वत् और सनातन है, प्रकृति भी उतनी ही सत्य और शाश्वत् है।

बस बात केवल इतनी है कि पुरुष जब प्रकृति के संयोग में होता है तो अविद्या आदि पंचक्लेशों की उत्पत्ति होती है। इन पंचक्लेशों और पंचवृत्तियों के संयोग से कर्मों की अर्गला व शृंखला जन्म लेती है जो बन्धन का कारण बनती है। द्रष्टा पुरुष अपने में कर्त्ता व भोक्ता का भ्रम पाल लेता है। कर्म व भोगों का चक्रव्यूह उसे ऐसी गहरी भ्रान्ति में डूबाता है कि स्वयं के स्वरूप की स्मृति ही खो देता है। योग साधना से अन्तर्यात्रा के प्रयोगों से यह स्थिति परिवर्तित होती है। वृत्तियाँ क्षीण होती हैं, क्लेश भी क्षीण होता है। मूढ़ व क्षिप्त अवस्था में रहने वाला चित्त क्रमिक रूप से विक्षिप्त, एकाग्र व निरुद्ध भूमि में पहुँचता है। अपने में कर्त्ता व भोक्ता का भ्रम पालने वाला पुरुष द्रष्टा व साक्षी होता जाता है। यहाँ तक कि प्रकृति से उसका संयोग पूर्णतया समाप्त हो जाता है। और वह अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

योग साधक इस अवस्था को पहुँचने से पूर्व अपने सभी भोग पूरे कर लेता है। उसका चित्त सम्पूर्ण निर्मलता को प्राप्त कर अन्ततः विलीन हो जाता है। इसके विलीन होते ही पुरुष का प्रकृति से संयोग समाप्त हो जाता है। यही पुरुष की अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा है। इसी को योगशास्त्र में कैवल्य एवं अन्य आध्यात्म शास्त्रों में मोक्ष कहा गया है। पुरुष की यह उपलब्धि सर्वथा व्यक्तिगत है। उसकी इस अवस्था से अन्य पुरुषों की अवस्था नहीं परिवर्तित होती है। अन्य पुरुष जो कि अभी तक प्रकृति के संयोग में हैं, वे अपनी चित्त की अवस्था के अनुरूप क्लेश वृत्ति एवं कर्म की अर्गलाओं व शृंखलाओं से जकड़े रहते हैं। प्रकृति की सत्ता का सत्य उन्हें सभी अवस्थाओं में घेरे रहता है। काल क्रम के अनुसार उनके कर्म एवं भोग भी पनपते रहते हैं।

योग के तत्त्वदर्शी सिद्धजनों का यही कहना है पुरुष का प्रकृति से संयोग का सर्वथा समाप्त होने का यह तात्पर्य नहीं है कि प्रकृति के अस्तित्त्व की समाप्ति हो गयी। प्रकृति का अस्तित्त्व तो अन्य सभी के लिए यथावत बना रहता है। हाँ मुक्त पुरुष के लिए अवश्य प्रकृति के इस अस्तित्त्व का कोई भी अर्थ नहीं रह जाता। क्योंकि वह पुरुष जो अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो चुका है, उसे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रकृति और उसके गुण किसी भी रूप में प्रभावित नहीं कर सकते। यहाँ तक कि उसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। क्योंकि अपने भोग पूरे कर लेने के बाद और अपवर्ग की स्थिति पा लेने पर वह प्रकृति से सर्वथा पार और परे है। यही मोक्ष या कैवल्य की अवस्था है। हालांकि जिन्हें यह अवस्था नहीं मिल सकी है, वे सभी प्रकृति के संयोग के परिणाम की यथावत् अनुभूति करते रहते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मोह मुक्त होने पर ही जलेगा प्रज्ञा का दीपक

अन्तर्यात्रा के प्रयोग अपनी गहनता में अनुभव के, ज्ञान के, बोध के नए-नए आयाम खोलते हैं। इस प्रयोग के क्रम में अन्तर्यात्रा का पथिक कार्य के साथ उसके यथार्थ कारण की अनुभूति पाता है। उसे किसी भी कार्य का वास्तविक कारण जानने के लिए किसी अनुमान अथवा तर्क के गणितीय-समीकरण हल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि वह सत्य को स्पष्टतया देख सकता है, बिना किसी अवरोध के इसकी अनुभूति प्राप्त कर सकता है। और यह कार्य वह बुद्धि से नहीं बोध से करता है। इस क्रम में वह जान लेता है समस्त सृष्टि एवं उसे धारण व प्रकट करने वाली प्रकृति को। वह अनुभव करता है इसकी प्रत्येक परत को, इसके स्थूल व सूक्ष्म रूपों को, इसके बाह्य और आन्तरिक स्वरूप व इसके परस्पर सम्बन्धों को। वह यह भी जान लेता है कि पुरूष एवं प्रकृति के शाश्वत् सहचर्य का रहस्यार्थ क्या है ? इसका उद्देश्य, औचित्य एवं आवश्यकता क्या है ? ज्ञान, अनुभव एवं बोध का यह क्रमिक विकास ही उसे मुक्त करता है। अन्तर्यात्रा में अनुभवों की अनन्तता ही पुरुष एवं प्रकृति के वास्तविक स्वरूप का व्यापक अनुभव कराती है।

इसी के साथ समाप्त हो जाती है उसकी सभी भटकनें एवं भुलावे, ढह जाती हैं अवरोधों एवं बाधाओं की दीवारें और प्रकाशपूर्ण हो जाता है सम्पूर्ण अस्तित्त्व। यह वह अवस्था है जबकि योग साधक अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। हालांकि इसके पहले वह जान चुका होता है समस्त प्रकृति को। वह

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भली भांति अनुभव कर लेता है प्रकृति एवं पुरुष के सहसम्बन्ध को। उसे अपने अनुभव की सम्पूर्णता में यह बोध हो जाता है कि अब कुछ पाना शेष नहीं रहा। और सत्य तो यह है कि कुछ भी पाने योग्य है भी नहीं। यह अवस्था विवेक की चरम सीमा है, यही विवेक ख्याति है। इस अवस्था में अनन्त-अनन्त ब्रह्माण्डों एवं नीहारिकाओं को धारण करने वाली, इन्हें जन्म देने वाली प्रकृति की सम्पूर्णता में उसके लिए न तो कुछ अदृश्य है और न अप्राप्त। वह सम्पूर्ण प्रकृति पर अपने सहज स्वामित्व की पल-पल अनुभूति पाता है।

इस सत्य का सरलता से सूत्रोच्चार करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं-

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ॥ २/२३ ॥

शब्दार्थ- स्वस्वामिशक्त्योः= स्वशक्ति (प्रकृति) एवं स्वामिशक्ति (पुरूष), इन दोनों के; स्वरूपोपलब्धिहेतुः= स्वरूप की प्राप्ति का जो कारण है, वह; संयोगः= संयोग है।

भावार्थ- पुरूष (द्रष्टा) एवं प्रकृति (दृश्य) साथ-साथ होते हैं, ताकि इनमें प्रत्येक का सही स्वरूप जाना जा सके।

इस सूत्र के अर्थ एवं मर्म में सम्पूर्ण जीवन का अर्थ एवं मर्म है। सामान्य जन यह सवाल करते हैं कि आखिर हम पैदा ही क्यों हुए? यह कर्म एवं कर्मफल बन्धन का सिलसिला कब और क्यों पनपा? यदि प्रकृति बन्धन है तो पुरुष (आत्मा) इसके सम्पर्क में ही क्यों आया? ये ऐसे सवाल है जो आम जन के मन में पैदा होते हैं। जिनके जवाब वह जानना चाहता है; किन्तु जान नहीं पाता है और इन सवालों के साथ खीझता, झींकता रहता है और हैरान-परेशान होकर माथा खुजलाता रहता है। सच तो यह है इन सारे सवालों एवं उनसे उपजी सभी परेशानियों का जवाब इस अकेले सूत्र में है। तभी तो परम पूज्य गुरुदेव अपने आध्यात्मिक चर्चाओं में कहते थे, जो जीवन के प्रति जिज्ञासु हैं, उन्हें महर्षि पतंजलि के सूत्रों को अवश्य पढ़ना चाहिए। और इन सूत्रों में समाहित सत्य को आत्मसात करने का प्रयास करना चाहिए। इस ओर की गयी थोड़ी सी भी कोशिश जीवन की सभी गूढ़ पहेलियों को आसानी से हल कर देती है।

जैसे कि जन्म का कारण है, प्रकृति एवं पुरूष का संयोग। अब जहाँ तक कर्म एवं कर्मफल बन्धन के सिलसिले की बात है तो यह आसक्ति से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पनपा। जो आसक्ति से मुक्त है, उन्हें न तो कोई कर्म बांधता है और न ही कर्मफल। यदि प्रकृति बन्धन है तो पुरूष इसके सम्पर्क में क्यों आया? इस सवाल का सरल हल यह है कि प्रकृति बन्धन नहीं है, बन्धन तो आसक्ति है। हाँ जहाँ तक पुरूष के इसके सम्पर्क में आने की बात है, तो वह इस वजह से आया ताकि वह जान सके कि सम्पूर्णता में प्रकृति को, स्वयं को एवं परस्पर के अन्तर्सम्बन्धों को। यद्यपि ये सत्य तभी जाने जा सकते हैं, जबकि जानने वाला मोहमुक्त हो, आसक्ति से सर्वथा परे हो।

ऐसा हो तभी तो सूत्र का अर्थ स्वयं के आध्यात्मिक अनुभवों में प्रकट होता है। और तब यह बात समझ में आती है कि दरअसल प्रकृति न तो बन्धन है, और नहीं बांधने वाली माया। यह न तो आपदा है और न ही विपदा। विपदा, आपदा, बन्धन और माया तो दरअसल अपनी ही आसक्ति है। प्रकृति तो स्वशक्ति है, यानि कि अपनी शक्ति। इस सत्य को जिसने अनुभव किया वह शक्तिमान और परम समर्थ बनता है। जो प्रकृति को स्वशक्ति के रूप में अनुभव करते हैं, प्रकृति सदा ही उनके आधीन रहती है। परन्तु जो प्रकृति और उसके दृश्यों से मोह करते हैं, उनसे बंधते हैं, वे अनजाने ही दास बन जाते हैं, प्रकृति उनकी स्वशक्ति कभी भी नहीं बनती। जो सर्वथा मोह एवं सभी आसक्तियों से मुक्त होकर प्रकृति को स्वशक्ति के रूप में जान लेते हैं, उनके लिए प्रकृति अपने अन्तराल के परिवर्तनों से नित नयी शक्तियाँ, विभूतियाँ प्रकट करती रहती हैं।

मोहमुक्त योग साधक अपनी सविधि साधना से इन्हें प्राप्त कर इनका उपयोग करता है। इसके द्वारा वह आत्मकल्याण एवं लोककल्याण के असाध्य साधन को पूरा करता है। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव का साधनामय जीवन एवं उनकी उपलब्धियाँ इसी सच को प्रमाणित करती हैं। हालांकि योग साधकों को यह बात भली-भांति जान लेना चाहिए कि मोहमुक्त होने का अर्थ है विषयों, वस्तुओं, व्यक्तियों एवं परिस्थितियों से ही नहीं बल्कि प्रकृति एवं उसके समस्त परिवर्तनों से मोहमुक्त हो जाना। जो ऐसा हो सका वह सम्पूर्ण प्रकृति को उसके परिवर्तन क्रम के साथ उसकी सम्पूर्ण व्यापकता में जान लेता है। और इस तरह प्रकृति का सम्पूर्ण तात्त्विक स्वरूप उसकी अन्तर्यात्रा में प्रकट हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जो योग साधक प्रकृति को उसकी सम्पूर्णता में जान सके वे स्वयं के स्वरूप को भी अपनी सम्पूर्ण सम्पूर्णता में जान लेता है। कहने को तो ये दो कार्य अलग-अलग है। परन्तु योग साधकों की अनुभूतियों में दोनों साथ-साथ ही अनावृत्त होते हैं। ठीक वैसे ही जैसे कि प्रकृति एवं पुरूष दोनों ही साथ-साथ रहते हैं। योग साधक के अन्त:करण में जितना तीव्र वैराग्य होता है, उतना ही उसके अस्तित्त्व व व्यक्तित्व में ज्ञानाग्नि प्रकट होती है। इस ज्ञानाग्नि में दग्ध होते हैं कर्म संस्कार, चित्त की अशुद्धियाँ, सारी मलिनताएँ। और फिर चित्त निर्मल हो जाता है, अपनी सम्पूर्ण यथार्थता में उसकी शुद्धता प्रकट होती है। जिस क्षण यह घटना घटित होती है, उस क्षण योग प्रज्ञा का क्रमिक क्रम प्रकट होता है। प्रज्ञा के सप्तधा आयाम प्रकट होते जाते हैं। और इन आयामों में प्रकृति एवं पुरूष दोनों का ही स्वरूप स्पष्ट होता जाता है।

योग साधना करने वाले सदा से ही यह सच अनुभव करते आए हैं कि मोहमुक्त होने पर ही साधक संस्कारमुक्त होता है, कर्ममुक्त होता है। और जब वह अपनी साधना के इस प्राथमिक चरण को पूरा कर लेता है तभी उसके चित्त में प्रज्ञा का दीप प्रज्वलित होता है। उसकी योग साधना की तीव्रता के अनुरूप इसका प्रकाश बढ़ता जाता है और फिर अनुभव होने लगता है प्रकृति का एवं स्वयं का स्वरूप। इस अवस्था के यौगिक सच के अनुरूप ही योग साधक प्रकृति को स्वशक्ति के रूप में अनुभव कर पाता है। विद्वान आचार्यगण संस्कृत भाषा की व्युत्पत्तियाँ एवं व्याकरण के कुलांचे लगाने वाले पण्डितगण इस बारे में क्या कहते हैं, यह तो उन्हीं को पता होगा पर साधकों का साधना सत्य यही है, जिसे इन पंक्तियों में लिखा गया है। वैराग्य दीप्त योग साधक ही प्रकृति को स्वशक्ति के रूप में अनुभव करते हैं, उसके स्वरूप का सम्यक् बोध पाते हैं और साथ ही विवेक ख्याति के प्रकाश में स्वयं के स्वरूप की भी उपलब्धि कर लेते हैं। इस क्रमिक क्रम में प्रकृति एवं पुरूष का सहसम्बन्ध लौकिक एवं आध्यात्मिक विभूतियों को प्रकट करने के साथ कैवल्य का वरदान पाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अविद्या से मुक्ति ही पूर्णता की ओर ले जाती है।

पुरुष (आत्मा) का प्रकृति के साथ जब तक संयोग है, तब तक भ्रमों के भुलावे भटकावे बने रहते हैं। पुरुष एवं प्रकृति में संयोग एवं साहचर्य का कारण यह है कि दोनों ही अपने स्वरूप को पा सकें। यह स्वरूप उपलब्धि शुद्धि संक्रिया द्वारा मिलती है। यह शुद्धि साधना अपने प्रारम्भ में अभिनिवेश को नष्ट करती है और अपने शिखर में अविद्या को। इस अविद्या के नष्ट होते ही भ्रमों का, भ्रमात्मक अनुभवों का कारण ही नष्ट हो जाता है। तब पुरुष न केवल प्रकृति के परिवर्तनों से मोहमुक्त होता है, बल्कि स्वयं प्रकृति से भी छुटकारा पा लेता है। क्योंकि पुरुष एवं प्रकृति के बीच संयोग का कारण यह अविद्या ही तो है। इसी सत्य को महर्षि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में स्पष्ट किया है-

तस्य हेतुः अविद्या॥ २/२४॥

शब्दार्थ- तस्य= उस संयोग का; हेतुः= कारण; अविद्या= अविद्या है।

भावार्थ- उस (पुरुष एवं प्रकृति के) संयोग का कारण अविद्या, अज्ञान है।

योग ऋषि पतंजलि का यह सूत्र अपने में अनेकों तात्त्विक गहनताओं को समेटे है। अविद्या की चर्चा न केवल योग में बल्कि वेदान्त में भी है। वेदान्त में इसे माया भी कहा गया है। यही वह मूल वजह है, जिसके कारण आत्मा या पुरुष स्वयं के स्वरूप को भूल जाता है। यही वजह है, जिस कारण स्वयं चेतन होते हुए भी आत्मा अपने आप को जड़ समझने लगता है। इसी की कोख में मैं

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पन का भाव पनपता है। जो बाद में राग और द्वेष की सृष्टि करता है। जिसकी वजह से अविनाशी पुरुष को अपने मरण भय का अभिनिवेश सताने लगता है। एक के बाद एक जुड़ती इन कड़ियों की शृखंला के मूल में केवल अविद्या ही है।

इस अविद्या की वजह से ही पुरुष-प्रकृति के मोहपाश में बंध जाता है। इसी वजह से ही वह स्वयं को कुछ से कुछ समझने लगता है। इस मोह बन्धन के ही कारण पुरुष स्वयं अविनाशी होते हुए भी अपने को नाशवान समझता है। सर्वव्यापी होते हुए भी वह अपने को अहंता के क्षुद्र दायरे में कैद कर लेता है। इतना ही नहीं चेतन होते हुए भी वह स्वयं को जड़ मान लेता है। यह अविद्या उसे उसके स्वरूप को भुला देती है। फिर तो बस अविद्या के नशे में मदहोश जीवन न जाने कितने कर्म, संस्कार और कर्मफल विधान के जाल-जंजाल में जकड़ता चला जाता है। एक अविद्या के मायापाश के कारण वह असंख्य कर्मपाश से बंध जाता है।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव इस सच को और भी स्पष्ट करने के लिए एक मीठी सी कथा कहा करते थे। वह कहते थे कि भंवरे को यूं तो सभी फूलों से प्यार होता है। वह फूलों के पराग रस का मतवाला होता है। तभी वह पराग रस के लोभ में हर बाग में प्रत्येक फूल पर मंडराता घूमता है। बाग-फूल और पराग उसके जीवन के लिए यही सब कुछ बन जाते हैं। इस सच का एक अन्य आयाम यह भी है कि फूलों से प्यार करने वाला यह भँवरा सबसे अधिक कमल के फूल से प्यार करता है। कमल के फूल में तो जैसे उसके प्राण ही बसते हैं। अपने इस अतिमोह में कभी-कभी तो वह अपने प्राण ही गवाँ देता है।

इस कथा को सुनाते हुए गुरुदेव ने बताया कि सुबह से सांझ तक कमल के सौन्दर्य एवं स्वाद में खोया हुआ भँवरा सांझ होने पर भी उसके मोह से निकल नहीं पाता। माया उसे जकड़े-थामे रहती है। सांझ होने पर सूर्य अस्त की बेला में कमल की पंखुड़िया बन्द होने लगती हैं। पर कमल की माया में बँधा भँवरा वहीं जस-का-तस बैठा रहता है। कमल के पूरी तरह से बन्द होने पर वह भ्रमर भी उसी में कैद हो जाता है। जो भ्रमर अपने पराक्रम से कठोर काष्ठ को भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

काट कर चूर-चूर कर देता है, वही मायाविवश होने पर कमल की कोमल पंखुड़ियों को नहीं काट पाता। बस उन्हीं के बीच सहमा, सिकुड़ा, सिमटा बैठा रहता है। उसे प्रतीक्षा रहती है, सुबह होने की। परन्तु यह सुबह उसके जीवन में कभी नहीं आती। कमल के अन्दर प्राण वायु के अभाव में उसके प्राण ही निकल जाते हैं। अथवा सरोवर में स्नान करने आए हाथी उस समूची कमल नाल को उखाड़ कर ही खा जाते हैं। उस भ्रमर के भाग्य में मृत्यु के अलावा कुछ नहीं होता।

इस कथा को सुनाते हुए गुरुदेव कहते थे कि जो जीव अविद्या के पाश में बँधा है, वह न केवल अपना स्वरूप भूल जाता है, बल्कि वह सर्वथा क्षीण पराक्रम होकर कर्मों के अनगिनत क्लेश भोगता है। एक जन्म के बाद दूसरा जन्म, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के बाद अनन्त-अनन्त जन्म। एक योनि के बाद दूसरी, फिर दूसरी के बाद तीसरी और तीसरी के बाद अनगिनत। यह सिलसिला चलता रहता है, चलता ही रहता है। तब तक जब तक कि वह अपने

विवेक और वैराग्य को पुनः न पा ले। और अपने पराक्रम से प्रकृति के सभी पाशों से स्वयं को मुक्त न कर ले। अविद्या से छुटकारा का यही उपाय है, पुरुष के उद्धार का यही उपाय है उसे स्वयं के स्वरूप की प्राप्ति का। यह उपाय है स्वयं की पूर्णता अर्जित करने का। यही उपाय है उसके सर्वव्यापी और अविनाशी होने का। यह उपाय है उसके कैवल्य पद पाने का।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अविद्या का विसर्जन होते ही कैवल्य की प्राप्ति

महर्षि यह स्पष्ट करते हैं कि सभी तरह की भ्रान्तियों एवं भ्रमों का मूल कारण अविद्या है, अज्ञान है। यही वह वजह है, जिसके कारण कुछ का कुछ समझ में आता है। यही वह कारण है, जिसके फेर में पड़कर चैतन्य आत्मा स्वयं को जड़ समझने लगता है। भ्रान्ति के इस मायाजाल में उलझकर फँसकर अपने आप का स्वरूप भूल जाता है। वह ऐसे में आनन्दमय होते हुए भी दुःख से विकल होता है। सर्वज्ञानमय होते हुए भी वह अज्ञानी की भांति व्यवहार करता है। शक्ति का परम स्रोत होते हुए भी वह स्वयं को दीन-हीन समझने लगता है। यह सब उलट-फेर केवल अविद्या की वजह से होती है। यह अविद्या यदि हट जाय-मिट जाय तो समझो कि अंधियारा प्रकाश में परिवर्तित हो गया। पुरुष-सम्पूर्ण रूप से प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो गया। उसके सभी भय, भ्रम एवं द्वन्द्व समाप्त हो गए। और वह अपने सत्-चित् एवं आनन्द रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

इस सच का निरूपण एवं प्रकटीकरण महर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में करते हैं-

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्॥ २/२५॥

शब्दार्थ- तदभावात्= उस (अविद्या) के अभाव से; संयोगाभावः= संयोग का अभाव (हो जाता है, यही); हानम्= हान (जन्म-मरण आदि सभी भावी दुःखों का आत्यान्तिक अभाव) है; तत्= वही; दृशेः= चेतन आत्मा का; कैवल्यम्= कैवल्य है।

भावार्थ- अविद्या की समाप्ति के द्वारा, अज्ञान के विसर्जन के द्वारा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

द्रष्टा और दृश्य का संयोग विनष्ट किया जा सकता है। यही मुक्ति का उपाय है, यही कैवल्य है।

यह सूत्र महर्षि पतंजलि की परम प्रज्ञा से जन्मा महामन्त्र है। यह वेदवाणी की भांति स्वयं में गहरे आध्यात्मिक रहस्य समेटे है। जो इस रहस्य को जानने का प्रयास करेंगे, वे यह जान पाएँगे कि महर्षि के इस सूत्रोच्चार में प्रयुक्त अविद्या शब्द का सम्बन्ध किसी बौद्धिक ज्ञान अथवा बौद्धिक अज्ञान से नहीं है। यह शब्द अपने अर्थ में शब्द और विचारों के महाअरण्य से सर्वथा दूर है। अविद्या तो एक तरह की मूर्च्छा है, जो पढ़े-लिखे को भी हो सकती है, और बिना पढ़े-लिखे को भी। इसी तरह विद्या जीवात्मा का जागरण है, होश है। और यह होश तब आता है, जबकि मूर्च्छा टूटे-बेहोशी हटे। इस स्थिति का किसी भी पढ़ाई-लिखाई से कोई वास्ता नहीं है। सच यही कहता है, प्रज्ञावानों के अनुभव यही कहते हैं- कि 'मसि कागद छुयो नहि, कलम गह्यो नहीं हाथ' की स्पष्ट घोषणा करने वाले कबीर परम प्रज्ञा को प्राप्त थे। वह सम्पूर्ण अर्थों में विद्यावान थे, अविद्या से मुक्त थे, जबकि विश्वविद्यालयों के सर्वोच्च अधिकारी प्रायः जीवन बोध से वंचित और अविद्या से घिरे देखे जाते हैं।

यही वजह है कि भारतभूमि की मिट्टी सदा से योग साधना का सन्देश देती आयी है। यहाँ के समस्त शास्त्र और श्रुतियों ने शब्द ज्ञान को कभी पर्याप्त नहीं माना। उन्होंने हमेशा ही यही कहा कि विक्षेप, मल एवं आवरण को हटाकर ही ज्ञान-विद्या अथवा होश पूर्ण हुआ जा सकता है। भले ही इसके लिए शब्दों का संसार छोड़ना पड़े, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का त्याग करना पड़े। अथवा फिर इन्हें रूपान्तरित करना पड़े। शब्द ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो अनुभव है, ज्ञान तो बोध है, ज्ञान तो जागरण है। जो जाग्रत् है, वही ज्ञानी है, जो बोधपूर्ण है वही विद्यावान है। जिसने अनुभव की सम्पूर्णता पायी है वही अविद्या से मुक्त है। और जो अविद्या से मुक्त हो सका, वही तो कैवल्य का अधिकारी है।

युगद्रष्टा गुरुदेव इस सूत्र की चर्चा में एक बड़ी मीठी सी कथा सुनाया करते थे। नालन्दा, तक्षशिला के नव्योत्थान का स्वप्न देखने वाले गुरुदेव का यह कथा प्रसंग भी नालन्दा विश्वविद्यालय से जुड़ा हुआ है। गुरुदेव बताया करते थे कि जिस समय नालन्दा का स्वर्णिम युग था, उन दिनों वहाँ पर आचार्य दीपंकर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की बड़ी ख्याति थी। वह अपने युग के महानतम् विद्वान एवं मनीषी थे। उनका जीवन बड़ा ही निष्कपट एवं साधनापूर्ण था। उन्हें जीवनतत्त्व की, जीवन सत्य की सहज जिज्ञासा थी। इस जिज्ञासा के कारण आचार्य दीपंकर का जीवन प्राय: अध्ययन मे बीतता था। अविरल खोज, अनवरत अनुसंधान एवं सतत् अध्ययन यही उनकी दिनचर्या थी।

एक रात्रि जब कि आचार्य दीपंकर अध्ययन करते-करते सो गए, तो उन्होंने स्वप्न देखा। उनका यह स्वप्न इतना सजीव था कि इसे स्वप्न न कहकर दृश्य कहना उचित होगा। यह बड़ा ही अद्‌भुत एवं विस्मयकारी दृश्य था। इस दृश्य में उन्होंने स्वयं भगवान् बुद्ध को देखा। बड़ी मोहक मुद्रा थी, उनकी। उनके नेत्र जैसे करुणा का अक्षय स्रोत थे। उनके अधरों पर सुखद मुस्कान थी। उन्हें देखकर आचार्य दीपंकर ने अपने सौभाग्य को मन ही मन सराहा। और उन्हें भक्तिपूर्ण प्रणाम किया। भगवान् तथागत मुस्कराए। उनकी यह मुस्कान ऐसी थी, जैसे कि हजारों-हजार जुही के फूल चारों ओर बिखर गए हों। इसी मुस्कान के मध्य उन्होंने पूछा- दीपंकर तुम क्या रह हो? उत्तर में दीपंकर ने कहा- भगवन्! मैं अध्ययन कर रहा हूँ। क्या अध्ययन कर रहे हो तुम? भगवन्, मैं धर्म, तत्त्वमीमांसा, दर्शन यही पढ़ रहा हूँ। भगवान् तथागत ने उनसे फिर पूछा- क्या तुम समझते हो इन्हें? अवश्य भगवन्! दीपंकर ने सम्पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहा। यह उत्तर सुनकर बुद्ध कुछ क्षणों तक मौन रहे- फिर बोले, तुम शब्दों को समझते हो या फिर अनुभव को।

आचार्य दीपंकर के लिए यह सवाल नया था। वह सालों-साल से नालन्दा विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे थे। हजारों विद्वानों से मिले थे। अनगिनत महान् आचार्यों से उनका शास्त्रार्थ हुआ था, अनेकों को उन्होंने पराजित किया था। पर अब तक यह सवाल उनसे किसी ने भी न पूछा था। हालांकि उन्होंने अब तक हजारों विद्यार्थियों की जिज्ञासाएँ शान्त की थीं। प्राय: सभी पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर उनके पास होते थे, परन्तु आज वह कुछ न बोल सके। फिर उन्होंने तथागत के मुख की ओर देखा, फिर उन्होंने सच बोला- प्रभु! मैं केवल शब्दों को समझता हूँ, मुझे कोई अनुभव नहीं है। आचार्य दीपंकर के इस उत्तर ने बुद्ध को प्रसन्न किया। उन्होंने अपना आशीर्वाद पूर्ण हाथ दीपंकर के सिर पर रखा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसी के साथ दीपंकर का स्वप्न टूट गया। जगने के साथ ही उनमें विकलता जाग उठी। आज पहली बार उन्हें शब्द ज्ञान निरर्थक लगा। उन्हें अहसास हुआ कि उन्होंने अब तक विद्या के भ्रम में केवल अविद्या का अर्जन किया है। पर अब और नहीं, अब तो उन्हें केवल अविद्या का विसर्जन करना है। इस नयी चिन्तन चेतना ने उन्हें रूपान्तरित कर दिया। उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़ दिया और तत्पर हो गए योग साधना में। उनके अन्तर्यात्रा के वैज्ञानिक प्रयोग प्रगाढ़ होते गए और सब भ्रान्ति पट हटते गए। अविद्या के सम्पूर्ण विसर्जन ने उन्हें कैवल्य का अधिकारी बना दिया।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बोध की पूर्णता में अज्ञान, अविद्या का विसर्जन

महर्षि पतंजलि के अनुसार कैवल्य को प्राप्त करना ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है और यही योग साधना की पूर्णता है। इसी को पाकर कुछ भी अन्य पाना शेष नहीं रहता। यह स्थिति योग साधक को कब मिलती है, उसे ही महर्षि ने अपने अगले सूत्र में प्रकट किया है-

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २/२६ ॥

शब्दार्थ— अविप्लवा=निश्चल और निर्दोष; विवेकख्यातिः=विवेकज्ञान; हानोपायः='हान' (पुनर्जन्म आदि समस्त भावी दुःखों के अत्यन्त अभाव) का उपाय है।

भावार्थ— बोध के निरन्तर विकसित होकर पूर्ण होने से-विवेकज्ञान के निश्चल व निर्दोष होने से अविद्या का, अज्ञान का, समस्त भ्रान्ति का विसर्जन होता है।

यह सूत्र प्रत्येक जिज्ञासु के लिए महामंत्र है। यह बोधवाक्य है उनके लिए जो अज्ञान के अन्धकार को मिटाना चाहते हैं, जो ज्ञान के प्रकाश पूर्ण प्रज्ञा लोक में प्रवेश करना चाहते हैं। महर्षि पतंजलि का यह सूत्र ऐसों के लिए प्रवेश द्वार है। उनके लिए यह सच्ची सीख है, सही विधि है। युगऋषि परम पू० गुरुदेव इस प्रसंग में एक बड़ा ही मार्मिक वचन कहते थे-लोग पाना तो ज्ञान चाहते हैं, लेकिन बटोरते हैं अज्ञान को। इसे अचरज पूर्ण विडम्बना ही कहेंगे कि अनुभव क्षमता को व्यापक बनाने की बजाय स्मृतिक्षमता में अभिवृद्धि की जाती है। बोध

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के स्थान पर बुद्धि की तकनीकों पर अनुसन्धान किया जाता है। इस प्रयास का परिणाम भी स्पष्ट है, मनुष्य की चेतना दिनों दिन सुप्त होती जा रही है और मनुष्यता प्रतिदिन सुप्त होती जा रही है।

युगद्रष्टा गुरुदेव ने अपने समय में धर्मतन्त्र के संचालकों और धार्मिकों का आह्वान करते हुए कहा था–''धर्मतन्त्र से लोकशिक्षण, धार्मिक क्रियाओं व कर्मकाण्डों से लोकजागरण।'' यह सच उनके समय से अब तक पता नहीं किसको कितना समझ में आया? परन्तु इसमें विवेकख्याति को निश्चल और निर्दोष बनाने की सम्पूर्ण साधनाविधि है। गुरुदेव कहते थे कि धर्म जीवन सार्थक है, साधना पूर्ण है, लेकिन तब जब यह हर पल, हर क्षण चेतना के चैतन्य को जगाए, जब यह विचारों व भावों को सकारात्मक सक्रिय करे। धर्म की क्रियाएं, धर्म के कर्मकाण्ड व्यक्ति व समूह में इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए हैं। यदि इनके माध्यम से यह न किया जा सका तो इन सबका औचित्य एवं अस्तित्त्व अपनी सार्थकता न सिद्ध कर पाएगा। यह तो तभी सार्थक है, जब धर्म की क्रियाएं और धर्म के कर्मकाण्ड करने वाला प्रत्येक व्यक्ति निरन्तर और उत्तरोत्तर विवेकख्याति की ओर बढ़े और बढ़ता रहे।

विवेकख्याति के सन्दर्भ में रामकृष्ण लीलामृत में बहुत मीठा प्रसंग है। इसमें कहा गया है कि परमहंस देव साधु व विद्वानों के सत्संग-समागम में विशेष-अभिरुचि लेते थे। उनसे मिलने केशवचन्द्र सेन, ईश्वर चन्द्र जैसे महान विद्वान प्रायः आते थे। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी जैसे उच्चकोटि के साधु उनके दर्शन को अपना सौभाग्य समझते थे। श्री रामकृष्ण देव अपनी वार्ता-चर्चा में अध्यात्मदर्शन एवं अनुभूतियों की बड़ी मौलिक एवं गूढ़ बातें जब प्रकट करते, तो सभी को परम आश्चर्य होता। वे सभी सोचने लगते कि इन्होंने तो कुछ विशेष पढ़ा लिखा नहीं है, फिर इतने गूढ़ ज्ञान की बातें भला ये कैसे कर पाते हैं? उत्तर में दक्षिणेश्वर के ये सन्त बस मुस्करा देते और मोहक हास्य के साथ कहते, सारा ज्ञान मां अन्दर से ठेलती है। ऐसे ही एक वार्ता प्रसंग में उन्होंने केशवचन्द्र सेन से कहा था - ''यथार्थज्ञान विवेकज्ञान है, जो पढ़ने से नहीं बल्कि चित्तशुद्धि से प्राप्त होता है।''

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

युगावतार श्री रामकृष्ण देव के शिष्य युगाचार्य स्वामी विवेकानन्द का शास्त्र अध्ययन, धर्म-दर्शन, साहित्य आदि विषयों का ज्ञान, उनका पांडित्य बहुत परिपक्व व प्रगाढ़ था। भारी-भारी कलेवर वाले ग्रन्थों को वे कुछ ही देर में पढ़ व समझ लेते थे। किशोरवय में ही उनकी विद्वता की प्रशंसा विश्व के महान दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर ने उनका एक लेख पढ़कर की थी। यह लेख एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में प्रकाशित हुआ था। पढ़ना स्वामी जी की ऐसी आदत थी कि जब भी उन्हें समय मिलता कुछ न कुछ पढ़ा करते थे। परन्तु जब से उनकी साधना सघन हुई, पढ़ना, बौद्धिक ज्ञान का अर्जन उनके लिए व्यर्थ होने लगा।

एक अवसर पर परमहंसदेव ने उनसे पूछा-नरेन इतनी सारी किताबें पढ़कर तुझे कैसा लगता है ? उत्तर में स्वामी जी ने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और बोले; ठाकुर! आपकी कृपा से मुझे अब सच समझ में आ गया है। इतनी ढेर किताबें पढ़कर मुझे यह लगने लगा है कि अब मुझे कोई ऐसी गोली मिल जाए, जिसे खाकर मैं वह सब भूल सकूं जो कि मैंने पढ़ रखा है क्योंकि पढ़ने से बहुत सारी जानकारियां एकत्र की जा सकती हैं, ज्ञान नहीं। क्योंकि ज्ञान तो ध्यान का सुफल है। निष्काम कर्मयोग व्यक्ति को ध्यान के लिए सुपात्र बनाता है और ध्यान से उसे ज्ञान होता है। जीवन के अन्तिम वर्षों में स्वामी जी अपने शिष्यों से कहा करते थे कि यदि पुनः मेरा बचपन वापस लौटे, फिर से मुझे पढ़ना पड़े तो मैं पढ़ने के स्थान पर एकाग्रता का अभ्यास सीखूंगा। इस एकाग्रता से ध्यान और फिर ध्यान से ज्ञान, क्योंकि ज्ञान के लिए आवश्यक चित्तशुद्धि। चित्त ज्यों-ज्यों निश्चल व निर्दोष होता जाता है, तदनुरूप उसमें विवेकज्ञान प्रकट होता है, व्यापक होता है। इसी के साथ दूर होती है, जीव की भ्रान्तियां, भटकाव व अज्ञान का अंधेरा। जिसे यह विवेकज्ञान मिला, उसके जीवन के सभी दुःख दूर हो जाते हैं। क्योंकि विवेकज्ञान ही तो हानोपाय है।

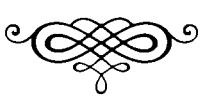

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सम्बोधि शिखर के सात चरण

महर्षि पतंजलि के शब्दों में योग साधक के चित्त में जैसे-जैसे विवेक ज्ञान का उदय होता जाएगा वैसे-वैसे उसकी प्रज्ञा प्रखर-प्रकाशित व प्रभापूर्ण होती जाएगी। यह विवेक ज्ञान ही हान (पुनर्जन्मादि भावी दुःखों के अभाव) का उपाय है। इसके प्रतिष्ठित होने पर साधक के चित्त में प्रज्ञा के विविध आयाम प्रकट होते हैं।

ये विविध आयाम क्या हैं ? इसी सत्य को महर्षि ने अपने अगले सूत्र में प्रकट किया है-

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २/२७ ॥

शब्दार्थ- उस (विवेक ज्ञान प्राप्त) पुरूष की; सप्तधा= सात प्रकार की; प्रान्तभूमिः = अन्तिम स्थिति वाली; प्रज्ञा= सम्बोधि होती है।

भावार्थ- सात चरणों में सम्बोधि की परम अवस्था उपलब्ध होती है।

योगऋषि पतंजलि के इस महत्त्वपूर्ण सूत्र में गहरे मर्म संजोये हैं। उनका कहना है आध्यात्मिक विकास जीवन में क्रमिक रूप से उत्तरोत्तर आता है। एक-एक पर्वत शिखर को पार करके ही सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा जा सकता है। उनका कहना है कि आध्यात्मिक जीवन की परमोच्च अवस्था को सात चरणों में पाया जा सकता है। इसमें घबराने की, चिन्तित होने की कोई बात नहीं है। भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण भी श्रीमद्भगवद्गीता में कुछ ऐसा ही कहते हैं- 'अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततो याति पराम् गतिम' पहले अनेक जन्मों की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साधना तब जाकर परम गति। जिन्हें इस जीवन में हम आध्यात्मिक जीवन के परमोच्च शिखर पर देखते हैं, उनके पीछे विगत के कई जन्मों की साधना का इतिहास जुड़ा हुआ है। जिन घटनाओं को हम अचानक होता हुआ देखते हैं, दरअसल उनकी पृष्ठभूमि में भी एक सुदीर्घ अन्तर्क्रिया चल रही होती है। क्रमिक विकास की सतत् एवं अविराम प्रक्रिया ही अचानक घटित होने वाली घटनाओं का कारण बनती है।

सम्बोधि की- प्रज्ञा की उच्चतर अवस्था के साथ भी क्रम विकास के सात चरणों की कथा जुड़ी है। इस सात की संख्या का जीवन की अदृश्य संरचना में भारी महत्त्व है। विवाह के समय की सप्तपदी, फिर सात जन्मों का साथ। इसके अलावा सप्तलोक, सात चक्र फिर वेदान्त में कही गयी ज्ञान की सप्तभूमियाँ। इसके बाद योग सूत्र व शास्त्र के महान् रचनाकार महर्षि पतंजलि ने प्रज्ञा की सात अवस्थाओं की चर्चा की है। यदि सूक्ष्मता से विचार करें तो ये सात अवस्थाएँ हठयोग के सात चक्रों के विकास से और वेदान्त की सप्तभूमियों पर आरोहण से सम्बन्ध रखती हैं। इनके शब्दों में भले ही भेद हो, पर अनुभूतियों के तल पर बहुत कुछ समरसता का अनुभव होता है।

योगसूत्र के प्रतिष्ठित टीकाकारों ने सप्तधा प्रज्ञा के दो मुख्य विभाजन किए हैं। इनमें से पहला है- १. कार्य विमुक्ति प्रज्ञा एवं दूसरा है- २. चित्त विमुक्ति प्रज्ञा। इसमें पहले तल पर योग साधक सभी तरह के कर्म-प्रारब्ध व संचित से, साथ ही क्रियमाण कर्त्तव्यों से मुक्त हो जाता है। दूसरी अवस्था में योग का उच्च आयाम प्रकट होता है। इस अवस्था में सभी तरह के कर्म संस्कारों को स्वयं में समेटने वाले चित्त का ही विसर्जन हो जाता है। त्रिगुण प्रकृति में लय हो जाते हैं और अन्ततः योग साधक स्वयं के स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। इसमें प्रथम विभाग के अन्तर्गत चार अवस्थाएँ आती हैं। जबकि द्वितीय विभाग के अन्तर्गत तीन अवस्थाओं का बोध होता है। इस तरह सप्तधा प्रज्ञा के प्रथम विभाग- कार्य विमुक्ति प्रज्ञा के अन्तर्गत १- ज्ञेयशून्य अवस्था- इस अवस्था में योग साधक के चित्त में विवेकज्ञान का उदय होता है। इस तल पर वह मुक्त होता है भ्रान्तियों, भ्रमों व भटकावों से। उसे जीवन व सृष्टि का सत्य, तत्त्व व यथार्थ का अनुभव होता है। जो कुछ भी जानने योग्य है, इस अवस्था को पाकर वह सब कुछ जान लेता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

२. हेयशून्य अवस्था है- पहली अवस्था में हेय को जानने के बाद इस अवस्था में वह सभी क्लेशों से अन्तिम छुटकारा पा लेता है। अभिनिवेश, राग, द्वेष, अस्मिता व अविद्या की गांठे यहाँ खुल जाती हैं, वह क्लेशों से निवृत्त होता है। महर्षि व्यास ने अपने योग भाष्य में इसके लिए कहा है- 'क्षीण हेयहेतत्त्वान पुनरेतेषां क्षेतव्यमस्ति' सभी हेयहेतु यहाँ विनष्ट हो जाते हैं। इसके बाद सप्तधा प्रज्ञा की ३. प्राप्य अवस्था है- इस अवस्था में योग साधक को पूर्णज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। सर्वोच्च समाधि में उपजने वाला ज्ञान उसकी सभी जिज्ञासाओं को शान्त कर देता है। तत्पश्चात् ४. चिकीर्षाशून्य अवस्था है- इस अवस्था के लिए योग सूत्र के भाष्यकारों ने कहा है- 'भावितोविवेक ख्याति रूपो हानोपाय: ।' तीसरी अवस्था में हान हो जाने पर हानोपाय यानि कि विवेक ज्ञान की पूर्णता यहाँ स्वत: सिद्ध हो जाती है। इसी के साथ साधक के सभी कार्य, कर्म व कर्त्तव्य पूर्ण हो जाते हैं।

इस अवस्था के बाद सप्तधा प्रज्ञा का द्वितीय विभाग- चित्त विमुक्ति प्रज्ञा का क्रम प्रकट होता है। इसके अन्तर्गत तीन अवस्था हैं, जिसमें कि पहली अवस्था सप्तधा प्रज्ञा के क्रम में पाँचवी अवस्था है। ५. चित्त सत्त्व कृतार्थता- इस अवस्था में चित्त का सम्पूर्ण कार्यपूर्ण हो जाता है। यहाँ योग साधक योग एवं अपवर्ग के सम्पूर्ण सच का अनुभव कर लेता है। इसके बाद इस क्रम में दूसरा, जबकि सप्तधा क्रम में ६. गुणलीनता है। इस अवस्था में योग साधक तीनों गुणों को प्रकृति में विलीन होते हुए अनुभव करता है। यहाँ पर प्रकृति के सभी पाशों से पुरूष मुक्त हो जाता है। और इसके बाद इस क्रम में तीसरी, जबकि सप्तधा प्रज्ञा के क्रम में सातवीं ७. अवस्था आत्मस्थिति है- इस भूमि में योगसाधक सम्पूर्णता युक्त व केवल ज्ञानी होकर अपने आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। सप्तधा प्रज्ञा की इस भावभूमि पर पहुँचना देवों एवं ऋषियों के लिए दुर्लभ है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए ही सम्पूर्ण साधनाएँ हैं। सभी आध्यात्मिक महामानवों ने इसी के लिए सभी तरह की साधनाओं की संरचना की है। सभी मत एवं सभी पथ यही विसर्जित होते हैं। महर्षि पतंजलि ने भी इसी उद्देश्य से योगशास्त्र की रचना की है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जो कलुष मुक्त कर सके, वही सच्चा योगी

अब तक यह स्पष्ट है कि यह प्रज्ञा दरअसल चित्त शुद्धि का प्रकाश है। जो चित्तशुद्धि के लिए प्रयासरत है, उन्हीं को प्रखर प्रज्ञा का प्रसाद मिल पाता है। पिछले अध्याय में वर्णित प्रज्ञा की सात अवस्थाएँ चित्तशुद्धि के उत्तरोत्तर विकास होने के परिणाम है। इसे पाने के लिए ही साधकों को कठिन साधनाश्रम करना पड़ता है। इसी के लिए योगीजन सतत योगाभ्यास करते हैं।

योगऋषि पतंजलि ने अपने अगले योग सूत्र में इसी सत्य का संकेत दिया है। इसमें वह कहते हैं-

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २/२८ ॥

शब्दार्थ- योगाङ्गानुष्ठात्= योग के अंग का अनुष्ठान करने से; अशुद्धिक्षये= अशुद्धि का नाश होने पर; ज्ञानदीप्तिः= ज्ञान का प्रकाश; अविवेकख्यातेः= विवेक ख्याति पर्यन्त हो जाता है।

भावार्थ- योग के विभिन्न अङ्गों के अभ्यास द्वारा अशुद्धि के क्षय होने से आत्मिक प्रकाश का आविर्भाव होता है, जो कि सत्य का बोध बन जाता है।

महर्षि पतंजलि अपने इस सूत्र में योग के मर्म को उजागर करते हैं। इसके अन्तःसत्य को प्रकाशित करते हैं। इस सूत्र पर थोड़ा गहरे में विचार करें तो वे अनेकों भ्रान्तियाँ दूर होती हैं, जो योग के बारे में फैली हुई हैं। कई लोगों का मानना है कि योग से बीमारियाँ दूर होती हैं। उनके मत से योग एक स्वास्थ्यवर्धक प्रक्रिया है। कुछ लोगों का मानना है कि योग एक चमत्कारी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्रिया है। इससे अनगिन सिद्धियाँ व विभूतियाँ मिलती हैं, जिससे कई असम्भव सम्भव किए जा सकते हैं। यहीं नहीं योग से कुछ विचित्र, विलक्षण व आश्चर्यजनक किया जा सकता है। ऐसे लोगों से महर्षि पतंजलि का कहना है- कि अपनी भ्रान्त धारणाएँ छोड़ो और योग के मर्म को, इसके अन्त:सत्य को जान लो। योग है अशुद्धिक्षय के लिए। योग का अन्तिम परिणाम पवित्रता है। योग के प्रयोगों से जैसे-जैसे अशुद्धि का नाश होता है, वैसे-वैसे पवित्रता विकसित होती और बढ़ती है।

इस पवित्रता के अनुरूप ही विकसित होती है योग साधक की प्रज्ञा, जाग्रत् होता है उसका अन्तर्विवेक। महर्षि जब अशुद्धि क्षय की बात कहते हैं, तो वह बात बताते हैं कि तुम्हें अपने लिए कुछ नया नहीं करना है, कोई नयी उपलब्धि अर्जित नहीं करनी है। बल्कि वह कचरा, वह कीचड़, वह कलुष निकाल फेंकना है, जो अब तक जानबूझकर या फिर अनजाने में इकट्ठा किया है। महर्षि अपने सूत्रों में अपरिग्रह का सन्देश देते हैं। उनके इस अपरिग्रह का मतलब है संचय का त्याग। क्योंकि जो संचय किया गया है, या फिर जो संचय हो रहा है अथवा जो कुछ भविष्य में संचय होगा, उससे केवल आत्मा का प्रकाश अवरुद्ध होगा। उससे कहीं न कहीं विवेकख्याति में बाधा आएगी।

दरअसल संचय की सोच ही अविवेक से जन्मती है। जो जीवन के सत्य को जानते हैं, जिन्हें कालचक्र की गति का ज्ञान है, जिन्हें प्रकृति में पल-पल हो रहे परिवर्तन क्रम का पता है, वे संचय के बारे में सोच ही नहीं सकते। क्योंकि प्रवाह को रोका नहीं जा सकता, बयार को बांधा नहीं जा सकता। संचय की सोच ही अर्थहीन है। क्योंकि यहाँ तो काल ही कर्मानुसार व्यक्तियों, वस्तुओं व परिस्थितियों को बटोरता और बिखेरता है। विवेकवान तो वे हैं जो काल और कर्म का उपयोग चित्त की अशुद्धियों के नाश के लिए करते हैं। जो ऐसा न करके बाल चपलता व चंचलतावश अपने जीवन के समय को मिट्टी के घरौंदे बनाने में खपाते हैं, उन्हें बस पछताना पड़ता है। यहाँ तो प्रत्येक कर्म इसी रीति से करना चाहिए कि आन्तरिक एवं बाहरी जीवन की अशुद्धियाँ धुल जाए। जो कुछ भी जन्मों से संचित किया गया है,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वह सब का सब मिट जाय। संचय का सारा कोश निश्चित काल सीमा में समाप्त हो जाय, बचे तो बस केवल प्रकाशित पवित्रता।

साधक एवं योगी इस ओर जितना बढ़ते हैं, समझो वे उतना ही सत्पथ पर चल पाते हैं, अन्यथा योग साधना के नाम पर वे सब केवल आडम्बर का बोझ ढोते हैं। युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव यदा-कदा अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में हिमालय यात्रा के प्रसंगों का जिक्र किया करते थे। इन्हीं प्रसंगों में एक रोचक घटना का स्मरण हो रहा है। एक हिमालय यात्रा में उन्हें हिमालय के अति दुर्गम क्षेत्र में एक योगी से मुलाकात हुई। ये योगी महाराज गुरुदेव से वर्षों पहले अखण्ड ज्योति संस्थान मथुरा में मिल चुके थे। इस मुलाकात में उन्होंने गुरुदेव से कुछ विलक्षण योग सिखाने का आग्रह किया था। उनके इस आग्रह पर पूज्य गुरुदेव ने उनसे कहा था- गायत्री साधना करते हुए लोकसेवा करो- सब कुछ अपने आप हो जाएगा। परन्तु उन्हें तो किसी चमत्कारी योगविधि की तलाश थी।

हिमालय में यहाँ उनसे मिलकर पूज्य गुरुदेव को अतीत का यह प्रसंग ध्यान हो आया। और उन्होंने उनसे पूछा- कैसी चल ही है तुम्हारी योग साधना। उत्तर में वह योगी महाराज बच्चों की तरह फूट-फूट कर रो पड़े। और कहने लगे- मेरा तो पतन हो चुका है, मेरी साधना नष्ट हो गयी है। गुरुदेव के आश्वस्त करने पर उन्हें अपनी पूरी कथा सुनायी। वह बोले- मैं आपसे मिलने के बाद सीधा हिमालय आ गया। यहाँ मेरी भेंट एक चमत्कारी साधु से हुई। उन्होंने मुझे अप्सरा साधना और गन्धर्व विद्या सिखायी। इससे मेरे सम्बन्ध अप्सराओं और गन्धर्वों से हो गए। प्रारम्भ में मुझे यह सब बहुत अच्छा लगा। इन्हें तनिक सा भी स्मरण करो तो ये प्रकट हो जाते हैं। फिर सुख भोग एवं वैभव, विलास के सारे साधन जुटा देते हैं। इसके बाद ये अदृश्य हो जाते हैं। इतना कहने के बाद उन साधक ने अपने द्वारा सिद्ध की गयी अप्सराओं का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे सचमुच ही प्रकट हो गयी। और फिर बस कुछ देर तक योग-भोग में परिवर्तित होता रहा। पूज्य गुरुदेव इस दृश्य को निहारते रहे।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसके बाद सब कुछ पूर्ववत हो गया। तब गुरुदेव ने उनसे कहा- तुम तो बड़े फेर में पड़ गए हो। तुम्हारी यह सिद्धि तुम्हारे इस जीवन का और फिर इसके बाद के जीवन का भी नाश करेगी। परन्तु भगवान् ने कृपावश तुम्हें मुझसे मिलाया है, तो हम तुम्हारा कल्याण करेंगे। हम अभी तुम्हारा उनसे सदा के लिए सम्बन्ध काट देते हैं। पर आगे कभी इन चक्करों में मत पड़ना। धैर्यपूर्वक गायत्री साधना करो। इससे चमत्कार तो नहीं होंगे, परन्तु तुम्हारी चेतना अवश्य निर्मल होगी। और यह चेतना की निर्मलता ही तो योग है। उन्होंने गुरुदेव की बात मान ली और गायत्री साधना में लग गए। इस कथा को सुनाने के बाद गुरुदेव हँसते हुए बोले- बेटा सच्ची साधना हिमालय में नहीं मन में होती है। जो अपने मन को, अपने जीवन को जितना स्वच्छ कर सका, कलुष मुक्त कर सका, समझो कि वह उतना ही सच्चा और श्रेष्ठ योगी है। क्योंकि अशुद्धि क्षय ही योग की सभी क्रियाओं एवं अनुष्ठानों का लक्ष्य है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अष्टांग योग के आठ चरण

योग सूत्रकार महर्षि पतंजलि के अनुसार इस योग का सम्पूर्ण विज्ञान अशुद्धि क्षय में है। वह कहते हैं कि योग के अंग का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होने पर, ज्ञान का प्रकाश विवेक ख्याति पर्यन्त हो जाता है। महर्षि के अनुसार योग का यथार्थ यही अशुद्धि क्षय है। ये अशुद्धियाँ चित्त में है। इन्हीं को क्षीण होना चाहिए, इन्हीं का क्षय होना चाहिए। यही अवरोधक है आत्मा के प्रकाश की अभिव्यक्ति में। जो इस सत्य को नहीं समझते वे देह की पवित्रता को ही सब कुछ मान लेते हैं। वस्त्रों का, भोजन का शुद्ध होना उचित है, और ऐसा किया भी जाना चाहिए, परन्तु इसकी सीमा केवल सामान्य स्वास्थ्य तक है। साधना की परिधि एवं परिक्षेत्र इससे कहीं अधिक व्यापक हैं। यह देह शुद्धि नहीं वरन् चित्त शुद्धि है। तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने योग साधना का सम्पूर्ण विज्ञान इसी के लिए गढ़ा है।

योगर्षि पतंजलि अपने अगले योगसूत्र में इसी सच को उजागर करते हैं -

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयो-ऽष्टावङ्गानि ॥२/२९॥

शब्दार्थ- यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधय:= यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि; अष्टो= ये आठ; अङ्गानि= (योग के) अङ्ग हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ- योग के आठ अंग हैं:- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र अदभुत है। इस एक सूत्र में सम्पूर्ण योग है। योग के प्रयोग में जो कुछ भी किया जाना है, योग की जो भी विधियाँ हैं, वे भी इस एक सूत्र में हैं। इस सूत्र से बाहर कुछ भी नहीं है। इन आठ चरणों या आठ अंगों के आधार पर ही महर्षि पतंजलि के योग सूत्र को अष्टांग योग भी कहा जाता है। योग की इन आठ विधियों को योगवेत्ताओं ने चरण व अंग दोनों ही कहा है। सत्य यही है कि ये दोनों ही शब्द इसके लिए सही एवं उपयुक्त हैं। ये आठ योग के चरण इसलिए हैं, क्योंकि एक के पीछे दूसरा चला जाता है। इनके विकास का एक क्रम है। लेकिन केवल ये चरण नहीं हैं, योग साधना की देह के अंग भी हैं। इन सभी का आपस में गहरा आन्तरिक जुड़ाव है। उनका एक जीवन्त एवं प्रगाढ़ अन्तर्सम्बन्ध है। जैसे किसी व्यक्ति के हाथ, पांव, हृदय, उदर, लीवर आदि अंग एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करते हैं, कुछ वैसी ही स्थिति यहाँ भी है।

किसी एक अंग को पूरी तरह से देह से अलग नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि हृदय को देह से अलग कर दिया जाय तो वह निर्जीव हो जाएगा। इसी तरह से यदि हाथ-पांव देह से अलग हो जाएँ तो ये पूरी तरह से निरर्थक एवं निष्प्राण हो जाएँगे। योग के इन सारे आठों अंगों के मिलने पर ही योग साधना सम्पूर्ण होती है। उसके सिद्धान्त, उसका विज्ञान-विधान अपने समग्र व सार्थक परिणाम प्रस्तुत करते हैं। हालांकि इन आठों का संयुक्त रूप से और अलग-अलग अपना विशेष महत्त्व है। जिस तरह से शरीर के सभी अंगों का संयुक्त महत्त्व होने के साथ, उनका अपना पृथक् महत्त्व भी है। प्रत्येक अंग की अपनी विशेष क्रियाविधि एवं विशिष्ट परिणाम है। ठीक यही बात योग के आठ अंग या आठ चरणों के बारे में है। प्रकृति से, अस्तित्त्व से या फिर यूं कहें कि परमात्मा से हममें से हर एक को सीमित ऊर्जाएँ मिली हुई हैं। योग के आठों अंग या फिर आठों चरण इनका उपयोग कुछ इस तरह से करना सिखाते हैं कि ये सीमित ऊर्जाएँ-असीम का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

द्वार खोल दें। सामान्य सा दिखने वाला जीवन, ज्ञान, शक्ति व प्रकाश का अक्षय व अजस्र स्रोत बन जाए।

इन आठ अंगों में पहला क्रम यम का है। यह इसलिए है ताकि ऊर्जाओं का क्षरण रुके। अपने सार रूप में यह ऊर्जा संरक्षण की विधि है। इसके द्वारा व्यवहार का ऐसा सुगढ़ ढंग से रूपान्तरण करते हैं कि जीवन की सीमित ऊर्जा न केवल संरक्षित हो, बल्कि अपने आश्चर्यकारी परिणाम प्रस्तुत करने लगे। दूसरे क्रम में नियम है- यह प्रवृत्तियों के परिशोधन के लिए है। प्रवृत्तियाँ यदि परिशोधित हो तो जीवन में स्थिरता व शान्ति स्वभावत: आ जाती है। तीसरा क्रम आसन का है। यह देह को शुद्ध एवं स्थिर बनाने के लिए है। जो देह को शुद्ध व स्थिर बना सका, वही योग साधना करने के लिए सुयोग्य-सत्पात्र होता है। चौथे क्रम में प्राणायाम है। यह प्राणतत्त्व की साधना है। इस प्राण की डोर से ही हमारे व्यक्तित्व एवं अस्तित्त्व के सभी अंग गुंथे हैं। प्राणायाम से प्राण तत्त्व शुद्ध होता है। इस प्राण तत्त्व की शुद्धि से मन की धारणा शक्ति विकसित होती है। प्राणायाम न केवल देह को स्वच्छ व स्वस्थ करता है, बल्कि मन को भी स्वच्छ व प्रखर बनाता है।

योग के इन चार अंगों या चरणों के बाद पांचवे क्रम में प्रत्याहार है। यह जीवन की सूक्ष्म ऊर्जाओं के संरक्षण व रूपान्तरण की विधि है। इसके माध्यम से बाहर बिखरने वाली शक्तियों को संरक्षित कर उनका आन्तरिक साधना में सदुपयोग किया जाता है। प्रत्याहार क्रिया में सक्षम साधक ही योग की आन्तरिक व अन्तरंग साधना के लिए सुपात्र सिद्ध होते हैं। इसके बाद छठवां क्रम धारणा का है। यह योग की उन्नत साधना के लिए उठाया जाने वाला महत्त्वपूर्ण चरण है। जिसने अपने व्यवहार, प्रवृत्ति व प्राण को परिमार्जित कर लिया है, वही धारणा के लिए सुयोग्य होता है। अचंचल व निर्मल मन से धारणा का अभ्यास हो पाता है। धारणा में स्थिरता, निरन्तरता ही योग साधक को योग के सातवें अंग ध्यान के अनुकूल बनाती है। और यह ध्यान ही योग साधक के व्यक्तित्व में विराट् के द्वार खोलता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ध्यान की प्रगाढ़ता, परिपक्वता व प्रखरता ही योगी को समाधि में प्रवेश दिलाती है। इस समाधि के भी विभिन्न स्तर हैं, जो साधक के जीवन में अपने अनुरूप सुपरिणाम प्रस्तुत करते हैं।

योग के अन्य सभी सात अंगों से जहाँ केवल परिशोधन-परिमार्जन की क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं। भले ही इनके स्तर कितने ही पृथक्-पृथक् क्यों न हों। परन्तु समाधि के निरन्तर अभ्यास परिशोधन-परिमार्जन की सूक्ष्म क्रियाओं के साथ रूपान्तरण की क्रियाएँ भी सम्पन्न होती हैं। जिनका समाधि में प्रवेश है, अथवा जो समाधि के रहस्य के मर्मज्ञ हैं, वे इस पंक्ति को समझ सकते हैं कि समाधि के द्वारा साधक कितना सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिशोधन सम्पन्न कर सकता है। यहीं से देह, प्राण व मन के रूपान्तरण का रसायन भी प्रकट होता है। हालांकि रूपान्तरण की अवस्था योग की उच्च कक्षा है। और इस तक विरले योग साधक ही पहुँचते हैं। परन्तु जो पहुँचते हैं, अथवा जो पहुँच सके हैं, उन्हें मालूम है, उनके लिए देश व काल खण्डित व सीमाबद्ध नहीं रहता। वे अखण्डता में अखण्ड होकर रहते हैं। यही नहीं वे आत्म प्रकाश को देह, प्राण व मन के तलों पर अवतीर्ण करने में समर्थ होते हैं। योग के इन सभी सात अंगों की समस्त शक्तियाँ इस समाधि रूपी आठवें अंग में अनन्त गुना हो जाती है और योग अपने सर्वोच्च परिणाम प्रस्तुत करता है। इस अवस्था में साधक प्रकृति की सभी कक्षाओं को पारकर पुरूष के स्व-स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अुनशासन को, यम के शासन को स्वीकारें

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग जीवन को मंगलमय बनाते हैं। जिसके जीवन में भी इन आध्यात्मिक प्रयोगों की परिपक्वता, प्रगाढ़ता एवं प्रखरता आयी है, वे सभी सदा ही इस लोक के लिए आशीर्वाद सिद्ध हुए हैं। उन्होंने अपनी पवित्रता से इस संतप्त संसार पर शांति का अभिसिंचन किया है। ऐसा वे इसलिए करने में समर्थ एवं सक्षम हुए क्योंकि अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों ने उन्हें, उनकी आन्तरिक एवं बाह्य प्रकृति को परिशोधित किया, पवित्र बनाया। उनके आन्तरिक एवं बाहरी जीवन ने सुखद सामञ्जस्य की सृष्टि की। और फिर उनका व्यक्तित्व पवित्र शान्ति का सुखप्रद स्रोत बन गया। इन पंक्तियों में जो कुछ भी लिखा गया है, वह सब बीते युगों का, बीत रहे वर्तमान का एवं आने वाले युगों का सत्य है। यह वह युग-युगीन अनुभव है, जिसे योगीजन सदा से उपलब्ध करते आए हैं और सदा करते रहेंगे।

योग के प्रयोगों की यथार्थ उपलब्धि पवित्रता ही है। यह जिसे मिल सकी उसे फिर कुछ और पाना शेष नहीं रहता। योग के सभी आठ अंगों का अनुष्ठान इसीलिए किया जाता है कि अन्तः-बाह्य की सभी अशुद्धियों का क्षय हो सके। इस अशुद्धि क्षय के अनुरूप ही योग साधक में पवित्रता का विकास होता है। अशुद्धि क्षय के पूर्ण होते ही पवित्रता भी अपनी सम्पूर्णता को प्राप्त कर लेती है। जो इस सच्चाई को समझते हैं, वे ही योग के यथार्थ व वास्तविक उद्देश्य को, इसके सही स्वरूप को समझ पाते हैं। जिनके मन में योग विज्ञान केवल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्वास्थ्य की सहूलियत है या फिर किसी सिद्धि या विभूति की बाजीगरी, वे योग के यथार्थ मर्म से अपरिचित हैं। उनके लिए अनिवार्य हो जाता है, कि वे योग के संप्रत्ययों एवं इसकी धारणाओं पर पुनः मनन-चिन्तन करें। और परिष्कृत करें अपनी धारणाओं को, मान्यताओं को, क्योंकि यही परिष्कार उन्हें उनके जीवन का परिष्कार देगा।

महर्षि पतंजलि योग के प्रथम अंग- यम के रहस्य को अनावृत्त करते हुए कहते हैं कि-

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥२/३०॥

शब्दार्थ- अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः= अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी का अभाव), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (संग्रह का अभाव)- ये पाँच; यमाः= यम हैं।

भावार्थ= योग के प्रथम अंग या प्रथम चरण- यम के अन्तर्गत आते हैं ये पाँच व्रत- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह।

योगसूत्रकार महर्षि का यह सूत्र समस्त योग विज्ञान की आधारशिला है। क्योंकि महर्षि ने तो योग का प्रारम्भ ही अनुशासन से किया है। उनके अनुसार यह अनुशासन ही योग का परिचय है, पर्याय है, परिभाषा है। इस अनुशासन के अभाव में योग किसी भी तरह सम्भव नहीं। उन्होंने योग के मंगलाचरण प्रकरण में ही कहा है- 'अथ योगानुशासनम्' ॥१/१॥ अर्थात् अब योग का अनुशासन। यानि कि अब तक जो भी था, जैसा भी था, जो भी जीवन शैली थी, जैसी भी जीवन पद्धति थी, जिस तरह का भी जीवन जीते थे, सब ठीक। लेकिन ये सब बीते समय की बातें थीं। परन्तु अब, जबकि यह निश्चय किया है कि योग साधना करेंगे। तो बात बदल गई। इस क्षण से, इस वर्तमान के पल से ही सब कुछ परिवर्तित होगा। अब बीते समय का सच काम नहीं आएगा। अब बीते समय की जीवन शैली को त्यागना होगा। क्योंकि योग के अनुशासन को स्वीकार किए बिना योग साधना सम्भव नहीं।

यह योग का अनुशासन आखिर है क्या? तो महर्षि पतंजलि इसके उत्तर में केवल दो अक्षरों का एक शब्द उच्चारित करते हैं- 'यम'। यम इस शब्द

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

की अध्यात्म विद्या के साहित्य में, पौराणिक कथा साहित्य में बड़ी चर्चा है। पुराणों में यम को संयमिनी पुरी का अधिपति कहा गया है। पुराण कथाएँ इस सच को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत करती हैं कि यम किस तरह जीवात्माओं को अनुशासन में रखते हैं। संयमिनी में जीवात्माओं को भांति-भांति से कल्मष मुक्त किया जाता है। वहाँ पर जीवों को बड़े कठोर अनुशासन में रहना पड़ता है, क्योंकि यमदेव अपने अनुशासन में कोई ढील नहीं बरतते। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता के दसवें अध्याय के २९वें श्लोक में योगेश्वर श्रीकृष्ण यम को अपनी विभूति बताते हुए कहते हैं- 'यमः संयमतामहम्।' यानि कि अनुशासन करने वालों में मैं यम हूँ।

योगऋषि पतंजलि कहते हैं कि प्रत्येक योग साधक को स्वयं ही अपने लिए 'यम' की भूमिका निभानी पड़ती है। महर्षि पतंजलि के इस सूत्र सत्य को परम पूज्य गुरुदेव ने अपने जीवन मंत्र के उच्चार क्रम में कहा है- 'अपने प्रति कठोरता-दूसरों के प्रति उदारता।' यह बात निर्विवाद सच है कि जो स्वयं ही स्वयं के लिए यम की भूमिका का निर्वाह करते हैं, जो स्वयं अपने प्रति कठोर होते हैं, केवल उन्हीं का जीवन मंगलमय एवं सभी के लिए आशीर्वाद बनता है। जिस तरह से यमदेव दण्ड धारण करते हैं, ठीक उसी तरह योग साधक को पंचमहाभूतों, पंचप्राणों पर संयमन करने के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह रूपी पंचमहाव्रतों की व्यवस्था करनी पड़ती है।

इस सूत्रचर्चा क्रम में कभी परम पूज्य गुरुदेव ने अपनी आध्यात्मिक संगोष्ठियों में कहा था कि योग साधक वह है जो आकाशवत् सबका होकर सबमें रहे। जो आकाश के इस गुण को धारण करता है- वही वैरमुक्त अहिंसक होता है। इसी तरह योगी को वायु की भांति निर्लेप होकर सत्य की अभिव्यक्ति करनी चाहिए। गन्ध शुभ यो या फिर अशुभ वायु इससे निर्लेप होकर सत्य बता देती है। इसी के साथ योगी को जल की भांति चोरी के भाव से मुक्त होना चाहिए। जल सदा शान्ति का अभिसिंचन करता है, तृप्ति का वरदान देता है। उसे कभी किसी से कुछ पाने की चाहत नहीं रहती। अग्नि का स्वभाव सदा ऊपर उठना है, साथ ही कल्मषों का दहन करना है। योग साधक के प्राणों को भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अग्नि की ही भांति ऊर्ध्वगामी, काम कल्मष का दहन करने वाला होना चाहिए। यह तभी सम्भव है, जबकि योग साधक ब्रह्मचर्य के महाव्रत का पालन करे। क्योंकि ब्रह्मचर्य का व्रत ही प्राणाग्नि को ऊर्ध्वगामी, पावन एवं काम वासना को दग्ध करने वाला बना सकता है।

योग सूत्रकार द्वारा बताए गए यम का पाँचवां आयाम है- अपरिग्रह। पंचभूतों में पृथ्वी- अपरिग्रह की शिक्षा सर्वाधिक मुखर एवं प्रखर ढंग से देती है। पृथ्वी- किसान द्वारा बोये जाने वाले बीज के दानों को भी अपने पास नहीं रखती, बल्कि उसे शत-सहस्र गुना कर वापस कर देती है। योग साधक का स्वभाव भी सदा पृथ्वी की भांति क्षमाशील एवं अपरिग्रही होता है। वह कभी किसी से कुछ स्वीकारता नहीं और यदि परिस्थितिवश उसे थोड़ा-बहुत स्वीकार करना भी पड़ता है, तो वह उसे अधिक मात्रा में वापस करता है। आसक्तियाँ एवं अपेक्षाएँ उसे नहीं बांधती। वह सभी कामनाओं से सर्वथा मुक्त होता है। अपने आप पर उसका कठोर अनुशासन होता है। इस अनुशासन से ही वह साधना पथ पर तीव्र गति से अग्रसर होता है। जो अनुशासन को, यम के शासन को स्वीकार करने में हिचकिचाते हैं, उनके लिए योग साधना कर पाना सम्भव नहीं है, उन्हें मान लेना चाहिए कि योग की डगर उनके लिए नहीं है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पंचव्रतों को महाव्रतों की तरह निभाएँ

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों की प्रयोगशाला है- देह और मन। इसी अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक प्रयोगशाला में अन्तर्यात्रा विज्ञान की वैज्ञानिक क्रियाएँ एवं परिणाम घटित होते हैं। योग के प्रयोगों के लिए देह एवं मन की दृढ़ता-प्रखरता एवं परिष्कृति आवश्यक है। क्योंकि इस अनिवार्य शर्त को पूरा किए बिना चित्त शुद्धि घटित नहीं हो सकती। कारण यह है कि देह और मन ही वे द्वार हैं, जिनके माध्यम से कर्मों का परिमार्जन होता है। इन्हीं द्वारों से चित्त के संस्कार अपनी अभिव्यक्ति करते हैं। ऐसी स्थिति में यदि देह एवं मन परिष्कृत एवं सुदृढ़ न हुए तो कुसंस्कारों की शुद्धि सम्भव न हो सकेगी। रोग, शोक, सन्ताप एवं विषम परिस्थितियों के रूप में प्रकट होने वाले कुसंस्कारों के प्रबल आघात देह एवं मन को बालुका-भीति की भांति ढहा देंगे। और देह पंचमहाभूतों में विलीन हो अपने अस्तित्त्व को खो देगी। इसी तरह मन शोक-सन्ताप की प्रलय में लय हो जाएगा। ऐसा न हो और योग साधना अविराम चलती रहे, इसीलिए योगी के लिए व्रतशील जीवन अनिवार्य है। इन व्रतों से योग साधक का जीवन न केवल परिष्कृत होता है बल्कि सुदृढ़ भी बनता है।

यम रूपी प्राथमिक अनुशासन, यही कार्य सिद्ध करता है, इनका व्रत बन्धन क्रमिक रूप से चेतना के रूपान्तरण को घटित करता है। योग विज्ञान क्रोध को बोध में, लोभ को त्याग में, काम को प्रेम में, आसक्ति को अनासक्ति में एवं अहंकार को ओंकार में बदल डालता है। योग के प्रयोगों में ढलकर कोई भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस अनुभव को प्राप्त कर सकता है। जो भी इस अनुभव को पाना चाहे, उनके लिए योग के अनुशासन का इन महाव्रतों का पालन आवश्यक है।

इन व्रतों के महाव्रत रूप की व्याख्या करते हुए महर्षि पतंजलि अपने नए सूत्र का उद्घाटन करते हैं-

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्॥ २/३१॥

शब्दार्थ- जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः= (यम के ऊपर कहे गए पाँचों आयाम) जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित; सार्वभौमाः= सार्वभौम होने पर; महाव्रतम्= महाव्रत हो जाते हैं।

भावार्थ- ये पाँचव्रत बन जाते हैं महाव्रत, जब इनकी व्यापकता जाति, देश, काल एवं सभी तरह के निमित्त की सीमाओं को पारकर सार्वभौम हो जाती है।

इस सूत्र की व्यापकता में न केवल योग अनुशासन, योगव्रत की व्यापकता है, बल्कि इसमें योग की व्यापकता भी अन्तर्निहित है। न केवल योग के व्रत बल्कि सम्पूर्ण योग साधना सभी बन्धनों व सीमाओं के पार एवं परे है। पतंजलि योगसूत्र में वर्णित योग साधनाएँ कोई भी, कहीं भी, किसी भी अवस्था में कर सकता है। इसके लिए जाति का कोई भी बन्धन नहीं है, न केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, वरन हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, यहूदी, पारसी, बौद्ध, जैन कोई भी योग साधना के प्रयोगों को अपनाकर स्वयं के जीवन में इनके सार्थक परिणाम पा सकता है। इसी तरह हिमालय की तलहटी हो या सागर का किनारा, योग साधना कहीं भी की जा सकती है। हिन्दुस्तान ही नहीं, चीन, जापान, अमेरिका, इंग्लैण्ड, अफ्रीका आदि किसी भी देश में योग के प्रयोग सम्भव है। इनके लिए काल की भी कोई सीमा नहीं है। प्रत्येक समय इसके लिए सुसमय एवं शुभ मुहूर्त है। जो भी कोई योग की वैज्ञानिक क्रियाओं को करेगा, उसे इसके शुभ एवं सार्थक परिणाम अवश्य प्राप्त होंगे।

योग साधना की व्यापकता, सार्वभौमिकता के साथ यहाँ पर विशेष प्रसंग उन पांच यम व्रतों का है जो कि जाति, देश, काल की सीमा बन्धन से मुक्त होने पर सार्वभौम हो जाते हैं और महाव्रत बन जाते हैं। ये व्रत महाव्रत बने इसके

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लिए योग साधक इन व्रतों का पालन प्रत्येक अवस्था एवं स्थिति में करता है। उदाहरण के लिए यदि अहिंसाव्रत की बात करें तो यदि किसी ने यह नियम लिया है कि मछली को छोड़कर अन्य जीव नहीं मारूँगा तो यह जाति अवच्छिन्न अहिंसा हुई। इसी तरह यदि कोई यह व्रत ले कि किसी भी तीर्थ स्थान में हिंसा नहीं करूँगा तो वह यह देश अवच्छिन्न अहिंसा हुई। यदि कोई यह व्रत ले कि एकादशी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को किसी को नहीं मारूँगा तो कालावच्छिन्न अहिंसा व्रत हुआ। यदि किसी का यह नियम है कि मैं विवाह के समय को छोड़कर अन्य किसी कारण से हिंसा नहीं करूँगा तो यह समयावच्छिन्न अहिंसा व्रत है। ठीक यही बात यम के अन्य आयामों या सोपानों के सम्बन्ध में है। इन प्रतिबन्धों के साथ इन्हें व्रत तो कहा जाएगा, परन्तु महाव्रत नहीं।

इन्हें महाव्रत तभी कहा जा सकेगा जब कि इन पर जाति, देश, काल व निमित्त का कोई भी प्रतिबन्ध न रहे। किसी भी कारणवश इनमें कोई भी शिथिलता न बरती जाय। यदि इन व्रतों को साधना जीवन में महाव्रत का रूप दिया जा सका तो ये साधक को परिष्कृत करने में, उसके अहंकार को पूरी तरह से मिटा देने में सक्षम हैं। कई बार यह देखा जाता है कि कुछ लोग इन व्रतों को अपने जीवन के महाव्रत बनाएँ बिना ही योग साधना में काफी आगे बढ़ जाते हैं। उनमें योग शक्ति भी पर्याप्त मात्रा में आ जाती है। वे इसका प्रदर्शन भी करते हैं। परन्तु तब उनमें और तमाशा दिखाने वाले जादूगरों एवं बाजीगरों में कोई अन्तर नहीं रहता। वे सदा विवेक और वैराग्य से विहीन रहते हैं।

बिना विवेक एवं वैराग्य के योग नहीं सधता। क्रियाएँ कुछ भी और कैसी भी क्यों न हों, इनसे तत्त्वज्ञान नहीं हो पाता। इन सबके लिए योग साधक को अपने अहंकार का विनाश करना पड़ता है। जो पांचव्रतों को महाव्रत की तरह से निभाने से हो जाता है। ध्यान रहे योग साधना में प्रकृति को पार करना पड़ना है। और प्रकृति के अन्तर्गत न केवल यह स्थूल जगत है, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि है। यथार्थ में प्रकृति-शक्ति है। इसे पार कर पाना सहज नहीं है। जिसमें थोड़ा सा भी अहंकार है, वह कहीं न कहीं, किसी न किसी स्तर पर फँसता-उलझता एवं स्वयं को विनष्ट करता है। इसलिए योग साधना करने वालों के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लिए अति अनिवार्य है कि वे योग मन्दिर में प्रवेश से पहले ही अहंकार का त्याग कर दें, तब प्रकृति का सम्पूर्ण विस्तार, इसके समस्त परिवर्तन, अनायास ही साधना के सहयोगी बन जाएँगे। और योग साधक का जीवन स्वयं के लिए व औरों के लिए मंगलमय आशीष बन जाएगा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आत्मशोधन का विज्ञान है- नियम

महर्षि पतंजलि द्वारा पिछले सूत्र में वर्णित महाव्रत का सम्बन्ध केवल यम से ही नहीं है, इसका सम्बन्ध नियम से भी है। नियम में उन तत्त्वों का समावेश है जो व्यवहार के आधार, विचार एवं संस्कार को परिष्कृत करते हैं।

इस नियम के सत्य का उद्घाटन महर्षि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में किया है-

शौच सन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानिनियमाः ॥ - ॥ २/३२ ॥

शब्दार्थ= शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि= शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति (ये पाँच); नियमाः= नियम हैं।

भावार्थ= शुद्धता, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर के प्रति समर्पण ये नियम योग साधक को पूरे करने होते हैं।

महर्षि के इस सूत्र में अन्तस शोधन का विज्ञान निहित है। योग है ही प्रारम्भ से लेकर शिखर तक शोधन की क्रिया एवं कला। हठयोग की सीमाएँ केवल देह शुद्धि तक हैं। लेकिन महर्षि पतंजलि के सूत्रों में शोधन की सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म क्रियाएँ और कलाएँ हैं। जिनका क्रमिक एवं उत्तरोत्तर विकास होता है। यम के बाद नियम के प्रतिपादन में भी यही विकास क्रम है। यम यदि व्यवहार शोधन के लिए है तो नियम अन्तस शोधन के लिए है। इसके प्रथम तत्त्व का तो नाम भी शुद्धता यानि कि शौच है। शौच केवल कुल्ला-दातून करने से, नहाने-धोने से नहीं निभता। हालांकि शरीर-स्वास्थ्य की दृष्टि से इसकी भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जरूरत है। लेकिन जब बात योग साधना की आती है, तो इसमें कुछ और भी चीजें जुड़ती हैं। भोजन की शुद्धता, शरीर की शुद्धता एवं मन की शुद्धता मिलाकर शौच का उद्देश्य पूरा होता है।

भोजन की शुद्धता का मतलब है ऐसा सात्त्विक एवं स्वल्प आहार जो शरीर व मन को विषाक्त न करे। जो श्रम से अर्जित किया गया हो और श्रम के लिए प्रेरित करे। शरीर शुद्धि का मतलब है कि शरीर से वह कुछ भी न किया जाय जो शरीर में, दूसरों के जीवन में, वातावरण में विष घोले। और वह सब अवश्य किया जाय जो शरीर के विषों को निष्कासित करे। फिर चाहे वह स्नान, अभ्यंग अथवा आयुर्वेद के पंचकर्म हों या फिर हठयोग के षटकर्म। ऐसे श्रम जनित सत्कर्म भी इसमें सम्मिलित हैं जो शरीर को सात्त्विकता, स्वास्थ्य एवं आरोग्य देने वाले हैं। इसके बाद मन की शुद्धता है यह सदा सत्चिंतन एवं सद्भाव से सम्पन्न होती है। यह स्थिति बने और बनी रहे इसके लिए योग साधक को ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, चुगली, परव्चर्चा एवं परचिन्तन से यथा सम्भव बचना चाहिए।

इसके बाद सन्तोष का क्रम है। जो शुद्धता की ओर अग्रसर है वही सन्तोष पा सकते हैं। साधक के जीवन में सन्तोष बड़ी सकारात्मक उपलब्धि है। सन्तोष का मतलब मन मारना अथवा स्वयं का दमन करना नहीं है। यह गीता की भाषा में '**आत्मान्येवात्मना तुष्टः**' अर्थात् आत्मा से आत्मा में सन्तुष्ट की स्थिति है। अन्तःकरण की पवित्रता से उपजे विवेक का परिणाम है सन्तोष। जो जितना शुद्ध है, जितना समझदार है वह उतना सन्तुष्ट भी होगा। समझदारी एवं सद्विवेक जगते ही कामनाओं की व्यर्थता समझ में आ जाती है। और सहज ही सन्तोष की, शान्ति का विकास होता है।

इसके पश्चात् तप है। यह योग के प्रयोग करने वालों के जीवन का स्वभाव है। योगी के तप में मूलतः तीन बातें हैं- १. संकल्प, २. साहस, ३. सहनशीलता। साधना जीवन में इन तीनों का चरम एवं परम विकास ही तप है। पहले क्रम में योग की कठिन से कठिन साधना के लिए संकल्पित होना। ऐसा संकल्प जिसमें कोई विकल्प न हो। इसके पश्चात् है साहस। यह साहस तपस्वी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का स्वभाव होता है। साधना के सभी कठिन एवं जटिल मार्ग उसे उत्साहित करते हैं। वह साहसपूर्वक इन कठिनताओं एवं जटिलताओं को रौंदते हुए आगे बढ़ता है। इसके साथ सहनशीलता अनिवार्य रूप से जुड़ी है। साधना मार्ग पर चलना छुरे की धार पर चलना है। यह वही कर सकता है जिसमें अतिमानवीय सहनशीलता हो। यह तपस्वी का परिचय है और पर्याय भी।

तप के बाद नियम का अगला चरण स्वाध्याय है। अपने गहरे अर्थों में स्वाध्याय मानसिक संरचना के पुनर्निर्माण के लिए किया जाने वाला समर्थ प्रयास है। वे सभी क्रियाएँ जो इसके लिए की जानी आवश्यक है, स्वाध्याय की सीमा में आती है। चाहे वह पठन-पाठन हो या फिर सत्संग-संगोष्ठी। अर्थ अनुसन्धान करते हुए मन्त्र का जप भी स्वाध्याय का श्रेष्ठ प्रकार है। गायत्री साधक मन्त्रार्थ की ध्यानलीनता में स्वाध्याय का मर्म खोज सकते हैं। गायत्री महामन्त्र का जप यदि इस विधि से प्रतिदिन तीन घण्टे एक आसन पर किया जाय तो लगातार किए जाने वाले बारह वर्षों के जप में स्वाध्याय का योगार्थ स्पष्ट होने लगता है।

ईश्वरशरणागति- नियम का अन्तिम तत्त्व शीर्ष एवं शिखर है। सच कहें इसे तो सभी नियम का सत्परिणाम कह सकते हैं। भगवान् पर अनन्य भरोसा रखना। प्रत्येक कर्म उनको साक्षी मानकर करना और उन्हें ही उसे समर्पित कर देना। प्रतिपल उनके सहचर्य को अनुभव करना, प्रत्येक क्रिया, विचार एवं भाव के साथ उनमें स्वयं को विलीन होते हुए सुख का अनुभव करना। यही ईश्वर शरणागति है। ऐसी ईश्वर शरणागति पाने वाला ईश्वर का सच्चा भक्त ही सच्चा योग साधक है। जो भी विचार, भावनाएँ एवं कर्म इसके अनुरूप न हों, इसमें बाधाएँ बनाएँ योग साधक को उनसे दूर ही रहना चाहिए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

यूँ थमे नकारात्मक विचारों का प्रवाह

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग करते समय कई विघ्न, अनेकों बाधाएँ सामने आती हैं। इन विघ्नों के बारे में, प्रयोग काल की बाधाओं के बारे में ऋषि वाणी कहती है- **श्रेयांसि बहु विघ्नानि।** यानि कि श्रेय के पथ पर, श्रेष्ठ कार्य करने में बहुतेरे विघ्न उठ खड़े होते हैं। ये विघ्न साधक की, सत्कार्य की श्रेष्ठता की कसौटी के रूप में सामने आते हैं। विघ्नों का स्वरूप क्या है, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना महत्त्व इस बात का है कि इनका सामना कैसे किया गया? इनका समाधान किस तरह से किया गया? विघ्न-बाधाओं का सामना करने, इनका समाधान करने के तरीके से साधक की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता प्रमाणित होती है। योग साधना की अन्तर्यात्रा में, इस अन्तर्यात्रा के वैज्ञानिक प्रयोगों में इसका विशेष महत्त्व इसलिए भी है, क्योंकि इस पथ पर प्रत्येक आने वाले पल में साधक को उत्तरोत्तर, पहले की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट साबित करना होता है।

योग के प्रयोग की छोटी-बड़ी प्रत्येक प्रक्रिया का मकसद भी यही है कि योग पथ का अन्तर्यात्री अपने हर बढ़ते कदम के साथ श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट बने। पिछले सत्र में योग साधक की श्रेष्ठता एवं उत्कृष्टता को और अधिक विकसित करने वाले 'यम' एवं 'नियम' व्रतों की चर्चा की गयी थी। गुण-दोषों से युक्त सामान्य जीवन साधारण व सामान्य लोगों के लिए है, लेकिन योगी का जीवन सदा ही विशेष है, उसमें दोषों का कोई स्थान नहीं है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किसी भी कारण से इन दोषों के लिए न तो कोई छूट है और न रियायत। यहाँ तो बस गुणों की गुणवत्ता उत्तरोत्तर विकसित होनी चाहिए। सद्गुणों की सामर्थ्य निरन्तर एवं अनवरत बढ़ती रहे, विकसित होती रहे, केवल तभी योग साधक 'यम' एवं 'नियम' के व्रतों से व्रतशील बनता है।

हालांकि ऐसा होना न तो सहज है और न सामान्य। इस क्रम में विविध विघ्न विभिन्न बाधाएँ अनायास एवं अचानक उठ खड़ी होती हैं। इनमें से कुछ के प्रेरक होते हैं अपने ही विचार, अपनी ही वासनाएँ। तो कुछ का प्रवर्तन किया जाता है पूर्व संचित संस्कारों के द्वारा, प्रारब्ध के कोष में रखे हुए कर्मबीज इन्हें अंकुरित करते हैं। योग साधक की गतिशीलता के साथ यह क्रम भी जारी रहता है। साधना के उन्नत शिखरों के आरोहण के साथ विघ्न एवं बाधाओं के नए-नए रूप योग साधक के सम्मुख अचानक आते हैं। ये साधक के निरन्तर विकसित होने वाले विवेक तथा उसकी उत्तरोत्तर विकसित हो रही साधना सामर्थ्य की परीक्षा लेते हैं।

योग साधक की इन परीक्षाओं के लिए योग ऋषि पतंजलि अपना महत्त्वपूर्ण सूत्र सत्य उच्चारित करते हैं-

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्॥ २/३३॥

शब्दार्थ- वितर्कबाधने= जब वितर्क (यम एवं नियम व्रतों के विरोधी असद् भाव) व्रतशीलता में, योग साधना में बाधा पहुँचाए तब; प्रतिपक्षभावनम्= उनके प्रतिपक्षी विचारों का बार-बार मनन करना चाहिए।

भावार्थ- जब मन में विक्षोभ हो, असद् विचारों से, तो मनन करना विपरीत विचारों पर।

महर्षि पतंजलि का यह अनूठा सूत्र धरती के सुन्दरतम विचारों में से एक है। और इसकी उपयोगिता केवल योगियों के लिए नहीं, बल्कि सामान्य जनों की रोजमर्रा की जिन्दगी के लिए है। क्योंकि बाधाएँ, विघ्न, अशान्ति हर कहीं है। प्रत्येक इसे अपने जीवन में अनुभव करता है। इस अनुभूति की प्रगाढ़ता उसे अशक्त, निस्तेज और पराक्रमहीन बनाती है। क्योंकि इनका सामना करने की सही विधि नहीं पता। यह विधि महर्षि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पतंजलि देते हैं। वह कहते हैं कि इन नकारात्मक चीजों के सामने तुम और अधिक सकारात्मक हो जाओ। जब-जब अन्तर्चेतना को विक्षुब्ध करने वाले, अशान्ति फैलाने वाले असद् भाव एवं असद् विचारों की लहरों का वेग तीव्र हो तो इनके साथ मत बहो। उस समय तुम प्रतिपक्षी सद्विचार, श्रेष्ठ विचार का चिन्तन करने लग जाओ। उपयोग की जा सके तो महर्षि पतंजलि की यह विधि जीवन में बड़े कमाल की है। यह शीघ्र एवं तत्काल फलदायी है। प्रयोग के साथ ही इसके सुखद सत्परिणाम सामने आने लगते हैं। बस बात इतनी सी है कि उसे उपयोग करना याद रहे। और ऐसा तब सम्भव है जब इसकी आदत बना ली जाय।

इस प्रसंग में युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव का बरबस स्मरण हो आता है। एक सूर्योदय की प्रथम किरण के साथ उनसे मिलना हुआ। उनसे मिलने से पहले की रात्रि बड़ी अशान्ति, बेचैनी एवं परेशानी में गुजरी थी। यूं परेशानियाँ तो घर-परिवार के सदस्यों की थी। पर इनसे घिरने पर अनुभूति कुछ ऐसी हुई जैसे कि पूरा जीवन ही समाप्त एवं तहस-नहस हो गया। नकारात्मक परिस्थितियाँ कई बार नकारात्मक विचारों एवं भावों के रूप में आहट देती हैं। इस आहट के साथ मन शंका, संदेह एवं निषेधात्मक विचारों से भर जाता है। कुछ ऐसे कि जैसे आसमान में एक छोटा बादल का टुकड़ा हवा के झोंके के साथ घटाओं का रूप धारण कर ले। और फिर ये घटाएँ घनघोर बारिश में बदल जाएँ।

कई बार स्थिति इससे अगल भी बनती है। विघ्न-बाधाएँ नकारात्मक विचारों के रूप में आहट नहीं देते। बल्कि सीधे ही अचानक एवं अचूक घटनाक्रमों के रूप में सामने आ जाते हैं। कई बार इनका वेग तूफानी होता है। और ये विध्वंसकारी तूफान की भांति सब कुछ तहस-नहस कर डालते हैं। जीवन में विघ्नों का आगमन इनमें से किसी भी ढंग से हो, सामना तो करना ही पड़ता है। भावों में व्याप रहे भगवान् की तरह परम पूज्य गुरुदेव ने उस दिन मन की सारी अनकही अपने आप ही समझ ली। उन्होंने उस समय तत्काल तो कुछ नहीं कहा, बस थोड़ी देर करूणापूर्ण

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

नेत्रों से देखते रहे। उनकी इस अमृतवर्षिणी दृष्टि ने जैसे जीवन का सारा विष हर लिया। ऐसा लगा जैसे कि जा चुका जीवन फिर से वापस लौट आया।

इसी के साथ उनके कुछ पल का सान्निध्य प्राणों में नया प्रकाश एवं नई प्रेरणा की लहरें उड़ेलता गया। इसी के साथ उन्होंने कहा कि बेटा आज मैं तुम्हें वह ज्ञान देता हूँ, जो साधना के प्रारम्भिक क्षणों में मेरे गुरु ने मुझे दिया था। उन्होंने कहा था कि साधना का अर्थ ही है- नित्य नयी विषमताओं एवं विपरीतताओं का सामना। पर यह भी ध्यान रखना कि हर संकट की घड़ी में समर्थ गुरु हमेशा अपने शिष्य के समीप एवं उसमें समाए होते हैं। इसे अनुभव करने की जरूरत है। साथ ही इस सच को कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि बड़े से बड़ा संकट भी अपने समर्थ गुरु एवं अपने प्यारे प्रभु से बड़ा नहीं होता। जब वह साथ है तो इसका निवारण एवं निराकरण भी निश्चित है।

ऐसे में संकट की घड़ी में, विघ्न एवं बाधाओं के अतिरेक में, जब अन्य महाभय एवं होने वाले महानाश की चर्चा करने में लगे हों, तो शिष्य को, साधक को अपने गुरु एवं भगवान् की कृपा की अमृत अनुभूति में डूबना चाहिए। यह कहते हुए गुरुदेव बोले- बेटा! मैने अपने सारे जीवन यही किया है। तुझे भी यही करने का उपदेश दे रहा हूँ। इतना कहने के बाद दूसरी बात उन्होंने कही, जब मन में नकारात्मक विचारों का, साधना विरोधी विकारों का तीव्र कोलाहल उठे तो तू इनके साथ बह मत। थोड़ी देर अपने आप में ठहर और दृढ़ता से विचार कर कि तू न तो यह पल-पल मरने वाली हाड़-मांस से बनी गोरी-काली चमड़ी से लिपटी है और न ही पल-पल विकारों-विचारों से डांवाडोल होने वाला मन से। तू तो अविनाशी है और सर्वथा निर्विकार आत्मा है। जो सदा-सर्वदा अपराजेय है। जिसका विनाश करने में, जिसे चोट पहुँचाने में कोई भी समर्थ नहीं है। तू वही है। इस पर दृढ़ता से जितना सोचेगा, विकारों, विघ्नों एवं बाधाओं की घटाएँ उतना ही घटेगी और अन्तर्चेतना में नया सूर्योदय होगा।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विकृतियाँ किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग क्रिया, विचार एवं भाव के सभी आयामों में परिशोधन की निरन्तरता को पोषित करते हैं। जीवन में परिष्कार की निरन्तरता बनी रहे, पवित्रता अविरल प्रवाहित होती रहे, तभी अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग निर्विघ्न सम्पन्न होते रहते हैं। यदि पवित्रता बाधित हुई, परिष्कार की प्रक्रियाओं में विघ्न आए तो अन्तर्यात्रा भी अवरूद्ध होती है। ऐसी स्थिति में इसके वैज्ञानिक प्रयोग बाधित हो जाते हैं। और तब तक यह बाधा बनी रहती है, जब तक कि बाधित पवित्रता फिर से न प्रवाहित होने लगे। परिष्कार की प्रक्रियाएँ अपनी रूकी हुई निरन्तरता फिर से न बरकरार कर लें। यही सच आध्यात्मिक क्रियाओं एवं योग साधनाओं को सामान्य सामाजिक नैतिकता से भिन्न एवं विलग करता है। यही वजह है कि आध्यात्मिकता एवं योग साधनाओं की नैतिकता से बहुत ऊपर अपनी एक उच्च श्रेणी है।

सामान्य सामाजिक नैतिकता के मूल्य एवं मानक केवल व्यावहारिक क्रियाओं पर लागू होते हैं। वैचारिक सोच एवं भावनात्मक अहसास पर इनका अंकुश-अनुशासन लागू नहीं माना जाता। पर साधक के लिए योगी और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के लिए व्यावहारिक क्रियाओं के साथ वैचारिक सोच एवं भावनात्मक अहसास का भी स्वच्छ, शुद्ध, परिष्कृत एवं पवित्र होना अनिवार्य है। इसके बिना बात बनती नहीं है, साधना होती नहीं है। अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग उसी के लिए है, जिसकी न केवल व्यावहारिक क्रियाएँ,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बल्कि वैचारिक सोच एवं भावनात्मक अहसास भी बेदाग हैं। जिसका इन सभी पर अंकुश एवं अनुशासन है। जिसने इन तीनों ही तलों पर किसी भी अपवित्रता को रोकने के लिए कठोरतापूर्वक त्रिदण्ड धारण कर रखा है। जो ऐसा है, वही अन्तर्यात्रा का सच्चा यात्री है। वही इसके वैज्ञानिक प्रयोगों का कुशल कर्मी है।

यदा-कदा परिस्थिति वश एवं संस्कार वश इसमें बाधाएँ आती हैं। इन बाधाओं को पहचानने एवं रोकने के लिए इस योगकथा की पिछली कड़ी में चर्चा की गयी थी। इसमें कहा गया था कि जब कभी वितर्क (यम एवं नियम व्रतों के विरोधी अशुद्ध भाव) व्रतशीलता में, योग साधना में बाधा पहुँचाए, तब उनके प्रतिपक्षी विचारों का बार-बार मनन करना चाहिए। यानि की अशुद्धि के अंकुर ज्यों-ज्यों फूटें त्यों-त्यों त्वरापूर्वक अपने परम पवित्र प्रकाश एवं ज्ञानमय आत्मस्वरूप का चिन्तन करना चाहिए। आत्म चिन्तन का अनवरत प्रवाह, इसकी प्रकाशमयता, इसकी ज्ञान दीप्ति प्रत्येक असद्भाव को तत्क्षण नष्ट कर देती है। प्रत्येक आध्यात्मिक साधक को यह चिन्तन बार-बार और निरन्तर करना चाहिए।

इसी की निरन्तरता में महर्षि पतंजलि का अगला सूत्र है-

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्॥ २/३४॥

शब्दार्थ- हिंसादयः= (यम एवं नियम के विपरीत) हिंसा आदि भाव; वितर्काः= वितर्क कहलाते हैं; (ये तीन प्रकार के होते हैं), कृतकारितानुमोदिताः= स्वयं किए हुए, दूसरों से करवाये हुए और अनुमोदित किए हुए; लोभक्रोधमोहपूर्वकाः= इसके कारण लोभ, क्रोध और मोह है; मृदुमध्याधिमात्रा= इनमें भी कोई छोटा, कोई मध्यम और कोई बहुत बड़ा होता है; दुःखाज्ञानानन्तफलाः= ये दुःख और अज्ञान रूप अनन्त फल देने वाले हैं; इति= इस प्रकार (विचार करना ही); प्रतिपक्षभावनम्= प्रतिपक्ष की भावना है।

भावार्थ- यम व नियम के विरोधी भावों के विपरीत मनन करना जरूरी है। क्योंकि ये हिंसा आदि विचार, भाव एवं कर्म अपने परिणाम में घोर अज्ञान एवं तीव्र दुःख देते हैं। फिर भले ही ये अल्प, मध्यम एवं तीव्र मात्रा में

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किए गए हों। इन्हें स्वयं किया गया है या फिर किसी दूसरे से करवाया गया है, अथवा केवल अपनी सहमति ही प्रदान की गयी है।

महर्षि के इस महत्त्वपूर्ण सूत्र में यम-नियम को सफल बनाने वाली प्रतिपक्ष भावना को स्पष्ट करने के साथ कर्म के सिद्धान्त की सूक्ष्मता कृत कारित एवं अनुमोदित के तीन रूपों में कही गयी है। और यह भी बताया गया है कि यदि इसका स्वरूप नकारात्मक और यम व नियम के विपरीत हुआ तो परिणाम में दु:ख एवं अज्ञान की तीव्रता ही फलित होगी। इस सूत्र की व्याख्या के साथ एक बहुत ही विस्मयकारी किन्तु मार्मिक घटनाक्रम जुड़ा हुआ है। यह घटनाक्रम उस समय घटित हुआ जब परम पूज्य गुरुदेव अपने सामने बिठाकर शिक्षण प्रदान कर रहे थे।

दोपहर के बाद का समय था। उनके कक्ष में एक सज्जन अपनी पत्नी-बेटी एवं पुत्र को लेकर दर्शन हेतु पहुँचे। ये सज्जन उच्चशिक्षित चिकित्सक थे। इनकी पत्नी गृहणी थी, बेटी अपाहिज थी और बेटा तकरीबन दस या बारह साल का था, जो सम्भवत: आठवीं या दसवीं कक्षा में पढ़ रहा था। इन्होंने अपनी अपाहिज बेटी का दर्द गुरुदेव को सुनाया। सचमुच ही बेटी का एक हाथ, एक पाँव लाचार था। वह मुँह से बोल भी नहीं सकती थी। बड़ी होने के बावजूद भी उसकी शौच आदि नित्य क्रियाएँ माता-पिता को ही करानी पड़ती थी। उन्होंने रो-रोकर अपना और अपनी बेटी का दर्द गुरुदेव को सुनाया और कहा- गुरुजी! या तो आप मेरी बेटी को ठीक कर दीजिए अथवा उसे उठा लीजिए।

उनके उठा लेने के शब्द से उनका बेटा बिफर उठा और बोला ऐसे कैसे उठा लेंगे। हम अपनी बहन की सेवा करेंगे, हम उसे सुख पहुँचाएँगे। उनके बेटे के इस तरह से उत्तेजित होने पर गुरुदेव ने उसे शान्त कराया और बोले- बेटा! तुम जरूर अपनी बहिन की सेवा करना, लेकिन अब परेशान न हो। फिर उन्होंने उन चिकित्सक महोदय से पूछा- तुम तो डाक्टर हो, इसकी ये स्थिति कैसे हुई। उत्तर में उन्होंने कहा- हम लोग बेटा चाहते थे। जब गर्भ में बेटी का पता चला तो गर्भपात कराने की कोशिश की। परन्तु दैवयोग से गर्भपात कराने के बावजूद भी पूर्णतया गर्भ नष्ट न हो सका। और अनजाने में गर्भ पलता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रहा। मेरी पत्नी को इसका अहसास तब हुआ जब कि गर्भपात सम्भव न था। हां गर्भपात की कोशिश में जो गर्भ से छेड़छाड़ हुई थी, उसी के परिणाम में बेटी अपाहिज पैदा हुई।

इतना कह लेने के बाद उन चिकित्सक महोदय ने रोते हुए कहा- गुरुदेव यह आखिर मेरे किन कर्मों का परिणाम है। उत्तर में गुरुदेव बोले- रहने दे बेटा, क्या करेगा जानकर। पर वह जिद्द करते रहे, उनका रोना भी जारी रहा। तब गुरुदेव ने उनसे कहा- अच्छा सुनना चाहता है तो सुन ले। तुम पिछले जन्म में जमींदार थे, और यह बेटी पिछले जन्म में तुम्हारी लठैत थी, जिसे तुमने किसी किसान के यहाँ पर पैसा वसूल करने के लिए भेजा था। तुमने कहा था कि जरूरत पड़ने पर मार-पीटकर पैसा वसूल कर ले आना। लेकिन इसने मार-पीट करने के नाम पर उस किसान को इतना मारा कि उसकी एक टांग तोड़ दी- उसका एक हाथ पूरी तरह से तोड़ दिया और उसकी जीभ तो काट ही डाली। वह किसान उसी स्थिति में बहुत वर्षों तक जीवित रहा।

अब उसी कर्म का परिणाम इसके सामने है। इसी वजह से इसका एक हाथ, एक पांव बेकार है और यह बोल नहीं सकती। मानसिक रूप से भी लाचार है। यह तुम्हारी बेटी अपने स्वकृत कार्य का दण्ड भोग रही है। तुमने इससे यह कर्म करवाया था सो तुम कारित कर्म का दण्ड इसकी सेवा के रूप में भोगोगे। अभी यह तुम्हारी बेटी है, सो तुम्हें भावनात्मक पीड़ा भी भुगतनी होगी। तुम्हारा बेटा पिछले जीवन में भी तुम्हारा ही बेटा था। इसने अब तुम्हारी बेटी बनी उस समय के लठैत के काम को पूरा समर्थन दिया था। इसकी प्रशंसा की थी, इसीलिए यह अपने अनुमोदित कार्य का दण्ड भोगेगा। इतना कहते हुए गुरुदेव ने कहा- बेटा किए गए कर्म कभी नष्ट नहीं होते। इसलिए नकारात्मक न हो इसके लिए बार-बार अपने मन में चिन्तन-मनन करते रहना चाहिए। ऐसा हो तभी प्रकाश की ओर पांव आगे बढ़ते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वैर त्याग - एक बड़ी सिद्धि

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग जैसे-जैसे परिपक्व, प्रगाढ़ व प्रखर होते हैं, वैसे-वैसे चित्त और उसकी वृत्तियाँ भी स्फटिकवत शुद्ध, स्वच्छ एवं पारदर्शी हो जाती है। इसी से सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिष्कार व रूपान्तरण का क्रम घटित होता है। चरित्र चिन्तन एवं व्यवहार के प्रत्येक तल पर इसका प्रकाश फैलता है। इस प्रकाश में एक सर्वथा नवीन अनुभूति होती है। योग साधक को पता चलता है कि दोष, दुर्गुण, द्वन्द्व, द्वेष कभी भी मेरा स्वभाव थे नहीं। ये तो बस चित्त में जड़ जमाए बैठी अशुद्धियों के कारण था। अशुद्धियाँ छटी कि बस सब कुछ बदल गया। अब न तो क्रोध बचा न क्रोध से उपजे विकार। इसी तरह लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि विकृतियाँ और उनकी वंशावली भी स्वाभाविक ही विनष्ट हो जाती हैं। यह अनुभूति उन सभी की है जो योग साधना के शिखर तक पहुँचे हैं।

योग कथा की पिछली कड़ी में इस साधना सूत्र के अन्तर्मर्म को कहा गया था। इसमें बताया गया था कि योग साधक को निरन्तर दृढ़ भाव से यह अनुभव करते रहना चाहिए कि विकृतियाँ न तो उसका स्वभाव है और न ही उसकी चेतना का कोई हिस्सा। ये तो वितर्क की लहरें हैं। इन यम-नियम के विरोधी भावों के विपरीत मनन करना जरूरी है। क्योंकि हिंसा आदि विचार, भाव एवं कर्म अपने परिणाम में घोर अज्ञान एवं तीव्र दुःख देते हैं। फिर भले ही ये अल्प-मध्यम एवं तीव्र मात्रा में किए गए हों। इन्हें स्वयं किया गया हो या

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

किसी और से करवाया गया हो अथवा केवल अपनी सहमति प्रदान की गयी हो। आशय यही है कि योग साधक के लिए विकृतियाँ किसी भी रूप में सह्य अथवा स्वीकार्य नहीं है। फिर भले ही वे क्रियात्मक हो या विचारात्मक या केवल भावात्मक। लघुत्तम अंश में भी इनकी उपस्थिति योग साधक के पतन की राह खोल देती है।

इसके विपरीत विकृति विहीन साधनामय जीवन से आत्मा की आभा बिखरती है। परमात्मा का प्रकाश प्रसारित होता है। योग साधक की साधना जिस भी अवस्था में है, उसके आस-पास का वातावरण उसी के अनुरूप हो जाता है। योगी की योगवृत्तियों के प्रकाशपूर्ण वातावरण तथा उसमें रहने वाले स्वत: ही प्रेरित, प्रकाशित एवं प्रभावित होते हैं। इसी अनुभवपूर्ण सच्चाई को महर्षि पतंजलि ने अपने अगले सूत्र में उद्घाटित किया है-

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग: ॥ २/३५ ॥

शब्दार्थ= अहिंसाप्रतिष्ठायाम्= अहिंसा की दृढ़ स्थिति हो जाने पर; तत्सन्निधौ= उस योगी के निकट; वैरत्याग:= सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं।

भावार्थ= जब योगी सुनिश्चित रूप से अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब जो उसके सान्निध्य में आते हैं, वे सब शत्रुता छोड़ देते हैं।

महर्षि का यह सूत्र अतिगहन है, इसमें प्रकृति के गहरे मर्म संजोये हैं। इसकी सही एवं समुचित व्याख्या कोई अनुभवी ही कर सकता है। वातावरण में अहिंसा के भाव सघन हों तो प्राकृतिक वैर शान्त हो जाता है। सौभाग्य से परम पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में इस सूत्र की चर्चा सुनने को मिली। इस प्रसंग में उन्होंने बताया कि १९७१ की हिमालय यात्रा के दौरान वह अपनी मार्गदर्शक सत्ता से मिले। यह मिलन देवात्मा हिमालय के दिव्य क्षेत्र में हुआ। इस अतिपावन क्षेत्र में वह थोड़े समय के लिए रुके। बाद में वह सद्गुरु के आदेश से गंगोत्री के समीप आ गए। उन दिनों वहाँ एक कालजयी महात्मा स्वामी कृष्णानन्द जी रहते थे। उनकी चर्चा चलने पर गुरुदेव कहते थे कि काफी लम्बा एवं स्वस्थ शरीर था इन महामानव का। बारहों महीने सर्दी, धूप, वर्षा में रहने के कारण इनके शरीर की त्वचा काली पड़ गयी थी। वे प्राय: पद्मासन लगाए बैठे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रहते थे। इस तरह निरन्तर बैठे रहने से उनके जांघों के आस-पास की त्वचा हाथी की त्वचा की भाँति मोटी हो गयी थी। इनकी आयु सामान्य अनुमान से काफी अधिक थी। इनकी न केवल आयु अकल्पनीय थी, बल्कि इनकी आध्यात्मिक अनुभूतियाँ व उपलब्धियाँ भी अकल्पनीय थी।

इनसे कुछ फर्लांग दूर एकान्त में गुरुदेव काफी दिनों तक साधनारत रहे। उन्होंने बताया कि इस अवधि में पक्षी सहजता से उनके कन्धों पर बैठते थे। यहाँ तक एक साँप और नेवला भी अपना बैर भुलाकर उनके साथ रहने लगा। साँप और नेवले की दुश्मनी यूं तो विख्यात है। पर वह उन दिनों गुरुदेव की कुटिया के पास ही खेला करते थे। गुरुदेव बताते थे कुछ तो हिमालय के वातावरण का प्रभाव था और कुछ चेतना सहज ही योग की उच्च अवस्था में आरूढ़ रहती थी। उन्होंने बताया उन दिनों सचमुच ही आस-पास प्रकृति में निर्वैरता व्याप्त हो गयी थी।

गुरुदेव की इस अनुभूति को सुनकर मन में महर्षि पतंजलि के सूत्र की व्याख्या तो स्पष्ट हुई। पर साथ ही एक जिज्ञासा भी जागी- ऐसे निर्वैर योगसिद्ध महापुरुष पर सन् १९८४ ई. के प्रारम्भ में चाकू से हमला क्यों हुआ ? अन्तर्यामी परम पूज्य गुरुदेव ने मन की यह बात जान ली और स्वत: ही कहने लगे बाद के दिनों में मेरे ऊपर जो हमला हुआ, इसके कई कारण है। और इन सभी कारणों का सम्बन्ध बाहरी-सामाजिक जगत् से नहीं, बल्कि प्रकृति की सूक्ष्म रहस्यमय परतों से है। इन रहस्यमय परतों को खोलने से पहले मैं तुम्हें भगवान् बुद्ध के जीवन की घटना सुनाता हूँ।

भगवान् बुद्ध का एक चचेरा भाई था देवदत्त, वह भगवान् बुद्ध से गहरी ईर्ष्या करता था। उसकी हमेशा यह कोशिश रही कि कब उसे मौका मिले और कब वह तथागत की हत्या कर दे। कहा जाता है कि जब बुद्ध पहाड़ी के निकट वृक्ष के नीचे ध्यान कर रहे थे, तो देवदत्त ने उन पर एक बड़ी सी चट्टान लुढ़का दी। पूरी सम्भावना थी कि बुद्ध कुचल जाते। लेकिन आश्चर्य न जाने कैसे चट्टान ने अपनी राह बदल दी और तथागत साफ बच गए। किसी ने पूछा- भगवन्! यह आश्चर्य कैसे घटित हुआ ? तब उत्तर में बुद्ध ने कहा- एक चट्टान

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ज्यादा संवेदनशील है देवदत्त से, चट्टान ने अपना मार्ग बदल दिया।

इस कथा को सुनाकर गुरुदेव ने कहा- यदि योगी के हृदय में अहिंसा सुप्रतिष्ठित हो तो उसके सान्निध्य में प्राणी अपने प्राकृतिक वैर का त्याग कर देते हैं जैसे कि सर्प एवं नेवला। किन्तु मनुष्य में तो प्राकृतिक वैर है ही नहीं। उसका वैर तो विकृतियों से उपजा है। इसलिए यदि उसका यह वैर जटिल व गहन हो गया है तो वातावरण व प्रकृति की सहज प्रेरणाएँ उसे प्रेरित नहीं कर पाती। इसलिए सर्वथानिर्वैर रहने वाले ईसामसीह एवं सुकरात प्रकृति एवं प्राणियों के द्वारा नहीं बल्कि विकृत मनुष्यों के द्वारा मारे गए।

इतना कहकर परम पूज्य गुरुदेव थोड़ा चुप रहे फिर बोले- मेरे ऊपर हमले के कुछ और कारण भी है। हिमालय में मेरी साधना जहाँ समता के शिखर पर योगारूढ़ थी, वहीं यहाँ मैं आसुरी शक्तियों से संघर्षरत हूँ। मेरे शरीर के घाव वास्तव में किसी मनुष्य द्वारा दिए गए नहीं हैं, बल्कि असुरता के साथ होने वाले महासंग्राम के चिह्न हैं। तथ्य यही है कि सत्य की दृष्टि से महर्षि पतंजलि अपने सूत्र में पूर्णतया सत्य है। यदि योगी अहिंसा में सम्पूर्णतया प्रतिष्ठित हो तो उसके आसपास निर्वैरता व्याप्त हो जाती है। जैसे कि हिमालय में मेरे साथ हुआ। परन्तु इस अवस्था से किसी भी कारण थोड़ा सा भी हटने पर वैसा नहीं रह जाता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सत्य में प्रतिष्ठित महायोगी

अन्तर्यात्रा विज्ञान के सभी सूत्र व्यावहारिक एवं प्रायोगिक हैं। इनमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे प्रयोग करने पर खरा-सच्चा एवं प्रामाणिक न पाया जाय। इन्हें दीर्घकाल तक नियमित-निरन्तर प्रयोगों के निष्कर्ष के रूप में कहा गया है। आज के जमाने में भी न केवल इन प्रयोगों को दुहराया-तिहराया एवं बार-बार किया जा सकता है, बल्कि इस प्रयोग विधि को सही ढंग से कर, सूत्रों में बताए गए निष्कर्ष को भी फिर-फिर अनुभव किया जा सकता है। इन प्रयोगों के लगातार करते रहने से चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार प्रभावित होने के साथ जीवन की घटनाएँ भी परिवर्तित व प्रभावित होती हैं।

योगकथा की पिछली कड़ी में अहिंसा के मर्म को बताया गया था। इसके अगले क्रम में महर्षि सत्य के अन्तर्मर्म को उद्घाटित, उपदेशित एवं सूत्रबद्ध करते हैं-

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्॥ २/३६॥

शब्दार्थ= सत्यप्रतिष्ठायाम्= सत्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर (योग साधक में), क्रियाफल आश्रयत्वम्= क्रियाफल के आश्रय का भाव (आ जाता है)।

भावार्थ= जब योगी सुनिश्चित रूप से सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब वह बिना कर्म किए भी फल प्राप्त कर लेता है।

महर्षि पतंजलि के प्रत्येक सूत्र की भांति, यह सूत्र भी स्थूल के घटनाक्रमों एवं सूक्ष्म के ऊर्जा प्रवाह के बीच सघन सम्बन्ध स्थापित करता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

योग का प्रत्येक अनुभवी साधक जानता है कि जीवन की प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना सूक्ष्म प्रकृति के ऊर्जा प्रवाहों की कोख से ही जन्मती है। यदि इस सूक्ष्म ऊर्जा प्रवाह के चक्र में परिवर्तन कर दिया जाय तो सामान्य जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना भी अपना रूप बदल देगी। आम सांसारिक जीवन यापन करने वाले भले ही इसे विवाद या बहस का विषय बना लें, परन्तु योग पथ के साधकों एवं सिद्धों के लिए यह नित्य अनुभव की वस्तु है। वे इसी विधि से स्वयं के और स्वयं के पास आने वालों के जीवन से अशुभ घटना क्रमों को हटाते-मिटाते अथवा उनका रूप बदलते हैं।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में नित्य ही ऐसे दृश्य देखने को मिला करते थे। जहाँ तक सत्य की बात है तो सत्य को ऋषियों, सन्तों एवं सिद्धों ने परम तप कहा है। इस प्रसंग में गुरुदेव का कहना था- सत्य केवल घटनाक्रम का यथार्थ ब्योरा नहीं है। इसके साथ सद् आशय की संवेदनशील एवं कोमल भावनाएँ भी जुड़ी हैं। इसी वजह से परम पूज्य गुरुदेव अपनी वार्ताओं और लेखनी में सदाशयता को सत्य का परिचय मानते हैं। शुभ भावनाओं के साथ जो व्यक्ति सत्य को अपने व्यवहार, विचार एवं भावनाओं में प्रतिष्ठित करता है, वह इस क्रमिक अभ्यास से स्वयं सत्य संकल्प रूप परमेश्वर में प्रतिष्ठा पा जाता है। ऐसी स्थिति में उसकी सत्यवाणी, उसका सत्य संकल्प स्वयं ही क्रियाफल का आश्रय हो जाता है। उसकी कही हुई वाणी, उसके द्वारा लिए गए संकल्प कभी भी मिथ्या नहीं होते, क्योंकि उसकी चिन्तन चेतना, भाव प्रवाह सीधे परमेश्वर के परम ऊर्जा प्रवाह से जुड़े रहते हैं। वही उसकी सत्य वाणी एवं सत्य संकल्प से प्रवाहित होता है।

यह विचार प्रसंग एक बड़ी मार्मिक स्मृति को कुरेदता है। यह स्मृति वर्ष १९८९ से जुड़ी है। इसी साल एक दिवस मध्याह्न बेला में युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव के पास जाना हुआ। उनके मनोआकाश में सदा ही नवीन कल्पनाओं के सितारे टिमटिमाते रहते थे। सदा ही उनके अन्तः अन्तरिक्ष में नवीन योजनाओं के सूर्य और चन्द्र उदित होते रहा करते थे। इस दिन भी कुछ ऐसा ही था। जाते ही उन्होंने अपनी योजना कह डाली। यह योजना दीपयज्ञों की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

थी। इसी के साथ ही उन्होंने शान्तिकुञ्ज के अधिकारिक कार्यालय पैड में परिवर्तन किया था। उस समय के पहले शान्तिकुञ्ज के पैड पर लिखा रहता था- वन्दे वेदमातरम्। उन्होंने उस दिन निर्देश दिया कि आदिशक्ति माता गायत्री अब से युगशक्ति इक्कीसवी सदीं उज्ज्वल भविष्य का रूप ले रही है। इसलिए कार्यालय एवं सभी पत्रों के लिखने वाले पैड पर लिखा जाय- इक्कीसवी सदी- उज्ज्वल भविष्य।

सुनने वाले को राइटिंग पैड में परिवर्तन तो कोई विशेष बात न लगी। परन्तु हवन कुण्ड वाले यज्ञों के स्थान पर दीपयज्ञ कराए जाना कुछ विचित्र सा लगा। यह विचित्रता तब और बढ़ गयी, जब यह निर्धारित किया कि भविष्य में ये दीपयज्ञ एक लाख वेदी वाले होंगे। उनकी बातों को सुन रहे इस शिष्य ने प्रश्न किया कि जब सामान्य जन की रुचि भव्य कर्मकाण्ड में है, तब ऐसे में क्या ये संक्षिप्त कर्मकाण्ड वाले दीपयज्ञ सफल होंगे? उत्तर में वह हल्के से मुस्कराए और बोले ये दीपयज्ञ अवश्य सफल होंगे। कैसे? पूछने वाले ने एक शब्द कहा। क्योंकि कि यह मैंने कहा है। उत्तर में उन्होंने यह संक्षिप्त वाक्य कहा।

क्या आपके कहने भर से सब कुछ हो जाएगा? आश्चर्यमिश्रित इस प्रश्न पर उन्होंने कहा- बेटा! इन दिनों मैं कुछ करता थोड़े ही हूँ। बस सोचता और बोलता हूँ। मेरा सोचना और बोलना तुम लोगों से अलग है। मेरी वाणी में सत्य प्रतिष्ठित है और मैं सत्य में प्रतिष्ठित हूँ। और जो सत्य बोलता है, सत्य में प्रतिष्ठित होता है, उसकी वाणी से जो कुछ भी बोला जाता है, सत्य हो जाता है। बिना कुछ किए ही उसकी वाणी क्रियाफल का आश्रय बन जाती है। उनकी बातों को सुनने वाले को महर्षि पतंजलि का यह सूत्र उसी तरह से स्मरण हो आया, जैसे कि आज इस सूत्र को पढ़कर उनकी कहीं बातें स्मरण हो आयीं। उनकी वाणी को सत्य में परिणत हुए अनेकों ने आश्चर्यचकित हो देखा। सभी ने निहारा कि लाखों वेदी वाले दीपयज्ञ किस तरह से सफल और सार्थक हुए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

'अस्तेय' व्रत से साधक कभी डिगे नहीं

अन्तर्यात्रा का विज्ञान अन्त:प्रकृति को परिष्कृत करता है। यदि योग साधक अन्तर्यात्रा विज्ञान की प्रक्रियाओं व प्रयोगों को नियमित, निरन्तर व दीर्घकाल तक करते रह सके; तो इसके परिणाम अवश्य ही उन्हें चमत्कृत कर देंगे। उन्हें यह अनुभव हो सकेगा कि उनकी अन्तर्चेतना विविध कषायों, कल्मषों, कुविचारों एवं कुकर्मों के सभी दुष्प्रभावों से मुक्त हो रही है। इस परिशोधन से उनमें एक अलौकिक आलोक का अवतरण होगा। जिसके प्रभाव से न केवल वह स्वयं को, बल्कि बाहरी प्रकृति व परिस्थिति की सूक्ष्मताओं को निहार सकेंगे। योगियों का अनुभव कहता है कि अन्त:प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति कहीं गहरे में एक-दूसरे से जुड़े हैं। भले ही बाहरी तौर पर जुड़ाव न दिखे और न समझ में आए, परन्तु सच यही है। जैसे-जैसे साधक की अन्त:प्रकृति का परिशोधन होता है, वह इस आध्यात्मिक सत्य की अनुभति करने लगता है।

सत्य यदि योगी में प्रगाढ़ता से प्रतिष्ठित हो गया तो उसकी वाणी मन्त्रमय हो जाती है। उसका वचन कभी अन्यथा नहीं होता है। इसीलिए अध्यात्म विद्या के मर्मज्ञों ने योग साधकों के लिए मौन रहने और सद्विचारों का मनन करते रहने का निर्देश दिया है।

सत्य की ही भाँति अस्तेय की भी अपनी विशिष्ट सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य का खुलासा महर्षि ने अपने अगले सूत्र में किया है-

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्॥ २/३७॥

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शब्दार्थ= अस्तेयप्रतिष्ठायां= चोरी के अभाव की दृढ़ स्थिति हो जाने पर (उस योगी के सामने); सर्वरत्नोपस्थानम्= सब प्रकार के रत्न (प्रकृति के समस्त वैभव) प्रकट हो जाते हैं।

भावार्थ= जब योगी सुनिश्चित रूप से अस्तेय में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसके सामने प्रकृति की सम्पूर्ण समृद्धियाँ स्वत: प्रकट हो जाती हैं।

योगऋषि पतंजलि का यह सूत्र सर्वथा अनूठा है। इस सूत्र में उन्होंने इस सच को प्रकट किया है यदि योग साधक अपने स्वयं का परिशोधन कर ले तो समूची सृष्टि और सृष्टि जननी आदिमाता प्रकृति उसे सर्वथा प्रामाणिक मान लेती है। स्वयं के अस्तित्त्व में पूरी तरह से निर्लोभता आ गयी तो इसके परिणाम में अन्त:प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति की समस्त समृद्धियाँ स्वत: ही प्रकट हो जाएगी। स्वयं का परिशोधन यदि सम्यक् रीति से चल रहा है, तो इसकी खबर अपने आप ही समूची सृष्टि में तरंगित हो जाती है। और इसके साथ आने लगते हैं इसके तदनुरूप परिणाम।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में वाराणसी में रहने वाले गृहस्थ साधक श्री शिवराम किंकर की कथा सुनाया करते थे। श्री शिवराम किंकर अपनी धर्मपरायण पत्नी के साथ वाराणसी में रहकर साधना कर रहे थे। अध्ययन-अध्यापन और कठिन तप साधना यही उनका जीवन था। आजीविका के लिए वह अयाचित व्रत पर निर्भर थे। अर्थात् किसी से कुछ भी न मांगना उनका नियम था। उनके छात्र और इन छात्रों के अभिभावक उन्हें जो भी बिना मांगे दे देते थे, उसी से उनकी आजीविका चलती थी। सामान्य क्रम में सब कुछ ठीक चला करता था, परन्तु एक समय ऐसा भी आया जब कई महीने तक किसी ने कुछ भी न दिया। इसका परिणाम इन पति-पत्नी को कई दिनों तक भूखे रहना पड़ा।

जिन दिनों ये भूखे रह रहे थे, उन्हीं दिनों एकनाथ पंथी साधु ने इनके द्वार पर आकर भिक्षा की याचना की। साधु को कुछ न दे पाने की विवशता लिये इनकी पत्नी द्वार पर आयी। द्वार पर खड़े उस साधु ने बिना कुछ कहे ही सब कुछ जान लिया। और बोला- चिन्तित न हो माता, मैं तुम्हारे घर को धन से भर दूँगा। ऐसा कहते हुए उसने अपनी झोली से अञ्जन की एक डिबिया निकाली व अपनी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

दोनों आँखों में अञ्जन लगा लिया। इसी के साथ उस साधु ने उन्हें भी अञ्जन लगाने का निर्देश दिया। पति परायणा पत्नी ने पति से आज्ञा लेनी चाही, उत्तर में श्री शिवराम किंकर हंसकर बोले- चलो यह भी कर के देख लो।

पति का अनुमोदन पाकर उन्होंने वह अञ्जन अपनी आँखों में लगा लिया। आश्चर्य इसी के साथ धरती के नीचे का धन स्पष्ट दिखने लगा। इसी क्रम में उन्होंने देखा उनके आंगन के बीचो-बीच स्वर्णमुद्राओं से भरा स्वर्ण-कलश केवल दो फीट की गहराई में है। द्वार पर खड़े उस साधु ने कहा- माँ! तुम इसे खोद कर निकाल लो। साधु के कथन के साथ ही उन्होंने खुदाई भी शुरू कर दी। पर तब वह भारी अचरज में पड़ गयी, जब दो फीट खोद लेने पर वह स्वर्ण कलश पुनः दो फीट की गहराई में चला गया। बार-बार दो फीट खुदाई और बार-बार कलश के दो फीट पुनः गहरे हो जाने का क्रम चलता रहा। इस खेल को देखकर श्री शिवराम किंकर हँस रहे थे। वह साधु भी हैरान था, इन्हें हँसते देखा तो वह परेशान हो गया।

अपनी पत्नी और उस साधु को परेशान होते देख उन्होंने कहा- गुरु की कृपा से मिली हुई सिद्धि हो या फिर अस्तेय व्रत का सत्परिणाम, इससे केवल प्रकृति की दुर्लभ निधियों को देखा जा सकता है। इनकी प्राप्ति तो शुभ कर्मों के परिणाम पर निर्भर है। यह जो स्वर्णकलश तुम लोग मेरे घर के आंगन में गड़ा हुआ देख रहे हो, यह मेरे भाग्य का नहीं है। इसको पाने की कोशिश तो एक प्रकार की चोरी है, जिसकी अनुमति प्रकृति तुम्हें नहीं दे रही है। श्री शिवराम किंकर के कथन को उनकी धर्मपत्नी और वह साधु दोनों ही सुन रहे थे। इन दोनों को अपनी भूल का अहसास हो रहा था। लेकिन पत्नी के चेहरे पर अभी भी विवशता थी। जिसको दूर करते हुए उन्होंने कहा- परेशान मत हो देवि! परमेश्वर परम करूणामय है। उनके द्वारा प्रेरित होकर मेरे एक छात्र ने पचास रूपये का मनीआर्डर भेजा है। उनके इतना कहते ही सचमुच एक पोस्टमेन ने आकर उन्हें पचास रूपये का मनीआर्डर दिया। जिसे प्राप्त कर उन्होंने पत्नी से कहा, इस धन से तुम भोजन और साधु सेवा दोनों की तैयारी करो। फिर वह दोनों को ही समझाते हुए बोले- हमें कभी भी अपने अस्तेय व्रत से डिगना नहीं चाहिए।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

काम ऊर्जा के परिष्कार का विज्ञान

योगशास्त्रों में अनेक तरह की चमत्कारिक शक्तियों, सिद्धियों एवं विभूतियों का उल्लेख मिलता है। अनेकों योग साधक एवं सिद्ध इन्हीं सब को योग साधना की उपलब्धि मानते हैं। लेकिन सत्य कुछ और ही है। जो लोग योग के सत्य व तत्त्व के जानकार है, जिन्हें इसका अनुभव प्राप्त है, वे जानते हैं कि योग साधना का शिखर पवित्रता है। यह पवित्रता ही योग की उच्चतम शक्ति, उच्चतम सिद्धि एवं महानतम उपलब्धि है। इस पवित्रता के विकास के अनुरूप ही साधक की चेतना परिष्कृत होती है। उसके अस्तित्त्व में शान्ति प्रतिष्ठित होती है और व्यापकता का विकास होता है। योग की समस्त क्रियाएँ, विधियाँ व प्रयोग इसी के लिए हैं। यही वह तत्त्व हैं, जिसे पाकर अन्य कुछ भी पा लेना शेष नहीं रह जाता है। योग के प्रथम चरण एवं द्वितीय चरण के रूप में प्रतिपादित यम व नियम का उद्देश्य भी यही है।

इस योग कथा की पिछली कड़ियों में इसके संकेत दिए जाते रहे हैं। महर्षि पतंजलि के पिछले योगसूत्र का सार भी यही था। इसमें कहा गया था कि जब योगी अस्तेय (चोरी की भावना के सर्वथा त्याग) में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसके सामने प्रकृति की सम्पूर्ण समृद्धियाँ स्वतः प्रकट हो जाती हैं। यह अस्तेय दरअसल भाव की शुद्धि है। जिसके भाव शुद्ध हैं, वह कभी भी किसी अन्य की कोई वस्तु पाने, लेने अथवा छीनने की कल्पना नहीं कर सकता। उसे स्वयं के स्वल्प साधनों में सर्वथा सन्तुष्टि, तृप्ति व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

शान्ति बनी रहती है। इस अस्तेय के अनन्तर महर्षि पवित्रता के अपेक्षाकृत उच्च सोपान का उपदेश देते हैं।

यह उपदेश उनके अगले सूत्र का सत्य है-

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ २/३८ ॥

शब्दार्थ= ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां= ब्रह्मचर्य की दृढ़स्थिति हो जाने पर, वीर्यलाभः= तेजस्विता का लाभ होता है।

भावार्थ= जब योगी अविचल रूप से ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसे तेजस्विता उपलब्ध होती है।

महर्षि का यह सूत्र अनूठा है और इसके गहरे अर्थ हैं। इस सूत्र में योगऋषि पतंजलि ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा का महत्त्व समझाते हैं। योग के प्रायः सारे शास्त्र इसके महत्त्व से भरे पड़े हैं। धार्मिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थों में इसकी अनेकों अलंकारिक चर्चाएँ हैं। आध्यात्मिक साधनाओं में ब्रह्मचर्य के महत्त्व एवं महिमा को इस ढंग से कहा-बताया एवं समझाया गया है कि आम लोगों ने ब्रह्मचर्य को ही आध्यात्मिक जीवन मान लिया है। आज भी आम धारणा यही कहती है कि जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता, वह कभी भी आध्यात्मिक साधना नहीं कर सकता। यह लोक मान्यता काफी कुछ सही भी है, बस इसमें खामी सिर्फ इतनी है कि प्रायः सभी ने ब्रह्मचर्य को आधे-अधूरे ढंग से सोचा व समझा है।

सामान्य जन की सोच व समझ के अनुसार ब्रह्मचर्य स्त्री-पुरुष के बीच पनपने वाले दैहिक सम्बन्धों का त्याग है। यह सच है कि साधना की दृष्टि से यह त्याग आवश्यक है, लेकिन ब्रह्मचर्य इतने तक सीमित नहीं है। यह इससे कहीं अधिक व्यापक है। ब्रह्मचर्य में तो ब्रह्म अनुभव पाने के लिए आवश्यक सभी तरह के आचरण व अनुशासन स्वाभाविक ही समाविष्ट होते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मचर्य व्रती को ब्रह्म की ही भांति व्यापक, सभी भेदों, आसक्तियों, आग्रहों एवं आकांक्षाओं से शून्य होकर जीवन जीना पड़ता है। जो ऐसा कर पाने में समर्थ होता है, वह सचमुच ही अनन्त सामर्थ्य, साहस व पराक्रम से लाभान्वित होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस क्रम में परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में प्राय: कहा करते थे कि ब्रह्मचर्य शारीरिक से कहीं अधिक मानसिक व भावनात्मक है। उनका कहना था कि जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को केवल शारीरिक तल तक सीमित रखता है, वह प्राय: दमन एवं मनोरोगों का शिकार हो जाता है। इसलिए अच्छा यही है कि जो साधक ब्रह्मचर्य व्रत का सही लाभ लेना चाहे उन्हें इसकी शुरूआत मानसिक व भावनात्मक तल पर करनी चाहिए। यह शुरूआत सही हो सके इसके लिए जरूरी है मानसिक तल पर ब्रह्म की धारणा की प्रतिष्ठा और भावनात्मक तल पर सर्वथा वासना शून्य **अयमात्मा ब्रह्म** के अहसास का विकास। विचार व भावों के तल पर यदि यह अनुभव निरन्तर विकसित होते रहे, तो धीरे-धीरे शरीर के तल पर भी पवित्रता उतर आती है। अन्यथा शरीर के तल पर केवल दमन की छटपटाहट एवं कशमकश ही अनुभव में आती है।

सूत्रकार कहते हैं कि ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिष्ठा हो सके तो वीर्यलाभ होता है। योग का यह वीर्य शब्द आयुर्वेद अथवा अन्य चिकित्सा ग्रन्थों में कहे गए वीर्य शब्द से अलग है। चिकित्सा ग्रन्थों में वीर्य रेतस् के प्रसंग में आता है, जो नितान्त स्थूल एवं जैवरासायनिक घटकों का एक समूह है। परन्तु योग शब्दावली में कहे गए वीर्य शब्द में रेतस्, ओजस्, तेजस्, वर्चस् सभी आयाम समाहित हैं। यह प्रक्रिया योग साधना एवं आत्म चिन्तन-ब्रह्मचिन्तन से सम्पन्न होती है।

यदि ब्रह्म अनुभव के लिए आवश्यक सभी आचरण व अनुशासन का पालन होता रहे तो वीर्य में समाहित जीवनी शक्ति व ऊर्जा का भी क्रमिक रूप से सूक्ष्म रूपान्तरण व विकास होता है। इसी के साथ साधक में विकसित होता है साहस, पराक्रम, संकल्प, जो सम्पूर्ण जीवन व जीवनी शक्ति को निरन्तर ऊर्ध्वगामी बनाते रहते हैं। जीवन की इस ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन, योग साधक की चेतना में सभी असम्भव को सम्भव में परिवर्तित करता है। इसीलिए कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य व्रत से सभी कुछ सम्भव है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपरिग्रह की अद्भुत महिमा

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग अनूठे हैं। जिन्हें बाहरी व ऊपरी तौर पर निरी स्थूल दृष्टि से नहीं समझा जा सकता है। इन्हें समझने, परखने व जानने के लिए अन्तर्दृष्टि सम्पन्न, सूक्ष्म, परिष्कृत व्यक्तित्व चाहिए। ऐसा हो सके तो अनुभव हो पाता है कि अन्तर्यात्रा विज्ञान की क्रियाएँ व विधियाँ स्थूल व व्यावहारिक होने पर भी अपना गहरा आध्यात्मिक प्रभाव छोड़ती हैं। चिन्तन-चेतना व संस्कार इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। यदि इन क्रियाओं व विधियों के साथ यदि भावना, आस्था व श्रद्धा जुड़ी रहे तो इनकी तीव्रता आश्चर्यकारी होती हैं। ऐसे में इनके परिणामों को चमत्कारी से कम नहीं कहा जा सकता। इन प्रयोगों के साथ भावना व श्रद्धा का योग इन्हें सम्पूर्ण क्रियाकाल में कभी भी बोझिल नहीं बनने देता। ये सभी प्रयोग अनायास ही करने में सहज-सुगम एवं परिणाम में सदा ही चमत्कृत कर देने वाले हो जाते हैं।

पिछली कड़ी में ब्रह्मचर्य के प्रयोग के बारे में कहा गया था। जिस तरह से आरोग्य शास्त्र में गोदुग्ध को सम्पूर्ण आहार कहा गया है, उसी भाँति साधना शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को सम्पूर्ण साधना माना गया है। आधुनिक ज्ञान पर गर्वित होने वाले ब्रह्मचर्य को काम निषेध व काम दमन के रूप में मानकर भ्रमित होते रहते हैं, जबकि ब्रह्मचर्य में निषेध व नकार जैसा कुछ भी नहीं है। यह तो काम ऊर्जा को सूक्ष्मीकृत व परिष्कृत करने की विधि है। इस विधि को अपनाने से, इसके प्रयोग पूर्ण करने से सम्पूर्ण जीवन परिष्कृत, आनन्दमय व ब्रह्मपरायण हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ब्रह्मचर्य के महान् प्रयोग से उपलब्ध होने वाले ब्रह्मतेजस् व ब्रह्मवर्चस् की चर्चा करने के बाद महर्षि अपने अगले सूत्र में अपरिग्रह की योग विधि को प्रकट करते हैं-

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः ॥२/३९॥

शब्दार्थ= अपरिग्रहस्थैर्ये= अपरिग्रह की स्थिति हो जाने पर; जन्मकथन्तासंबोधः= पूर्व जन्म कैसे हुए थे ? इस बात का भली भांति ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ= जब योगी ठीक-ठीक यानि कि सुनिश्चित रूप से अपरिग्रह में प्रतिष्ठित हो जाता है, तब उसे जन्म-जन्मान्तर की कथाओं व घटनाक्रमों का बोध होता है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र अपने में गहरे अर्थ संजोये है, जिसके परिणाम भी गहरे और व्यापक हैं। परिग्रह संचय की वृत्ति है और अपरिग्रह का अर्थ इसका सर्वथा त्याग है। साधारण लौकिक अर्थों में व्यक्ति के जीवन में परिग्रह सांसारिक सुख-सुविधाओं एवं साधनों के संग्रह के रूप में नजर आता है। इसको थोड़ा और जाने-परखें तो पता चलता है कि परिग्रह वृत्ति का जन्म आसक्ति एवं आकांक्षा की कोख से होता है। जिसके मन में जितनी अधिक आसक्ति एवं आकांक्षा है, वह उतनी तीव्रता से धन-साधन एवं सुविधाएँ समेटता है। न कभी उसकी आसक्ति व आकांक्षा घटती है और न ही कभी परिग्रह की लालसा कम होती है। ऐसा इन्सान अपनी जिन्दगी की अन्तिम सांस तक समेटता-बटोरता रहता है। फिर बड़ी बेबसी से एक दिन सब कुछ छोड़कर मर जाता है। हालांकि मरने के बाद भी उसकी आसक्ति अपने संग्रह में अटकी रहती है।

ऐसे लोग मरने के बाद भी भूत-प्रेत-पिशाच बनकर अपनी इन्हीं आसक्तियों के इर्द-गिर्द भ्रमित होते और भटकते रहते हैं। इस प्रसंग में परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में एक कथा सुनाया करते थे। एक वृद्ध व्यक्ति का मन आसक्ति व आकांक्षा के पाश से सम्पूर्ण रूप से बंधा था। परिणाम स्वरूप उसमें परिग्रह की वृत्ति भी गहरी थी। सारे दिन वह अपने

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संग्रहित साधनों की सुरक्षा का गणित गिनता रहता या फिर अपने बेटों, पोतों की चिन्ता में डूबा रहता। क्योंकि परिग्रह के दायरे में केवल निर्जिव साधन-सुविधाएँ नहीं आती, जीवित रिश्ते-नाते भी आते हैं। क्योंकि आसक्ति एवं आकांक्षा की कोख से जो वृत्ति पनपती है, वह परिग्रह के सिवा और कुछ नहीं। सो उस वृद्ध का मन भी अपने भरे-पूरे कुटुम्ब में अटकता-भटकता रहता था। एक दिन उसके पास देवर्षि नारद आए। उस वृद्ध की आसक्ति को देखकर उनके मन में उसके लिए कल्याण की कामना जागी। उन्होंने वृद्ध को बहुतेरा समझाया, पर उसे समझ में नहीं आया। उल्टे उसने नारद को झिड़की दी, तुम्हारा घर-परिवार तो है नहीं, ऐसे में तुम संग्रह और रिश्तों का मोल क्या समझोगे ?

उसकी ये बातें सुनकर देवर्षि नारद मुस्कराए और चल दिए। कर्मानुसार उस वृद्ध का शरीर छूटा और वह बैल बना। आसक्ति की डोर उसे पुनः अपने पुराने परिवार की ओर खींच लायी। बैल की योनि में आने के बावजूद उसे अपनी पिछली स्मृति थी। सो अपने परिवार का खर्च बचाने के लिए कम चारा खाता और ज्यादा काम करता। नारद जी पुनः उसके पास आए और उसे फिर समझाने की कोशिश की। अब की बार वह तेजी से सिर हिलाकर सींग दिखाकर नारद को धमकाते हुए बोला- तुम बार-बार क्यों आ जाते हो मेरे पास ? मैं संग्रह करता हूँ तो अपने परिवार के लिए। तुम्हें इससे क्या ? उसके इस उत्तर पर नारद फिर से हँसकर चल दिए। वह कम खाकर ज्यादा काम करने वाला बैल असमय ही कमजोर होकर मर गया।

इस बार मरकर वह कुत्ता बना। आसक्ति की डोर उसे पुनः उसी परिवार की ओर खींच लायी। कुत्ते का शरीर पाकर भी न तो उसकी आसक्ति कम हुई थी और न परिग्रह की वृत्ति। वह रात-दिन जगकर अपने परिवार और सम्पदा की रखवाली करता। कंजूसी के कारण वह कुत्ता कई-कई दिनों तक भूखा रह जाता। क्योंकि उसे डर था कि इस तरह रोज-रोज खाने से उसका संग्रह समाप्त न हो जाए। अबकी बार फिर से जब देवर्षि नारद उसके पास आए तो उसने उन्हें तुरन्त पहचान लिया। देवर्षि नारद उससे कुछ कह पाते, इससे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पहले ही वह नारद को काटने के लिए दौड़ा। इस बार नारद ऋषि उसे कुछ भी न समझा पाए। लेकिन वह कुत्ता जल्दी ही मर कर सर्प बनकर पुन: वही अपने पुराने घर में पहुँच गया। और वर्षों पहले अपने द्वारा गाड़े हुए धन की रखवाली करने लगा। इस बार नारद ने उसके बेटों को घर में गड़े हुए धन का पता बताते हुए कहा- एक सर्प इस धन की रखवाली कर रहा है, तुम चाहो तो उसे मारकर धन पा सकते हो। उस वृद्ध के बेटों ने यही किया। सर्प को मारकर गड़ा धन निकाल लिया।

इस बार देवर्षि नारद इस भटकती हुई आत्मा पर कुछ विशेष ही कृपालु थे। उन्होंने इसे अपने योग बल से मानव शिशु के रूप में उसी परिवार में जन्म दिया। यह शिशु जब बड़ा हुआ तब उसमें संस्कारवश परिग्रह का विशेष भाव था। पर देवर्षि ने अपनी तपशक्ति से उसे अपरिग्रह का महत्त्व समझाते हुए कहा- पुत्र! अपरिग्रह का सच्चा अर्थ धन-सुविधाओं और रिश्ते नातों के त्याग में नहीं, बल्कि चित्त कोश में संचित संस्कारों के त्याग में है। अपरिग्रह के इस परम अर्थ को समझने के लिए उस किशोर वय के बालक ने साधना प्रारम्भ की। और जैसे-जैसे उसमें अपरिग्रह का भाव प्रतिष्ठित हुआ, उसके जन्म-जन्मान्तर के घटनाक्रम स्पष्ट होते चले गये। विभिन्न योनियों में हुई विभिन्न अनुभूतियों को समझकर उसका अन्तर्विवेक जागा और सम्पूर्णत: अपरिग्रही साधक बन गया।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

देह शुद्धि से जगे वैराग्य के भाव

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग स्थूल क्रियाओं के माध्यम से सूक्ष्म चिन्तन चेतना विकसित करते हैं। जो योग साधक हैं, अनुभवी हैं, जिन्हें अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों का दीर्घकालिक अनुभव है, उन्हें पता है कि व्यावहारिक क्रियाओं की सार्थकता विचारों के परिष्कार में है। इसी तरह विचारशीलता तभी सार्थक है, जबकि वह संस्कारों को शुद्ध करे। व्यावहारिक क्रियाएँ यदि यांत्रिक ढंग से की जाती रहें, अथवा होती रहे तो उनका कोई अर्थ नहीं रह जाता। योग साधक अथवा योगी तो वह है जो देह, इन्द्रिय, प्राण व मन की प्रत्येक हलचल के द्वारा स्वयं को अधिक सचेष्ट, सजग व सतर्क करता है। अन्तर्विवेक का जागरण ही योग, योगी एवं योग साधना की पहचान एवं परिचय है। ऐसा न हो पाने की स्थिति में सारी योग विधियाँ बाजीगरी व आडम्बर बनकर रह जाती है।

योगकथा की पिछली कड़ी में अपरिग्रह के बारे में कहा गया था। अपरिग्रह का शाब्दिक अर्थ केवल इतना है- संचय का त्याग। इसकी शुरूआत धन, साधन एवं वस्तुओं के त्याग से होती है। परन्तु जब योग साधक में अन्तर्विवेक के अंकुरण के साथ ही जाग्रत् होती है सूक्ष्म चिन्तन चेतना, कुछ और गहरी समझ, फिर वह साधनों के स्थान पर सम्बन्धों के मोह-पाश से स्वयं को मुक्त करने का यत्न करता है। इस प्रक्रिया में उसका विवेक और अधिक प्रगाढ़ होता है। इस प्रगाढ़ विवेक की भावभूमि में उसे यह बोध होता है- यथार्थ संचय तो चित्त के संस्कारों का है, उन्हें ही निष्कासित किया जाना चाहिए। और

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तब अपरिग्रह की यह स्थिति बनने पर उसे जन्म-जन्मान्तरों की कथाओं व घटनाक्रमों का बोध होता है।

अपरिग्रह की इस प्रयोग विधि व इसके परिणामों की चर्चा करने के बाद महर्षि अपने अगले सूत्र में शौच की योग विधि को स्पष्ट करते हैं-

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ २/४० ॥

शब्दार्थ- शौचात्= शौच के पालन से; स्वाङ्गजुगुप्सा= अपने अंगों से मोह भंग (और); परैः असंसर्गः= दूसरों के (शरीर से) संसर्ग न करने की इच्छा (उत्पन्न होती है)।

भावार्थ- जब शुद्धता उपलब्ध होती है, तब योगी में स्वयं के शरीर के प्रति एक जुगुप्सा और दूसरों के साथ शारीरिक सम्पर्क में आने के प्रति एक अनिच्छा उत्पन्न होती है।

महर्षि पतंजलि इस सूत्र में शौच के सच्चे, गहरे और तात्त्विक अर्थ को स्पष्ट करते हैं। शौच का अर्थ है शुद्धि, इसे यूं भी कह सकते हैं, मल को निर्मल करने की, अपरिष्कृत को परिष्कृत करने की, गंदगी को धुलकर साथ-सुथरा होने की प्रक्रिया शौच है। जो इस प्रक्रिया को पूरे हृदय से अपनाता है, उसमें स्वाभाविक रूप से एक नयी समझ पैदा होती है। वह जानने लगता है कि जीवन का शुद्धतम तत्त्व आत्मा है। इसे कभी कोई अशुद्धि, अपवित्रता स्पर्श नहीं करती। इसके अलावा जो कुछ भी है, वह सबका सब पवित्र एवं अपवित्र का मिश्रण है। फिर चाहे वह सूक्ष्म अन्तःकरण हो या फिर शरीर। कहीं न कहीं इन सबको अपवित्रता, अशुद्धि स्वयं में लपेटे है। जाने-अनजाने परिस्थितियों एवं कर्मों की धूल से शरीर-मन-अन्तःकरण अशुद्धि की लपेट-चपेट में आते रहते हैं।

इस सूत्र में शौच को शरीर के सन्दर्भ एवं परिप्रेक्ष्य में कहा गया है। शरीर अपनी प्रकृति से अशुद्ध एवं अपवित्र है। लेकिन फिर भी यही शुद्ध एवं पवित्र आत्मा का वास स्थान है। इस सच को थोड़ा और ढंग से समझा जाय तो शरीर और आत्मा की प्रकृति भिन्न एवं विपरीत है। शरीर जड़ है, जबकि आत्मा चेतन, शरीर अशुद्ध है, जबकि आत्मा शुद्ध। यहाँ तक कि शरीर को शरीर का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संसर्ग प्रिय है, जबकि आत्मा स्वाभाविक रूप से एकान्त व अकेलेपन में आनन्दित होती है। इन विपरीत परिस्थितियों एवं प्रकृति के बावजूद शरीर व आत्मा का मिलन ही जीवन है। जीवन का अस्तित्त्व तभी तक है, जब तक शरीर व आत्मा का सम्बन्ध स्थापित है। अन्यथा यह सम्बन्ध समाप्त होने के साथ ही जीवन भी अपना औचित्य एवं अस्तित्त्व खो बैठता है।

ऐसी स्थिति में योग साधक को योग साधना के क्रम में शौच विधि अपनानी पड़ती है। ताकि शरीर आत्मा के अनुरूप बने-विकसित हो। उसमें कम से कम इतनी पवित्रता आ सके कि वह आत्मा के प्रकाश की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सके। इस क्रम में परम पूज्य गुरुदेव अपनी चर्चाओं में कहते थे कि योग साधना की आवश्यकता आत्मा के लिए नहीं है, वह तो स्वाभाविक रूप से शुद्ध, बुद्ध व मुक्त है। योग साधना तो देह एवं मन के लिए जरूरी है, क्योंकि इन्हें अनगिन अशुद्धियों ने घेर रखा है। इन अशुद्धियों को शुद्ध करने का प्रारम्भिक प्रयास है शौच। शौच स्वच्छता है देह की, यह वह प्रक्रिया है जिससे देह आत्मा के प्रकाश व सुगन्ध से प्रकाशित एवं सुगन्धित होने लगती है।

इस सम्बन्ध में एक सच और भी है, जिसकी अनुभूति हम सभी प्राय: रोज व अनवरत करते हैं। देह के प्रति हमारी आसक्ति एवं आकर्षण इतना गहरा हो गया है कि हमने यह मान लिया है कि हम स्वयं देह हैं, देह से परे हमारी कोई सत्ता नहीं है। देह के सौन्दर्य से हम स्वयं को सुन्दर मानते हैं, देह के स्वस्थ होने से स्वयं को स्वस्थ अनुभव करते हैं और यदि कहीं देह बीमार हो जाय तो स्वयं को पूरी तरह से रोगी व बीमार अनुभव करने लगते हैं। लेकिन जब योग साधना के क्रम में हम शौच की प्रक्रिया को अपनाते हैं, तो इस अनुभव में परिवर्तन होता है। और तब बदले हुए क्रम में हम यह अनुभव करते हैं कि हम देह नहीं हैं, बल्कि देह तो हमारा घर है।

शौच यदि विवेकपूर्ण हो तो यह प्रगाढ़ता से अनुभव होता है कि देह बस पंचमहाभूतों का विकार है। हड्डी-चमड़ी-मज्जा, मांस और मल-मूत्र के सिवा यह और कुछ भी नहीं। यह सोच जैसे ही प्रगाढ़ होती है, वैसे ही देह का

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आकर्षण व आसक्ति घटने-मिटने लगती है। युगऋषि गुरुदेव ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में आध्यात्मिक वार्ता के क्रम में एक दिन यह बताया था, कि बेटा सब कुछ चौथाई मिलीमीटर की चमड़ी का खेल है। जब कभी मन स्वयं की देह में अथवा अन्य किसी की देह में आकर्षित हो तो एक पल के लिए आँख बन्द कर लेना और उसके अथवा स्वयं के बारे में सोचना कि तुम अथवा वह अब बिना चमड़ी के खड़े हो। बस इस एक पल में आकर्षण व आसक्ति की सारी माया समाप्त हो जाएगी।

पूज्य गुरुदेव की यह ऋषिवाणी ही देह का वह सम्पूर्ण सत्य है जो शौच के क्रम में अनुभव होती है। जैसे-जैसे देह की शुद्धि के प्रयास होते हैं, वैसे-वैसे उसकी अशुद्धि प्रकट होती है। और तब जुगुप्सा जन्म लेती है, मोह भंग का भाव पैदा होता है। चेतना देह से ऊपर उठकर आत्मा की ओर ऊर्ध्वगमन करती है। ऐसे में दूसरे के शरीर का संसर्ग पाने की चाहत स्वयं ही मिट जाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आन्तरिक शुद्धि खोलती है सिद्धियों के द्वार

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग योग साधक को पवित्रता की ओर अग्रसर करते हैं। योग साधक अपने योग-प्रयोग में जितनी तीव्रता से तल्लीन हैं, उसमें पवित्रता भी उतनी ही परिपक्व व व्यापक होती है। इसी वजह से योग अनुभव के शिखर पर पहुँचे योगियों ने पवित्रता को ही योग की चरम व परम सिद्धि कहा है। क्योंकि पवित्रता का अस्तित्त्व एवं व्यक्तित्त्व में जितना अधिक विकास होता है, साधक उसी गति से अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। और जिसकी स्वयं के स्वरूपमें भली भाँति प्रतिष्ठा हो सकी है, केवल वही सम्यक् एवं सम्पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो पाता है। इसके अभाव में व्यवहार, विचार व संस्कार में कहीं न कहीं हल्के गहरे दाग-धब्बे उभरते पनपते रहते हैं। इसीलिए सभी योगशास्त्रों में बताई गई विधियाँ व प्रक्रियाएँ किसी न किसी तरह साधक की चेतना में पवित्रता की रसधार उड़ेलती रहती है। इसका परिपाक कर इसे प्रगाढ़ बनाती हैं।

योग कथा की पिछली कड़ी में शौच के बारे में बताया गया था। शौच पवित्रता का बहिरंग रूप है। जिसे यदि सही ढंग से सम्यक् रीति से अपनाया जाय तो देह व दैहिक सम्बन्धों के प्रति अनासक्ति एवं वैराग्य का भाव पैदा होता है। जिसने शौच के इस गूढ़ मर्म को जान लिया, वह क्रमिक रूप से इसके और भी गहरे अर्थ को समझने में कामयाब हो पाता है। उसे समझ में आता है कि शौच केवल बहिरंग के दिखावे व व्यवहार तक सीमित नहीं है, इसका दायरा तो विचार व संस्कार के क्षेत्र तक व्यापक है। यदि इसकी अनुभूति हो सके तो साधक सही रीति से अपने मन का मैल धोकर आत्मदर्शन में समर्थ होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इस सत्य को स्पष्ट करते हुए महर्षि अपने अगले सूत्र में स्पष्ट करते हैं-

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय जयात्मदर्शन-योग्यत्वानि च॥ २/४१॥

शब्दार्थ- च= इसके सिवा;

सत्त्वशुद्धिसोम्रस्यैकाग्र्येन्द्रियजपात्मदर्शन - योग्यत्वानि= अन्त:करण की शुद्धि, मन में प्रसन्नता, चित्त की एकाग्रता, इन्द्रियों का वश में होना और आत्म साक्षात्मकार की योग्यता- ये पाँचों भी होते हैं।

भावार्थ- मानसिक शुद्धि से उदय होती है, प्रफुल्लता, एकाग्रता की शक्ति, इन्द्रियों पर नियंत्रण और आत्मदर्शन की योग्यता।

जिसने अपनी योग साधना में शौच का मर्म समझ लिया, इसे आत्मसात कर लिया, केवल वही मानसिक परिष्कार की ओर आगे बढ़ता है। शौच अर्थात् शुचिता या देह शुद्धि की सही समझ केवल तभी अनुभव की जा सकती है, जब देह को, अपने शरीर को तत्त्व से जान जाएँ। यह अनुभव कर लें कि सुन्दरतम देह भी अस्थि, चर्म, मांस-मज्जा के विकार के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। यही इसका तत्त्व और सत्य है। इसमें जो ऊपरी आकर्षण व सुन्दरता है, वह सब तो दरअसल जीवन की प्राण सम्पदा है, जिसके चुकते ही देह का आकर्षण व सौन्दर्य चुकने लगता है। प्राण का क्षरण होते ही देह रोग आदि अनेक विकारों से घिर जाती है। विकार रहित देह के लिए तो बस परिष्कृत प्राण चाहिए। यह बिना विवेक व वैराग्य के सम्भव नहीं। शौच की प्रक्रिया से इसी का अंकुरण होता है और तब योग साधक का देह एवं दैहिक सम्बन्ध या संसर्ग से मोहभंग हो जाता है।

इसके बाद उसकी गति मानसिक पवित्रता की ओर होती है। सत्य अर्थों में यही तो योग-योगी व योग साधना की पहचान है, जिसे पाते ही योगी निर्भार व आनन्दित होने लगता है। विषाद, अवसाद या मनोरोग तो बस अपवित्रता या अशुद्धि की पहचान है। इनसे मुक्त होते ही साधक आनन्दित होने लगता है। ऐसा व्यक्ति जो स्वयं के शरीर के प्रति अनासक्त हो चुका है, जिसे अब अपने किसी भी सुख के लिए किसी अन्य के शरीर की आवश्यकता नहीं रही। उसके व्यवहार, विचार व संस्कार से पल-पल प्रसन्नता छलकती है। कोई भी वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति या घटनाक्रम उससे इस अनोखी प्रसन्नता को कभी छीन नहीं सकता।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महात्मा ईसा ने यही योग अनुभव को पाने के बाद अपने शिष्यों से कहा- आओ मेरे पीछे। मेरा बोझ हल्का है। वे सब के सब जो भारी बोझ तले दबे हैं, आएँ मेरे पीछे आएँ। मैं उन्हें भी निर्भार कर दूँगा। योग विद्या के अनुभवीजन कहते हैं कि दु:ख, उदासी, तनाव व विषाद तो दरअसल रोग नहीं, बस रोग का साधारण लक्षण है। रोग तो यह है कि हम कहीं न कहीं गहरे में शरीर से बंधे हैं। शरीर व शरीर के सम्बन्धों के प्रति गहरी आसक्ति की मजबूत डोर हमें बाँधे है। यह खुले, इससे छूटें तो मानसिक परेशानियाँ भी हटे और मिटे।

शौच से यही सम्भव हो पाता है। देह की आसक्ति टूटने-हटने मात्र से सूखे-बंजर मन में फिर से प्रसन्नता के अंकुर फूटने लगते हैं। योगीजन कहते हैं कि यह प्रसन्नता व्यक्तित्व का आधारभूत सद्गुण है। इसके पनपते ही चित्त सहज ही एकाग्र हो जाता है और एकाग्र व्यक्ति की इन्द्रियाँ सहज वश में हो जाती हैं। और तब वैचारिक द्वन्द्वों एवं भावनात्मक विक्षोभों से मुक्त हुआ व्यक्ति स्वत: ही आत्मदर्शन पा लेता है। इसके पीछे कारण यह है कि यदि मन की प्रसन्नता तिरोहित होती है तो कहीं न कहीं गहरी मानसिक अशुद्धि का शिकार होता है। कहीं न कहीं उसमें ईर्ष्या, द्वेष, परनिन्दा, पनप रहे होते हैं।

सद्गुरु स्मरण एवं सद्गुरु की पावन चेतना में समर्पण से ये सभी दोष दूर होने लग जाते हैं। इस विधि से उसका बंटा-बिखरा मन फिर से एक जुट व अटूट होने लगता है। और तब स्वयं के अन्त:करण में होने वाली उथल-पुथल स्वत: ही शान्त हो जाती है। विचारों के द्वन्द्व हटने-मिटने लगते हैं। इसी के साथ शान्त होने लगते हैं भावनाओं का विक्षोभ व उफान। जिसके विचारों में द्वन्द्व नहीं है, भावनाओं में विक्षोभ नहीं है, उसके मन की एकाग्रता भी सहज होती है। इस एकाग्रता से साधक के मन की बाहरी शक्तियाँ, जैसे कि स्मरण शक्ति और आन्तरिक शक्तियाँ जैसे कि अन्तर्दृष्टि सहज ही विकसित हो जाती है। पवित्रता के विकास क्रम के साथ चित्तभूमि में प्रकाश भी बढ़ता जाता है। बढ़ते समय व बढ़ती साधना के साथ यह प्रकाश इतना पूर्ण हो जाता है कि साधक स्वयं की सम्पूर्ण अनुभूति में प्रतिष्ठित हो जाता है। उसके आत्मदर्शन में उसे विश्व दर्शन होने लगता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संतोष के बराबर कोई सुख नहीं

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चित्त की अशान्ति का शमन करते हैं। इस अशान्ति के शमन के साथ ही योग साधक को उपलब्ध होता है परम सुख। एक ऐसा सुख जिससे मिलने वाला आनन्द सर्वथा बाधा रहित होता है। यूँ देखा जाय तो हर तरह के सुख में कोई न कोई बाधा जरूर है। कभी तो यह बाधा शुरूआत से ही नजर आने लगती है, यदि शुरूआत में न दिखाई दी तो सुख का भोग करते हुए बीच में अनायास प्रकट हो जाती है। और अगर ऐसा न भी हुआ तो कोई भी सुख ऐसा नहीं जिसका अन्त किसी न किसी बाधा या विघ्न से न होता हो। इन्द्रियों से मिलने वाले जितने भी सुख भोग हैं, उनकी प्राप्ति प्राय: बाधाओं से भरी-पूरी है। यदि पूर्व कृत पुण्यों के फलस्वरूप यदि ये आसानी से मिल भी जाएँ तो पुण्यों के क्षीण होते ही रोग-संकट की अनेकों बाधाएँ आकर इनका नाश कर देती है।

मान-बड़ाई, यश-प्रतिष्ठा से जो अहं का सुख मिलता है, उसमें भी बाधाएँ कम नहीं है। प्रत्यक्ष में तो मान-सम्मान, यश और बड़ाई पाने वाला व्यक्ति बड़ा बलवान नजर आता है। लेकिन यथार्थ में ऐसा होता नहीं। कहीं अन्तस में वह उतना ही कायर और डरपोक होता है। बड़े से बड़े सत्ताधीश को अपनी सत्ता के चले जाने का भय सताता है। जिसका यश चहुँ दिश जितना अधिक फैला हुआ है, उसे उतना ही अधिक अपयश, अपमान-कलंक का भय भयभीत करता है। जन समूह की प्रतिकूलता उसे हमेशा डराती रहती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जिसका अहंकार जितना अधिक सम्मानित हो रहा है, उसे बाधाएँ भी उतनी ही ज्यादा घेरे रहती हैं। बार-बार उसके जीवन में बाधाओं की लहरें और भय के भँवर आते रहते हैं।

यह क्षणिक सुख मन को अनायास ही अवसाद-विषाद के शिकंजे में कसता जकड़ता रहता है। इससे वही मुक्त रह पाता है, जिसका मन शुद्ध हो चुका है। इस शुद्धता की चर्चा पिछली कड़ी में की गयी थी। इसमें बताया गया था कि मानसिक शुद्धि से उदय होती है, प्रफुल्लता, एकाग्रता की शक्ति, इन्द्रियों पर नियन्त्रण और आत्मदर्शन की योग्यता। इसके अतिरिक्त यह अनुभव जनित सत्य है कि जो योग साधक जितनी अधिक मानसिक शुद्धि अर्जित कर लेता है, उसके अन्त:करण में विवेक का उतना अधिक प्रकाश फैल जाता है। इस प्रकाश में उसे स्पष्ट अनुभव होता है कि इस नाशवान संसार में कुछ भी पाने योग्य नहीं है। क्योंकि जो भी पाया जाएगा वह किसी न किसी वजह से दु:खों की उत्पत्ति ही करेगा। प्रत्येक सुख भोग प्राप्ति की कामना से लेकर इसके भोग के अन्त तक दु:ख ही देता है। अशान्ति, बेचैनी की असंख्य मानसिक पीड़ाएँ इस प्रक्रिया में अनायास ही जुड़ जाती है। इनके अनगिन उपद्रवों से बचने के लिए विवेकवान योग साधक अपने सामान्यजीवन में सहज सन्तुष्ट होते हैं।

सन्तोष के बराबर कहीं कोई सुख नहीं है। यही अनुभूति महर्षि पतंजलि के अगले सूत्र का विषय है-

संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ २/४२॥

शब्दार्थ- संतोषात्= सन्तोष से; अनुत्तमसुखलाभ:= (जिससे) उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है- (ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है।)

भावार्थ- सन्तोष से उपलब्ध होता है परमसुख।

योगविद्या के महान् ऋषि एवं आचार्य पतंजलि का यह सूत्र अनेक गूढ़ार्थों को समेटे है। इसका प्रकट सत्य तो यही है कि जो व्यक्ति जितना अधिक असन्तुष्ट है, व न केवल उतना अधिक दु:खी होता है, बल्कि वह उतना ही अधिक योग साधना के लिए अनाधिकारी होता है। क्योंकि अशान्त, बेचैन एवं अस्थिर मन वाला व्यक्ति भला किस तरह और कैसे योग साधना कर पाएगा?

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जिसकी ख्वाहिशें, चाहतें जितनी बढ़ी-चढ़ी है, वह कभी भी स्थिर और शान्त नहीं रह सकता। यदि वह किसी वजह से शान्त-स्थिर होना भी चाहे तो परिस्थितियाँ और आस-पास के लोग उसे ऐसा नहीं करने देंगे। कारण इस छोटे से संसार में संसाधन सीमित हैं, और उन्हें चाहने वाले बहुत। किसी छोटी सी चीज के लिए अनगिन ख्वाहिशमन्द मिल जाते हैं। तब फिर बड़ी, आकर्षक एवं मूल्यवान वस्तुओं के बारे में तो ठीक से कुछ कहा ही नहीं जा सकता। ये चाहतें, ख्वाहिशें सिर्फ वस्तुओं या घटनाक्रमों तक ही सीमित नहीं हैं, इनके दायरे में व्यक्ति भी आते हैं। प्राय: देखा यह जाता है, आसक्ति, मोह अथवा तथाकथित प्रेम के कारण किसी एक स्त्री या पुरुष पर अनेकों व्यक्ति अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं। इस चाहत की वजह से वे सब दु:खी भी खूब रहते हैं।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव इस प्रसंग में अपनी आँखों देखी एक घटना सुनाया करते थे। उनके अनुसार एक बार जब वह किसी ग्रामीण क्षेत्र से पैदल आ रहे थे, तो उन्होंने देखा पास के एक बंजर मैदान में किसी जानवर का मृत शरीर पड़ा है। इस मृत शरीर के आस-पास गिद्धों का झुरमुट था। जो उसका मांस नोचने में लगे थे। इस मांस नोचने के प्रयास में उनमें आपस में छीना-झपटी भी खूब हो रही थी। इसी कारण कई गिद्ध तो लहू-लुहान भी हो चुके थे। पर अभी तक सफलता किसी को नहीं मिली थी। क्योंकि उनमें से हर एक गिद्ध का प्रयास था कि वह अपने अलावा किसी अन्य को सफल न होने दे। लेकिन देखते-देखते एक गिद्ध ने छल-बल-कौशल से बाजी मार ली। और वह मांस का एक बड़ा सा टुकड़ा नोच कर भाग चला।

अभी वह ज्यादा दूर जा भी न पाया था कि गिद्धों की वह सारी फौज उसके पीछे हो ली। उनमें हर एक गिद्ध की आँखों में उसके लिए क्रूर व हिंस्र भाव थे। इतने सारे गिद्धों के लिए वह अकेला शत्रु था। उनसे बचने के लिए वह बहुतेरा उड़ा भागा, पर उसकी एक न चली। उसके पीछे पड़ी गिद्ध सेना में भी अनेकों उड़ाके व लड़ाके थे। सो वे सब उसके इर्द-गिर्द अपनी व्यूह रचना करते रहे। ऐसा करते हुए समय भी काफी हो गया। परम पूज्य गुरुदेव गिद्ध का यह खेल बड़े मजे से एक पेड़ की छांव में खड़े देख रहे थे। इस दौड़-भाग,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लड़ाई-झगड़े में उस अकेले पड़ गए गिद्ध से मांस का वह टुकड़ा छूट गया, जिसे किसी अन्य ने झपट कर उठा लिया। अब सारे गिद्ध उस पहले वाले को छोड़कर उस दूसरे वाले के पीछे हो लिए। गिद्धों का वही पुराना खेल फिर से शुरू हो गया।

लेकिन इस भाग-दौड़ के बीच पहला वाला गिद्ध तनिक निश्चिन्त और आशवस्त था। वह गुरुदेव को देख रहा था और गुरुदेव उसे। यह क्षण ऐसा था जैसे कि जटायु श्रीराम को और श्रीराम जटायु को देख रहे हों। और उसे समझा रहे हों कि सुख सन्तोष में है। और शायद वह समझ भी रहा था कि सचमुच ही सुख सन्तोष में ही है। उस गिद्ध की आँखों में अब आश्वस्ति थी। इस घटना क्रम को सुनाते हुए गुरुदेव कहा करते थे कि गिद्ध वृत्ति कभी सुखी नहीं रह सकती। जितने अधिक का लालच, उतना ही अधिक दुःख। उतनी ही पीड़ा उतनी ही परेशानी। इसीलिए तो उपनिषद में भी सीख दी गयी है- '**मा ग्रधः**' लालच मत करो। ग्रध शब्द ही लालच का परिचय और पर्याय है। सन्तोष इसके विपरीत है क्योंकि यह विवेक की कोख से उपजता है, इसमें ज्ञान की प्रभा है, चेतना का उर्ध्वगमन है। योग साधक के लिए सन्तोष की आवश्यकता एवं अनिवार्यता दोनों है। क्योंकि सुख की लालसाओं में भटका हुआ मन कभी साधना नहीं कर सकता। क्योंकि साधना के लिए साधन नहीं सन्तोष की शीतलता में डूबा हुआ साधक मन चाहिए। सचमुच ही जहाँ सन्तोष है वहाँ परमसुख है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तप द्वारा अशुद्धियों का क्षय

अन्तर्यात्रा विज्ञान की क्रियाएँ, विधियाँ, अनुशासन एवं प्रयोग योग साधक का परिष्कार करते हैं, यही इनकी सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक विशेषता है। कोई भी, कहीं पर, किसी भी अवस्था में इनकी कैसी ही शुरुआत क्यों न करे, उसके कदम स्वत: ही परिष्कार की ओर बढ़ने लगते हैं। वह अनायास ही स्वयं में पवित्रता व प्रखरता की अनुभूति करने लगता है। योग साधक में पवित्रता व प्रखरता को बढ़ाने वाली इन योग क्रियाओं, विधियों, नियम-अनुशासन व प्रयोग विधियों को भले ही अलग-अलग कितने ही नामों से क्यों न जाना जाय ? परन्तु यदि उन्हें सामूहिक व सम्मिलित रूप से केवल एक नाम देना हो तो वह नाम होगा- तप। जिस तरह से योग का शाब्दिक अर्थ भले ही जुड़ना या जोड़ना हो, परन्तु इसका भावार्थ अति व्यापक है। ठीक उसी तरह से तप का शाब्दिक अर्थ भले ही उष्णता या तपन हो, लेकिन इसका भावार्थ व्यापक है।

योग एवं तप दोनों ही गहरे में घुले-मिले हैं। इन्हें एक-दूजे से अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि तप के बिना योग सम्भव नहीं है और योग बिना तप हमेशा ही अधूरा है। यदि तप किया है, तो योग उसका परिणाम है। तप यदि धुलाई है तो योग रंगाई। तप को यदि गलाई कहा जा सकता है तो योग को ढलाई कहना उचित होगा। ऐसी स्थिति में भला एक के बिना दूसरे को सम्पूर्ण कहना कहाँ तक उचित एवं औचित्यपूर्ण होगा। जो सच्चे अर्थों में पूरी निष्कामता के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साथ तप कर रहे हैं, उनके अन्त:करण में स्वत: ही योग अंकुरित एवं स्फुरित होने लगेगा। यदि कोई तपोनिष्ठ जीवन यापन कर रहा है, परन्तु अभी भी उसमें योग का अंकुरण नहीं हुआ तो केवल दो ही बातें सम्भव है, पहली तो यह कि उसमें अभी निष्कामता की कमी है और दूसरी यह कि उसका तप अभी भी सर्वांग और सम्पूर्ण नहीं हो सका है।

क्योंकि तप की तपन में प्रारब्ध-संचित एवं क्रियमाण कर्म स्वत: ही जलकर भस्म हो जाते हैं। हां इसके लिए तप को अत्यधिक तीव्र होना चाहिए। साथ ही चाहिए जीवन में सम्पूर्ण निष्कामता। जो निष्कामता से वंचित हैं, जिनका अन्त:करण अभी भी अनासक्ति एवं निस्पृहता से ओत-प्रोत नहीं है वे भले ही तप के नाम पर कितने ही आयोजन-सरंजाम क्यों न जुटा लें, उनका तप कभी भी आध्यात्मिक परिणाम नहीं दे सकता। वह तो बस जीवन में नए-नए लुभावने आकर्षण ही पैदा करेगा और कर्म की रस्सी को और भी अधिक कसता चला जाएगा। इसलिए समस्त अध्यात्मशास्त्र एवं अनुभवी जन यही कहते हैं कि तप करने का योग्य सुपात्र वही है, जो सहज सन्तोषी हो। जिसमें सन्तोष है वही तपस्वी होने का अधिकारी है।

योग कथा की पिछली कड़ी में इसी की चर्चा की गयी थी। इसमें कहा गया था कि सन्तोष से अनुत्तम सुख का लाभ होता है। सुख का जो अनुभव सन्तोष को अपनाने वाला पाता है, वह अन्य किसी को भी नहीं मिलता। यहाँ सर्वाधिक ध्यान रखने की बात यह है कि सन्तोष सात्त्विक मनोभूमि पर अंकुरित होने वाला सुगन्धित-सुरभित पुष्पी पादप है। यहाँ न तो तमस के लिए स्थान है और न रजस का। कई आलसी-तमोगुणी लोग अपने को सन्तोषी मान लेने का भ्रम पाल लेते हैं। लेकिन आलस्य अथवा अकर्मण्यता का सन्तोषपूर्ण जीवन में कोई स्थान नहीं है। सन्तुष्ट जीवन तो सम्पूर्ण कर्मठता लेकिन साथ ही निष्कामता एवं अनासक्ति का पर्याय है। इसी तरह जो रजोगुणी, चाहतों, लालसाओं व महात्वाकांक्षाओं का बोझ लादे हुए अहंकार की पथरीली राहों पर दौड़ रहे हैं, वे भी कभी सन्तोष का स्वाद पा नहीं सकते। सन्तोष का सुख तो स्वधर्म का निष्काम भाव से पालन करने वाले मनस्वी व तपस्वी को ही मिल पाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सन्तोष का सुख जिन्हें मिला है, केवल वही सही व सार्थक तपस्या का अनुभव कर पाते हैं। इस अनुभूति को उद्घाटित करना ही महर्षि पतंजलि के अगले सूत्र का विषय है-

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥२/४३॥

शब्दार्थ= तपसः= तप के प्रभाव से; अशुद्धिक्षयात्= जब अशुद्धि का नाश हो जाता है; तब; कायेन्द्रियसिद्धिः= शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।

भावार्थ= तपश्चर्या अशुद्धियों को मिटा देती है। तब इस तरह शरीर व इन्द्रियों की परिपूर्ण शुद्धि के साथ देह एवं इन्द्रियों की शक्तियाँ प्रकट होती है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र अति गूढ़ है, क्योंकि अध्यात्म विद्या के प्रारम्भ से लेकर अब तक तप के बारे में जितनी भ्रान्तियाँ पनपी है, उतनी किसी और विचार को लेकर नहीं पनपी। परम पूज्य गुरुदेव बहुधा तप का प्रसंग आने पर हंस कर कहते थे कि तप के नाम प्रायः मूर्खताएँ ही मूर्खताएँ हुई है और हो रही है। कोई भूखे रहने को तप समझता है तो किसी केलिए एक पाँव के बल पर खड़ा रहना तप है। किसी की छोटी समझ कहती है कि अपने को भांति-भांति से सताते हुए आत्मपीड़न करना तप है। फिर इस आत्मपीड़न के लिए कितनी विचित्रताएँ क्यों न करनी पड़े। अपने शरीर पर कीलें ठुकवाना, धूप में बैठना या फिर गर्मी के मौसम में आग सेंकना और भी ऐसा ही बहुत कुछ तप के नाम पर किया जाता है।

तब फिर तप है क्या ? इसके उत्तर में युगऋषि गुरुदेव कहते हैं कि तप तो दरअसल अपने अस्तित्त्व में ऐसी जबरदस्त आग पैदा करने का नाम है, जिसमें सारे कषाय-कल्मष जल सके, जलाए जा सके। पर ध्यान रहे यह आग यूं ही नहीं पैदा होती। इसके लिए चाहिए ईंधन और यह ईंधन मिलता है अपने व्यक्तित्व की सभी तरह की ऊर्जाओं के संरक्षण से। जो शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक ऊर्जा को भोगों की भटकन से बचा लेते हैं, वही स्वयं तप की योग्यता अर्जित कर पाते हैं। स्वयं की ऊर्जा का भरपूर संरक्षण, यही तप का प्रथम नियम है। यही ऊर्जा तप का ईंधन बनती है। परमात्मा के प्रति सम्पूर्ण

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

समर्पण ही इस ईंधन में आग लगाने का उपाय है। ईश्वर शरणागत से ही तपस्वी के तप को सम्पूर्णता मिलती है। इस विधि को अपनाने वाले का चित्त स्वयं ही शुद्ध होता है।

रही बात तप में भोजन आदि नियमों की तो परम पूज्य गुरुदेव कहते थे कि जो स्वास्थ्य के लिए खाता है वह सात्त्विक अन्न खाता है। जो स्वाद के लिए खाता है वह राजसिक अन्न खाता है। और जो स्वाद के लिए कुछ भी खा लेता है और पेट भर जाने के बाद भी खाता है, वह तामसिक अन्न खाता है। इसलिए तपस्वी को अपने स्वास्थ्य के लिए अनुकूल भोजन उसी तरह ग्रहण करना चाहिए जैसे कि रोगी औषधि का सेवन करता है। भोजन भी औषधि है इसे औषधि की ही तरह सर्वथा उपयुक्त एवं औचित्यपूर्ण ढंग से ग्रहण करना चाहिए। शेष जीवन में चिन्तन-चरित्र एवं व्यवहार को पूर्णतया तपोमय बनाना चाहिए। ध्यान रहे सच्चा तपस्वी वही है, जिसके व्यक्तित्व में तप हेतु न तो ईंधन कम पड़े और न ही आग मन्दी हो। अधिकतम ईंधन और अधिकतम आग ऐसा हो तभी तपस्वी का तप तीव्र होता है। इस तीव्र तप की ताप में शरीर व इन्द्रियों की सभी अशुद्धियों का क्षय होकर इनकी स्वाभाविक शक्तियों का विकास होता है। सभी तरह के कषाय-कल्मष क्षीण होकर एक अलौकिक तप तेज प्रकट होता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्वाध्याय से इष्ट दर्शन

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग-योग साधक के चिन्तन, चेतना एवं चित्त की पुनर्संरचना करते हैं। इस नवीन संरचना का आधार बनता है, साधक के चिन्तन में परिवर्तन। चिन्तन में उथल-पुथल, थोड़ी बहुत फेर-बदल बड़ी सामान्य सी घटना है, जो कल्पनाओं की लहरों एवं भावनाओं की तरंगों के साथ घटित होती रहती है। ये कल्पनाएँ एवं भावनाएँ लोगों के व्यवहार, देखे हुए दृश्यों, सुनी हुई बातों एवं व्यावहारिक जीवन के घटनाक्रमों के अनुसार बदलती रहती हैं।

यह परिवर्तन क्रम प्रायः सभी के जीवन में जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे घटित होता रहता है। हालांकि इसकी कोई सुनियोजित दिशा नहीं होती, बस यह सब ऐसे ही अनायास चलता रहता है। जबकि इस चलते रहने के सत्प्रभाव या फिर दुष्प्रभाव बड़े दूरगामी होते हैं। योग साधक एवं मानवीय चेतना के मर्मज्ञ मनीषी ऐसे बेहोशी भरे जीवन के हिमायती कभी नहीं होते। उनका विश्वास होशपूर्ण होने एवं जाग्रत् जीवन जीने में होता है।

उनकी इसी धारणा से योग के प्रयोग उत्पन्न हुए हैं एवं योग की तकनीकें विकसित हुई हैं। चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार की प्रत्येक छोटी-बड़ी क्रिया के दिशापूर्ण सुनियोजन के परिणाम बड़े ही आश्चर्यकारी साबित होते हैं। इस सत्य को सदा से योग विद्या के अनुभवी-अनुभव करते आएँ हैं। योग कथा की पिछली कड़ी में ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण सत्य की चर्चा की गयी है, इसमें तप

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के साधन एवं इसके परिणाम के बारे में बताया गया था। तप व्यक्तित्व के परिष्कार का विज्ञान है, जो साधना के सन्मार्ग पर संकल्पित हो चले जा रहे हैं, वे नैसर्गिक तपस्वी हैं। इसके प्रभाव से उनके जीवन की अशुद्धियों का नाश होता है और स्वत: ही शरीर व इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है। जीवन में स्वत: ही एक रूपान्तरण की प्रक्रिया घटित होने लगती है, लेकिन इसमें एक अनिवार्य व्रतबन्ध भी है कि यह तप किसी कामना के वशीभूत न होकर बस निष्काम भाव से केवल आत्मपरिष्कार के लिए किया गया हो।

तप के परिणाम आश्चर्यकारी होते हैं, यह लोक विख्यात् है। लेकिन इसी के साथ यह भी सत्य है कि तप एवं तपस्वी दोनों के ही भटकने के आसार प्राय: रहते है। इस भटकाव का सामान्यतया एक ही कारण होता है, तपस्वी का चिन्तनशील एवं भाव प्रवण न होना। चिन्तन एवं भाव के परिमार्जन के बिना तप की समूची प्रक्रिया अहंकार के अंधेरे में खो जाती है। ऐसा न हो इसके लिए चिन्तन का निरन्तर परिमार्जित व परिष्कृत होना जरूरी है। कल्पनाएँ हो या भावनाएँ इनका साफ-सुथरा व स्वच्छ होना आवश्यक है। यदि कल्पनाओं एवं भावनाओं की स्थिति परिष्कृत रह सकी तो चेतना एवं चित्त भी परिष्कृत होते रह सकेंगे। परन्तु यदि कल्पनाएँ कलुषित हुई व भावनाएँ भटकी तो समझो चेतना धूमिल हुई और चित्त में संस्कारों की धूल बढ़नी प्रारम्भ हो गयी। ऐसा न हो इसके लिए महर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में एक नयी प्रयोग विधि स्पष्ट करते हैं-

स्वाध्यायादिष्ट देवतासम्प्रयोग: ॥२/४४॥

शब्दार्थ- स्वाध्यायात्= स्वाध्याय से; ईष्टदेवतासम्प्रयोग:= इष्ट देवता की भलीभाँति प्राप्ति हो जाती है।

भावार्थ- स्वाध्याय से ईष्ट देवता का साक्षात्कार और उनसे एकत्व घटित होता है।

महर्षि पतंजलि अपने इस सूत्र में स्वाध्याय को महत्त्वपूर्ण योगविधि के रूप में स्पष्ट करते हैं। आमतौर पर स्वाध्याय को पठन-पाठन तक सीमित माना जाता है। लेकिन सत्य इससे कहीं गहरा और व्यापक है। कहीं भी कुछ भी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पढ़ लेने को स्वाध्याय नहीं कहा जा सकता। कहीं भी-कुछ भी पढ़ लेना, विशेष तौर पर जो इन्द्रियों को उत्तेजित एवं चेतना को उद्वेलित करे आध्यात्मिक दृष्टि से अहितकर है। ऐसे पठन-पाठन को वर्जित ही समझा जाना चाहिए। पढ़ने का एक प्रकार है- जिसे विद्यार्थी विद्यालयों-महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं। इसे अध्ययन कहते हैं। इसके अन्तर्गत सभी प्राकृतिक एवं लौकिक ज्ञान आ जाता है। इससे जीवन एवं जगत् की सतही समस्याएँ सुलझती हैं।

स्वाध्याय का प्रकार व प्रक्रिया इससे भिन्न है। यह पठन अथवा श्रवण की वह विधि है, जो व्यक्ति को आत्मोन्मुख करती है। उसे सामान्य जन से योग साधक बनाती है। ऐसे अध्ययन के लिए सबसे पहली महत्त्वपूर्ण बात है, उपयुक्त विषय वस्तु अथवा साहित्य का चयन। अच्छा यही है कि इसके लिए वेद, शास्त्र, ऋषियों की वाणी अथवा फिर आत्मानुभूति सम्पन्न, ईश्वरीय चेतना से एकाकार हुए सन्तों का साहित्य पढ़ा जाय। इसके बाद दूसरा क्रम है- इस अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में स्वयं की समीक्षा करना। इसके पश्चात् तीसरे क्रम में अपनी कमियों को परखने और उन्हें सुधारने की योजना बनानी चाहिए। इस क्रम में अन्तिम एवं चौथा चरण है इसे अपने व्यक्तित्व में क्रियान्वित करना और इसके परिणामों को शास्त्र व सन्तों के अनुभवों के परिप्रेक्ष्य में परखना।

ऐसा हो सके तो पठन-श्रवण अथवा अध्ययन-मनन व निदिध्यासन के द्वारा चिन्तन-चेतना व चित्त के परिष्कार का क्रम चल पड़ता है। इस चित्त परिष्कार की तीव्रता व परिपक्वता के अनुरूप साधक अपने ईष्ट के साक्षात्कार की अवस्था तक पहुँच जाता है। स्वाध्याय के इस विधान के अलावा एक अन्य सूक्ष्म एवं रहस्यमय विधान भी है। इसे मन्त्र साधना कहते हैं। गायत्री महामन्त्र इसके लिए सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। मन्त्रार्थ चिन्तन के साथ मन्त्र जप करते हुए भी आत्म समीक्षा व आत्म परिष्कार के क्रम को पूरा किया जा सकता है। मन्त्रार्थ चिन्तन में मन लीन रहे, हृदय में भगवती गायत्री की छवि बनी रहे तो शीघ्र ही साधक की चेतना जगन्माता की उपस्थिति, कृपा एवं उनसे एकात्मता का अनुभव करने लगती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसके अलावा भी स्वाध्याय का एक विशेष विधान और है। वह उनके लिए है, जिनकी प्रज्ञा पवित्र एवं प्रखर है। ऐसे विशिष्ट साधकों के लिए बहुत सारा अध्ययन एवं मन्त्र साधना अनिवार्य नहीं है, इनके लिए आत्म-चिन्तन, आत्म-स्मरण पर्याप्त है। ऐसा करने में इन्हें आत्मज्ञान की उपलब्धि होती है, जो बाद में परमात्मा की अनुभूति व उपलब्धि में परिवर्तित हो जाती है। इस अनुभूति को पाने वाला सहज ही अयमात्मा ब्रह्म के बोध में प्रतिष्ठित हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ईश्वर शरणागति खोले समाधि के द्वार

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोगों में भावनाओं का महत्त्व बहुत अधिक है। भावनाओं से ही हमें सुख-दुःख की, अच्छे-बुरे की अनुभूति होती है। जिन्दगी के सभी अहसास इन्हीं भाव-संवेदनाओं के कारण होते हैं। इन्हीं से हमें व्यक्ति, वस्तु-परिस्थिति एवं किसी घटनाक्रम का चैतन्य स्पर्श मिलता है। भाव-संवेदनाओं के स्पर्श की गहराई व गहनता ही सम्बन्धों व संस्कारों की संरचना की सम्पूर्ण रूप-रेखा तय करती है। यही कर्म के जटिल जाल को बुनने व बनाने का आधार है। आज जो कुछ भी हम हैं वह केवल अतीत व वर्तमान की अपनी भावनाओं-संवेदनाओं के अनुसार ही हैं। कल का हमारा होना भी इन्हीं के अनुसार ही होगा।

यदि अतीत को मिटाकर नया व सर्वथा मौलिक वर्तमान एवं भविष्य गढ़ना हो तो निश्चित ही अपनी संवेदनाओं की नवीन संरचना करनी होगी। भावनाओं के भवन को नए आधार देने होंगे। ऐसा करने के लिए किया गया संकल्प, सही गयी कठिनाइयाँ, अपनायी गयी विधियाँ ही तप है। इसके विपरीत जो कुछ भी कहा और किया जाना है, वह बच्चों के खिलौनों-खेल के बचकानापन व बचपने के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। फिर यह विविध मन्त्रों का जप अथवा अन्य आकर्षक क्रियाएँ ही क्यों न हो ? सत्य यही है जिसे कहा और लिखा जा रहा है। अध्यात्म और आध्यात्मिकता का अर्थ यही है कि भावनाओं में भगवान् को बसा लेना। संवेदनाओं को सम्पूर्णता में उन्हें और केवल उन्हें

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अर्पित कर देना। जो ऐसा कर सका वह निश्चित ही समाधि की डगर पर चल पड़ता है।

पिछले सूत्र में इस प्रक्रिया की वैचारिक पृष्ठभूमि पर चर्चा की गयी थी। इसमें बताया गया था कि स्वाध्याय के द्वारा दिव्यता के साथ एकत्व घटित होता है। इसी प्रकरण में यह भी कहा गया था कि स्वाध्याय किसी साहित्य अथवा दर्शन का अध्ययन नहीं है। यह तर्कों का जाल-जंजाल एवं बुद्धि की खोखली कलाबाजियाँ भी नहीं है। स्वाध्याय तो यथार्थ में वह महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे विचार-चिन्तन के द्वारा चित्त एवं चेतना की नवीन संरचना होती है। भावना और संवेदना जिससे परिष्कृत व परिशोधित होकर परमात्मा की ओर मुड़ते हैं। इसी पर जीवात्मा व परमात्मा के मिलन की इबारत लिखी जाती है। जो स्वाध्याय का मर्म समझ लेते हैं, वे ईश्वर-शरणागति की राह चल देते हैं। इसी सच को महर्षि ने अगले सूत्र का सत्य बनाया है।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥२/४५॥

शब्दार्थ= ईश्वरप्रणिधानात्= ईश्वर प्रणिधान से; समाधिसिद्धिः= समाधि की सिद्धि हो जाती है।

भावार्थ= समाधि का पूर्ण आलोक घटित होता है- ईश्वर की शरणागति- उनके प्रति समर्पण घटित होने पर।

महर्षि पतंजलि के इस सूत्र में योग साधना की अनूठी प्रक्रिया और उसका अलौलिक परिणाम निहित है। ईश्वर शरणागति आध्यात्मिक जीवन व जगत् की श्रेष्ठतम साधना है। सतही तौर पर विचार करने पर यह इतनी सरल लगती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि इससे आसान और कुछ भी नहीं, क्योंकि इसमें तो कुछ भी नहीं करना है, बस भगवान् के शरणापन्न हो जाना है। इसमें न तो यम-नियम के कठिन व्रतों का बन्धन है और न ही आसन-प्राणायाम जैसी जटिल क्रियाओं की दुरूहता। बस आसानी से परमेश्वर का स्मरण करते हुए अपना चित्त-चिन्तन एवं चेतना उसमें लगाए रखना है।

पर बात इतनी सी नहीं है। इस आसान सी बात में कई कठिनाइयाँ हैं, जिसमें से पहली है परमेश्वर के सत्य व उसकी सत्ता की समझ। दूसरी है उनके

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्रति स्मरण व समर्पण में निरन्तरता बनी रहना। और तीसरी- जो सबसे बड़ी बात है इसमें, वह है प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति में शान्त व तटस्थ रहते हुए कष्टों के प्रति सहनशील व श्रद्धावान बने रहना।

परमेश्वर का सत्य व उनकी सत्ता की समझ, ऋषि-मुनियों एवं अनुभूति सम्पन्न सन्तों-योगियों के अनुभवों का निरन्तर चिन्तन करने से विकसित होती है। इस समझ-सोच का विकास होने पर ही परमात्मा की धारणा बन पड़ती है। इसके प्रगाढ़ होने से प्रभु भक्ति व प्रभु प्रेम प्रकाश अन्त:करण में प्रकट होता है। स्वाध्याय व सत्संग की प्रक्रिया इसमें बड़ी मददगार साबित होती है। स्वाध्याय सत्संग की नियमितता बनी रहे, भगवान् का स्मरण व उनमें समर्पण का सिलसिला चलता रहे तो ईश्वर शरणागति अनायास सुलभ हो जाती है। ईश्वरशरणागति-तामसिक व जड़ताग्रस्त लोगों के बस की बात नहीं है। यह तो वे ही कर सकते हैं जिनकी अन्तर्चेतना में शुद्ध सत्त्व का प्रकाश है।

यह निष्क्रियता अथवा निठल्लेपन की अवस्था नहीं है। इसमें रजोगुण से उपजी अहं भावना का कोई स्थान नहीं है। जो निष्काम भाव से प्रभु अर्पित कर्म करते हैं, वही ईश्वरशरणागति का मर्म समझ पाते हैं। निरन्तरता व अनवरत कर्म, परन्तु फल की जहाँ कोई चाह नहीं है। जिनका मन नित्य-निरन्तर परमात्मा में रमा हुआ है, जिनकी प्रत्येक श्वास भगवान् को अर्पित है, केवल वही ईश्वर शरणागति के अधिकारी हैं। यहाँ एक बात और स्पष्ट जान लेनी चाहिए कि ईश्वर शरणागति का अर्थ भगवान् से किसी सुरक्षा या संरक्षण की याचना नहीं है। बस परमेश्वर में स्वयं को सब भाँति अर्पित करके सब तरह से निश्चिन्त हो जाना है।

जो भगवान् के प्रेम में सब तरह से रम गए हैं उन्हें न तो अतीत का पछतावा होता है, न वर्तमान की चाहत और न ही भविष्य की कोई चिन्ता। उनका चिन्तन, चेतना और चित्त तो बस परमात्मा में घुलता जाता है। उनके संस्कार स्वत: ही पेड़ के सूखे पत्तों की भाँति झड़ते जाते हैं। प्रत्येक स्थिति में ऐसे भक्त जन अपने भगवान् की शरण में होते हैं। इनकी चेतना भगवान् से इतनी गहराई से तद्रूप हो जाती है कि समाधि इनके जीवन की सहज उपलब्धि बन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जाती है। क्योंकि आखिर समाधि का प्रधान अवरोध तो चित्त में जमे संस्कार व कर्मबीज है। जो ईश्वर शरणापन्न भक्त के जीवन में अनायास ही झड़ते-छूटते जाते हैं।

ऐसे भांवयोगी मीरा की भाँति, तुलसी, सूर की भाँति सदा सर्वदा अपने आराध्य की कृपा छांव में रहते हैं। विष हो या अपमान अथवा कोई अन्य सामाजिक विपदा उनकी राह में कभी कोई रोड़े नहीं अटका पाती है। कर्म करते हुए इनमें कोई कर्त्तापन का भाव नहीं रहता। यही वजह है कि चित्त शुद्धि जितनी तीव्रता व तत्परता से इस मार्ग के पथिकों को मिलती है, उतनी अन्य व अन्यत्र असम्भव है। इन्हें किसी भी अवस्था में भय भयभीत नहीं करता। अहंकार तो जैसे इनमें होता ही नहीं। अहंकार के अभाव में बस इनका शुद्धतम अस्तित्त्व विराट् शून्य बचता है। एक अनन्त-असीम अस्तित्त्व होता है, जिसमें मैं का कोई स्थान नहीं होता। और तब समाधि का पूर्ण आलोक फलित होता है। भक्त-भगवान् बन जाता है। उसके जीवन की चेतना अनायास ही चरम व परम के शिखर पा जाती है। व्यक्ति व व्यक्तित्व दोनों रूपान्तरित हो परमात्मा बन जाते हैं। भावों के अर्पण, समर्पण से यह विलक्षण घटना घटित हो जाती है। जहाँ समाधि की दशा में भगवान् व भक्त एकाकार हो जाते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

स्थिरता से शान्ति और शान्ति से सुख

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग देह-प्राण व मन को स्थिर, शान्त व सुखमय बनाते हैं। योग के प्रयोग करने वाले अनुभवी योग साधकों का अनुभव यही कहता है। यदि देह-प्राण व मन किसी भी तरह से स्थिर हो सकें, तो शान्ति स्वत: आ जाती है। बाद में यही शान्ति जीवन को सर्व सुखमयता प्रदान करती है। इसके विपरीत जीवन के जिस आयाम में स्थिरता नहीं है, वहाँ सहज-स्वाभाविक अशान्ति छायी रहती है। यही अशान्ति जिन्दगी के उस आयाम के सुखों का हरण कर लेती है। जो अस्थिर और अशान्त है, उसे किसी भी तरह से सुख का अहसास हो ही नहीं पाता। वह प्राय: अवसाद-विषाद में डूबा रहता है। भांति-भांति के तन व मन के रोग उसे घेरे रहते हैं और सदा-सदा जीवन दु:खमय बना रहता है।

इस स्थिति की बड़ी महत्वपूर्ण वजह है। दरअसल देह-प्राण व मन एक-दूसरे से गुँथे-जुड़े हैं। प्राण का धागा इन्हें आपस में पिरोये है। प्राण के ही माध्यम से देह व मन एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं और एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। आघात देह को लगे तो घायल मन भी होता है। इसी तरह से यदि मन पीड़ा-परेशानी से घिरे तो देह अनायास ही हारा-थका महसूस करती है। प्राण यदि कमजोर पड़ जाए तो देह और मन दोनों स्वत: ही कमजोरी महसूस करने लगते हैं। यह सत्य ऐसा है जिसे रोज-मर्रा की जिन्दगी में सभी महसूस कर सकते हैं। इन तीनों

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

को स्वस्थ-पुष्ट-निरोग करने का स्वाभाविक उपाय स्थिरता-शान्ति व लयबद्धता है।

यह स्थिरता-शान्ति व लयबद्धता प्रगाढ़ होती जाए और इसकी चरमावस्था आ पहुँचे तो साधक समाधि अवस्था को प्राप्त करता है। इस योग कथा की पिछली कड़ी में इसकी चर्चा की गयी थी। इसमें बताया गया था कि यदि ईश्वर प्रणिधान परिपक्व हो जाए तो समाधि की सिद्धि हो जाती है क्योंकि ईश्वर प्रणिधान की साधना में ईश्वरीय चेतना साधक को निरन्तर अपने आप से लयबद्ध करती रहती है। इस लयबद्धता के वर्तुल में सम्पूर्ण अस्तित्व सहज ही शान्त हो जाता है और स्वाभाविक ही सब ओर स्थिरता पुष्ट होती जाती है। हालांकि यह ईश्वर प्रणिधान की साधना केवल वही कर सकते हैं, जो भावनाओं से भरे हैं। जिनका अन्त:करण निर्मल व भक्ति से ओत-प्रोत है। जो परमेश्वर का सान्निध्य हर पल-हर क्षण अनुभव करते हैं। जिनके पास परिष्कृत व दैवी भावनाएँ नहीं हैं, उनके लिए यह सब लगभग असम्भव है। स्थूल व लौकिक अनुभवों में रचे-बसे, इनमें डूबे हुए लोग यह नहीं कर सकते।

यद्यपि महर्षि पतञ्जलि इनके लिए भी मार्ग अवरुद्ध नहीं करते। वह हर एक व्यक्तित्व के अनुरूप राहे बताते हैं। जो अभी स्थूल जीवन से ऊपर नहीं उठ सके हैं, उनके लिए भी परमोदार महर्षि ने द्वार खोले हैं। ऐसे लोग अपनी शुरुआत स्थूल देह व व्यवहारिक लौकिक जीवन से कर सकते हैं। वे उनके लिए स्थूल देह के लिए सर्वथा स्थूल अभ्यास आसन का मार्गदर्शन करते हैं। इस सत्य को उन्होंने अपने अगले सूत्र में प्रकट किया है -

स्थिरसुखमासनम् ॥२/४६॥

शब्दार्थ -स्थिरसुखम =निश्चल (हिलन-चलन से रहित) सुखपूर्वक बैठने का नाम, आसनम्=आसन है।

भावार्थ - स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन है।

महर्षि का यह सूत्र बड़ा मौलिक व गूढ़ है। आधुनिक योग-युग में यह बात थोड़ी अटपटी लग सकती है क्योंकि आज प्रचारवादी योग गुरुओं के दौर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

में प्राय: सभी योग आसनों से परिचित हो चले हैं। प्रचार माध्यमों से इन आसनों की विविधता देखने को मिलती है। इन दिनों इनकी राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताएँ भी होने लगी हैं। परन्तु महर्षि पतंजलि का कथन इन भाँति-भाँति के आसनों से थोड़ा भिन्न व मौलिक है। हालांकि ये सभी आसन जो हठयोग के अन्तर्गत आते हैं, महत्वपूर्ण हैं। इनमें से प्रत्येक की अपनी उपयोगिता व आवश्यकता है। इन आसनों के माध्यम से देह में स्थित प्राण नियन्त्रित व संचालित होता है। आसनों को करने से प्राण-देह में स्थित सभी एक सौ आठ केन्द्रों में सुचारु रूप से प्रवाहित होता है। इस प्रयास से देह जरा-जीर्णता व अनेक तरह के रोगों से बची रहती है।

महर्षि का उद्देश्य हठयोग की प्रक्रिया व परम्परा से भिन्न है। वह अस्तित्व व व्यक्तित्व में व्याप्त चेतना का ऊर्ध्वगमन करके उसे परमात्मा से लयबद्ध करना चाहते हैं। इसके लिए वह आसनों की जटिलता के स्थान पर सहजता का चयन करते हैं। उनके अनुसार इस प्रयोग में आसन ऐसे होने चाहिए, जिसे बिना किसी प्रयास के सुखपूर्वक किया जा सके।

हठयोग में जिन ध्यानात्मक आसनों की चर्चा है, उनका चुनाव व चयन इस कार्य के लिए किया जा सकता है। इस हेतु पद्मासन, सिद्धासन प्रशस्त हैं। जिनके लिए इन दोनों को भी करने में कठिनाई है, वह निश्चिन्त होकर केवल पालथी लगाकर बैठ सकते हैं। पालथी लगाकर बैठना काफी सुखद व आसान है इसीलिए इसे सुखासन भी कहा गया है।

इस सन्दर्भ में परम पूज्य गुरुदेव अपनी वार्ताओं-चर्चाओं में कहा करते थे कि बेटा! बात स्वास्थ्य व आरोग्य की हो तो इसके उद्देश्य व औचित्य को ध्यान में रखते हुए किसी भी तरह के किन्तु उपयोगी आसन किये जा सकते हैं। स्वास्थ्य के लिए आयु व रोग की स्थिति अथवा शरीर की स्थिति को ध्यान में रखकर कतिपय ऐसे आसनों के समूह को चुना जा सकता है, जिनका नियमित अभ्यास होता रहे। परन्तु जब बात साधना की हो तो केवल ऐसे आसन का चयन करना चाहिए जिसमें दीर्घकाल तक बिना किसी प्रयास व कष्ट के बैठा जा सके।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साधना के लिए आसन वह उपयोगी है जो देह, प्राण व मन को स्थिरता व लय दे सके। इस सम्बन्ध में यह जानना अति आवश्यक है कि यदि देह को दीर्घकाल तक स्थिर रखा जा सके, तो उसमें स्थित प्राण व मन भी अनायास ही स्थिर होने लगते हैं। हालांकि ऐसा दीर्घकाल के अभ्यास के बाद होता है, पर होता अवश्य है। पूज्य गुरुदेव का इस सन्दर्भ में यह कहना था कि आसन के अभ्यास के लिए पहले अपने शरीर व मन की स्थिति के अनुरूप किसी भी आसन यथा पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन का चयन कर लेना चाहिए। फिर समतल भूमि या तख्त पर मुलायम बिछौना बिछाकर, उसमें बैठकर किसी योग क्रिया अथवा मन्त्र जप या ध्यान में संलग्न होना चाहिए।

आसन पर यूँ ही व्यर्थ बैठे रहना बहुत उपयुक्त नहीं है। अच्छा है इस अवधि में मंत्र जप अथवा ध्यान आदि के अभ्यास किए जाए। तो स्थिरता, शान्ति व लयबद्धता अनायास ही सधने लगती है। इस प्रयास में आसन भी अनायास परिपक्व होता जाता है। पूज्य गुरुदेव के अनुसार सहजतापूर्वक यदि तीन घण्टे लगातार प्रतिदिन निरन्तर तीन वर्षों तक बैठा जा सके तो आपेक्षित परिणाम आने लगते हैं। इस प्रयास में तन व मन दोनों स्थिर व शान्त होने लगते हैं और योग क्रियाओं व योग साधना में सहजता होने लगती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

असीम परमात्मा से मिलन

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग साधक को मौलिकता की ओर अग्रसर करते हैं। विधियाँ या तकनीकें यदि विवेक रहित हों तो वे रूढ़ियाँ बन जाती हैं। उन्हें करना लकीर पीटना जैसा हो जाता है। विधियों या तकनीकों की ऐसी नकल से चेतना जाग्रत् होने के स्थान पर सुप्त हो जाती है। अस्तित्त्व में चैतन्यता की बजाय जड़ता छा जाती.है, जबकि महर्षि पतंजलि अपने योग के प्रयोग के माध्यम से योग साधक को सम्यक् सम्बुद्ध, सम्पूर्णता में चैतन्य बनाने की ओर अग्रसर करते हैं। इसीलिए उनकी विधियों में विवेक है। मौलिकता की तनिक भी अवहेलना नहीं है, बल्कि उसका विकास और परिष्कार है। इसीलिए अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग सदा ही स्वयं में नवीनता व साधक की स्वयं की मौलिक विशेषताओं के विकास पर जोर देते हैं।

युग द्रष्टा योग ऋषि परम पूज्य गुरुदेव इसीलिए हमेशा ही विवेक को अपनाए जाने पर जोर देते हैं। वह नकलचीपन को कभी पसन्द नहीं करते थे। वह हमेशा कहा करते थे कि योग में नए-नए प्रयोगों के लिए सदा ही स्थान बना रहेगा। विधियों की अंधी नकल के बारे में उन्होंने अपनी आध्यात्मिक वार्ता में एक कथा सुनायी थी। उन्होंने बताया था कि उनके गांव के पास के गांव में एक हकीम रहा करते थे। इन हकीम साहब की बड़ी ख्याति थी। इनकी दवाओं से लोग बड़ी जल्दी ठीक हो जाया करते थे। इसी कारण इन्हें लोग दूर-दूर से बुलाते थे। लेकिन अपने बुढ़ापे की वजह से हकीम साहब को दूर-दूर जाने में परेशानी होती थी।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इसी वजह से उन्होंने एक युवक को अपना शागिर्द बनाया। वह युवक भी अपने बुजुर्ग उस्ताद की तरह बहुत जल्दी प्रसिद्ध होना चाहता था। इसलिए वह हकीम साहब की कुछ बातों को सीख लेता और कुछ की हू-ब-हू नकल कर लेता, जबकि हकीम साहब उसे बराबर समझाते कि सीखना अच्छी बात है लेकिन नकल करना अच्छी बात नहीं है। पर उस युवक को यह बात पूरी समझ में न आयी। एक बार वह हकीम साहब के साथ एक मरीज के पास गया। हकीम साहब ने मरीज का रोग पहचानने के लिए उसकी नब्ज पकड़ी और उससे कहा, ये सर्दी के दिन हैं और तुम अमरूद बहुत खाते हो यही वजह है कि तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं हो पा रही। वह युवक हकीम साहब के इस निदान से चमत्कृत रह गया। उसने उनसे पूछा कि आपने नब्ज देखकर कैसे बता दिया कि वह व्यक्ति अमरूद खाता है।

बूढ़े हकीम ने उसे देखकर मुस्करा कर कहा- अरे भाई यह तो साधारण सी बात है। उस मरीज की चारपाई के नीचे कुछ साबूत, कुछ खाए हुए अमरूद रखे थे। यह बात सुनकर युवक ने कुछ कहा तो नहीं, लेकिन जैसे उसे एक नयी विधि मिली, ऐसा सन्तोष उसके चेहरे पर जरूर उभरा। अगले ही दिन एक मरीज को देखने एक दूर के गाँव जाना था। बूढ़े हकीम इतनी दूर जाने में असमर्थ थे, इसलिए उन्होंने उस युवक को भेज दिया। युवक ने मरीज के घर पहुँच कर उसकी नब्ज देखी, साथ ही उसकी चारपाई के नीचे देखा, जहाँ घोड़े की जीन, काठी और घोड़े के पांव की नाल पड़ी थी। यह सब देखकर उसने कहा- लगता है तुमने घोड़े बहुत खाए हैं, इसी वजह से तुम बीमार हो, यदि तुम घोड़े खाना छोड़ दो तो ठीक हो जाओगे। मरीज उस युवा हकीम की बात से हैरान रह गया और बोला आप तो हकीमों की तरह नहीं पागलों जैसी बात कर रहे हैं।

उस युवक ने वापस पहुँच कर जब अपना यह अनुभव बूढ़े हकीम को बताया तो वह भी हैरान हो गए और कहने लगे- इसीलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि सीखने की कोशिश करो, नकल करने की कोशिश मत करो। परम पूज्य गुरुदेव ने यह कथा प्रसंग सुनाते हुए कहा- हर काम में समझदारी जरूरी है, योग में भी। यही बात महर्षि पतंजलि कहते हैं कि विधियों में विवेक आवश्यक है। इस

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

योग कथा की पिछली कड़ी में कहा गया था कि सुखपूर्वक स्थिर बैठने का नाम आसन है। इसलिए आसन का चयन अपनी शारीरिक व मानसिक स्थिति को ध्यान में रखकर विवेकपूर्ण ढंग से करना चाहिए। आसन की स्थिति ऐसी न हो जिससे शरीर को तकलीफ हो और मन शरीर पर अटका रहे। बल्कि आसन ऐसा होना चाहिए, जिसमें मन देह से ऊपर उठ सके।

इसी सत्य का क्रमिक विस्तार करते हुए महर्षि कहते हैं-

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्॥ २/४७॥

शब्दार्थ= प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्= (उक्त आसन) प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त (परमात्मा) में मन लगाने से सिद्ध होता है।

भावार्थ= प्रयत्न की शिथिलता और असीम पर ध्यान लगाने से सिद्ध होता है।

महर्षि का यह सूत्र योग साधकों की साधना के लिए मूल्यवान है। वह कहते हैं कि प्रयास की शिथिलता-आसन के सन्दर्भ में विशेष स्थान रखती है। हठयोग में बताए गए कठिन, जटिल आसन राजयोग के अभ्यास के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य नहीं है। इसके लिए तो ऐसा आसन चाहिए जिसमें सुखपूर्वक बैठा जा सके, जिसमें शरीर को कष्ट न हो। शरीर सहज व सरल अवस्था में रह सके, जिससे कि मन देह के बन्धन व बाधाओं से मुक्त हो सके। इसके लिए प्रयास की नहीं, बल्कि नहीं प्रयास की जरूरत है। और यह काम थोड़ा कठिन किन्तु प्रभावकारी है।

जो भी इन पंक्तियों को पढ़ रहे हैं, उन्होंने अनुभव किया होगा कि रात्रि शयन के समय नींद नहीं आ रही है और उस समय नींद लाने का प्रयास किया जाय तो मुश्किल बढ़ती जाती है। प्रयास के साथ बेचैनी बढ़ती जाती है, जबकि प्रयास के शिथिल होते ही अनायास ही नींद आ जाती है। यही स्थिति आसन की भी होनी चाहिए, प्रयास रहित सुखपूर्वक बैठना। यही आसन की सफलता व सिद्धि है।

लेकिन यह बैठना निरुद्देश्य न हो, इस तथ्य पर महर्षि पतंजलि का विशेष ध्यान है। इसीलिए वह कहते हैं कि असीम पर ध्यान करना भी आसन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सिद्धि के लिए जरूरी है। असीम परमात्मा का स्वरूप है। परमात्मा के बारे में दो बातें हैं, एक वे बातें जो अलग-अलग पुस्तकों में, धार्मिक ग्रन्थों में लिखी हैं। इन बातों में ज्यादातर कोरी कल्पनाएँ हैं। इनका कोई खास महत्त्व नहीं है। दूसरी बातें अनुभव की हैं- जिसे भिन्न-भिन्न युगों में योगियों ने जाना है, अनुभव किया है। इन सबका महत्त्व है। इन सभी बातों में एक बात सामान्य है कि परमात्मा असीम व अनन्त है। वह इतना व्यापक है कि उसकी कोई धारणा सम्भव नहीं है।

धारणाएँ कितनी ही बड़ी क्यों न हो, पर वे सभी मन से छोटी होती है, तभी तो सब की सब मन में समा जाती है। मन उन्हें धारण कर लेता है, लेकिन परमात्मा अनन्त है- उसे मन किसी भी तरह धारण नहीं कर सकता, हाँ उसमें विलीन-विसर्जित जरूर हो सकता है। यह विलय-विसर्जन का प्रयास ही ध्यान बन जाता है। इसी से जीवन में आध्यात्मिक प्रकाश व परिवर्तन की घटना सम्भव हो पाती है। जब किसी योगी के जीवन में यह प्रयास परिपक्व होने लगता है तो वह देह के पार व परे हो जाता है। ऐसे में उसका आसन सहज सिद्ध हो जाता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

द्वन्द्वातीत बनाती है आसन सिद्धि

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग देह, प्राण व मन में आश्चर्यजनक बदलाव लाते हैं। इससे अस्तित्त्व के विभिन्न आयामों की रहस्यमयी एवं चमत्कारी शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं। मानव इन प्रयोगों की विविध प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ महामानव, देवमानव व अतिमानव के उन्नत शिखरों पर जा विराजता है। उसके पूर्व जीवन को देखकर उसे पहचानना मुश्किल हो जाता है। जो इसके विधि-विधान व प्रयोग-प्रक्रियाओं की वैज्ञानिकता को नहीं समझते वे हमेशा ही इसे नामुमकिन और असम्भव कहते रहते हैं। कुछ नासमझ तो इसे अवैज्ञानिक और कपोल-कल्पित कहने से भी नहीं चूकते। क्योंकि इन्हें इस सत्य का बोध ही नहीं है कि योग अपरा प्रकृति एवं परा प्रकृति के संयोग का समग्र विज्ञान है। इसमें जड़ व चेतन का दृश्य व अदृश्य का गठजोड़ है, जो अस्तित्त्व की समग्रता व जीवन की सम्पूर्णता से सुपरिचित है, वही इसके प्रयोग करने में सक्षम है।

पिछले सूत्र में आसन के रूप में ऐसे ही एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग की चर्चा की गयी थी। इसमें कहा गया था कि आसन प्रयत्न की शिथिलता और असीम पर ध्यान लगाने से सिद्ध होता है। महर्षि के अनुसार आसन न तो पूरी तरह से शारीरिक अभ्यास है और न ही व्यायाम। जो आसन को मात्र दैहिक क्रिया अथवा शारीरिक व्यायाम समझते हैं, वे महर्षि के मर्म को कभी नहीं समझ सकते। महर्षि तो आसन के माध्यम से देह की भौतिकी व इसकी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

रासायनिक प्रक्रियाओं में ऐसा परिवर्तन लाने के इच्छुक है, जिससे मानव चेतना देह से ऊपर उठ सके। इसके जटिल-कठिन बन्धनों से मुक्त हो सके। साथ ही परमात्म मिलन के लिए इसकी सूक्ष्म अन्तर्यात्रा सहज हो सके।

आसन से देह की भौतिक व रासायनिक स्थिति बदलती है, इसी का सुस्पष्ट संकेत महर्षि पतंजलि अपने अगले सूत्र में देते हैं-

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ २/४८ ॥

शब्दार्थ- ततः= उस (आसन की सिद्धि)से; द्वन्द्वानभिघातः= (शीत-उष्ण आदि) द्वन्द्वो का आघात नहीं लगता।

भावार्थ- जब आसन सिद्ध हो जाता है, तब द्वन्द्वों से उत्पन्न अशान्ति की समाप्ति होती है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र अपने गहरे अर्थ संजोये है। जिन्होंने भी महर्षि पतंजलि के सूत्रों के सत्य को स्वयं की योग साधना में अनुभव किया है, वे जानते हैं कि महर्षि सत्य को तल पर नहीं बल्कि अतल में देखते हैं। वे सतह पर नहीं गहराई में विचार करते हैं। उनकी एक मौलिक विशेषता यह भी है, उनकी दृष्टि एकांगी न होकर सम्पूर्ण-सर्वांगीण है। उनकी दृष्टि में आसन केवल शारीरिक अभ्यास की चीज नहीं, बल्कि सक्षम योग विधि है। इसका असर केवल शारीरिक मांसपेशियों व हड्डियों के जोड़ों पर नहीं बल्कि देह में विचरण करने वाले सम्पूर्ण प्राण प्रवाह पर पड़ता है। प्राण की डोर से ही तो तन और मन बंधे हैं। एक छोर पर तन है तो दूसरे छोर पर मन। तन की योग प्रक्रिया आसन है और मन की ध्यान। इनके बीच में है प्राण, जिसकी सम्यक् योग विधि प्राणायाम है।

यह बात कहने-सुनने में भले थोड़ी अटपटी सी लगे पर सच यही है कि आसन-प्राणायाम का स्थूलतम रूप है, जबकि ध्यान इसका सूक्ष्मतम रूप। जो आसन सिद्ध कर लेता है, वह शनैः-शनैः प्राणायाम भी साध लेता है। इसी तरह जो ध्यान की साधना करते हैं, वह प्राणों का भी नियमन-नियंत्रण कर लेते हैं। आसन सधते ही प्राण चेतना सधने लगती है, जबकि ध्यान सधते ही वह सिद्ध होने लगती है। यही वजह है कि आसन स्थिर होने पर देह सर्दी-गर्मी के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और मन सुख-दु:ख के द्वन्द्वों की पीड़ा से मुक्त हो जाता है। क्योंकि सारे द्वन्द्व तभी तक है- जब तक प्राण दो अतियों के बीच पेण्डुलम की भाँति डोलता है। जब प्राण ने मध्यम मार्ग अपना लिया, तब द्वन्द्वों की पीड़ा कैसी ?

इस प्रसंग में परम पूज्य गुरुदेव अपने जीवन का एक घटनाक्रम बताया करते थे। एक दिवस उन्होंने वार्ता के क्रम में अपनी हिमालय यात्रा के कथा प्रसंग सुनाये। १९७१ ई. में हुई उनकी हिमालय यात्रा कई अर्थों में रहस्यमय एवं महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने अपनी बात-चीत के क्रम में बताया कि इस यात्रा में उन्हें लगातार तीन दिन तक हिमालय के परम दिव्य क्षेत्र में महानतम ऋषि सत्ताओं के साथ रहने का अवसर मिला। इन तीन दिनों में ऐसी विशिष्ट घटनाएँ घटीं, जिनके प्रभाव आने वाले समय में मनुष्य दीर्घ अवधि तक अनुभव करेगा। इन तीन दिनों के बाद उनकी समर्थ गुरुसत्ता के वीरभद्र ने उन्हें पहल झपकते गोमुख पहुँचा दिया।

उन दिनों वहाँ पर एक उच्चकोटि के महात्मा रहते थे स्वामी कृष्णानन्द। ये कालजयी थे। इनकी आयु बहुत अधिक थी, पर थे सर्वथा स्वस्थ-प्रसन्न। ये प्राय: एक ही आसन पर पालथी मारे बैठे रहते थे। इनके शरीर पर कभी भी कोई वस्त्र न होता था। आहार भी ये यदा-कदा ही लेते। गोमुख की प्रबलशीत में भी ये अपना स्थान व आसन न छोड़ते थे। गुरुदेव ने बताया कि जब वह उनके सामने पहुँचे तो पहले उनने उनकी ओर मुस्करा कर देखा फिर धीरे से बोले- तुम्हारे गुरु ने तुम्हारे बारे में मुझे सब बता दिया है। वह तुम्हारे यहाँ आने से पहले यहाँ सूक्ष्म रूप से आए थे। तुम यहाँ निश्चिन्त भाव से रहकर अपनी साधना पूर्ण करो।

गुरुदेव ने उनकी ओर ध्यान से देखा। एक ही आसन पर लगातार सर्वथा दिगम्बर बैठे रहने से उनकी देह का रंग काला हो गया था। और उनकी जांघों का चमड़ा गुरुदेव के ही शब्दों में हाथी के चमड़े की तरह मोटा हो गया था। अपनी इस चर्चा में परम पूज्य गुरुदेव ने बताया कि उनके जैसा आसन सिद्ध महात्मा शायद ही कोई दूसरा हो। वह घण्टों या दिनों तो क्या महीनों व सालों तक एक ही आसन पर बैठे रहने में समर्थ थे। शीत-ऊष्ण, सुख-दु:ख आदि

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

द्वन्द्व उनकी छाया को भी छूने में असमर्थ थे। यूं तो वे प्रायः मौन रहा करते थे, परन्तु यदा-कदा थोड़ी सी बातें भी कर लेते।

गुरुदेव के प्रति उनका बड़ा स्नेह था। इसी स्नेहवश उन्होंने बताया कि काफी सालों पहले यहाँ पं० मदनमोहन मालवीय आए थे। वे भी उच्चकोटि के ऋषि आत्मा थे। उनके बहुत आग्रह पर उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के शिलान्यास के लिए आना स्वीकार किया था। इसके लिए उन्होंने मालवीय जी से एक शर्त रखी थी कि वह रात में आएँगे और शिलान्यास की ईंट रखकर रात में ही वापस हो जाएँगे। शिलान्यास करते समय मालवीय जी के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वहाँ नहीं होना चाहिए। गुरुदेव ने बताया कि मालवीय जी ने उनकी सारी बातें सहर्ष मान ली थी। ऐसे महात्मा के सान्निध्य में गुरुदेव कई महीनों तक रहे। इन महीनों में उन्होंने उन्हें अपने आसन का त्याग करते नहीं देखा। भूख-प्यास-नींद, शौच आदि क्रियाओं से वह कोसों दूर थे। इस घटनाक्रम का वर्णन करते हुए गुरुदेव ने बताया कि सचमुच ही आसन सिद्धि ने उन्हें द्वन्द्वातीत बना दिया था।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्राण की लय से बंधी जीवन की डोर

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग प्राण की प्रकृति को परिष्कृत कर उसे सर्वथा नवीन आयाम देते हैं। यह सत्य प्राणायाम की सर्वाधिक प्रचलित व्याख्या एवं परिभाषा से भिन्न है। प्राणायाम की सर्वप्रचलित परिभाषाओं एवं व्याख्याओं में प्राय: यही कहा जाता है कि इस प्रक्रिया का अर्थ प्राण का नियंत्रण है। लेकिन इस सामान्य अर्थ में न तो प्राण के परिष्कार का सच उजागर होता है और न ही उसके नवीन आयाम के प्रकट होने का। जबकि योग के अनुभवी साधक व सिद्ध अपनी योग साधना में इसी सच का अनुभव करते हैं। जिन्हें आधुनिक विज्ञान की सामान्य बातों का ज्ञान है, उन्हें यह पता है कि भौतिक पदार्थों का नाभिकीय विखण्डन ऊर्जा के महास्रोत को प्रवाहित करता है। और इस ऊर्जा प्रवाह से ऐसे असाधारण व चमत्कारी कार्य किए जा सकते हैं, जो पदार्थों की भौतिक स्थिति में किसी भी तरह सम्भव नहीं है।

आधुनिक विज्ञान के भौतिक अनुसन्धान यहीं तक सीमित है। इसके आगे उनकी गति नहीं है। परन्तु अन्तर्यात्रा विज्ञान के योग-प्रयोग इससे आगे के आयाम में सहजता से प्रवेश करते हैं। जिन्होंने ये प्रयोग किए उनके निष्कर्ष कहते हैं कि ऊर्जा प्रवाह का विखण्डन भी सम्भव है। इस विखण्डन की प्रक्रिया में ऊर्जा प्रवाह क्रमिक रूप से सूक्ष्म एवं चेतन होते जाते हैं। और क्रमश: इससे ज्ञान एवं चेतना के नए-नए आयाम प्रकट होते हैं। यह चमत्कारी ऊर्जा विखण्डन जिस रहस्यमयी प्रक्रिया से सम्पन्न होता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

है, उसे ही योग विद्या के विशारदों ने, अन्तर्यात्रा विज्ञान के वैज्ञानिकों ने प्राणायाम कहा है।

सम्पूर्ण जीवन को ध्यान से देखें तो पाएँगे कि प्राण ही इसका नाभिक है। प्राण के इर्द-गिर्द ही इसका ताना-बाना बुना है। जीवन कहीं भी, कि..ा तरह का क्यों न हो? प्राण ही इसका केन्द्र है। हाँ इतना अवश्य है, इसकी सचेतन समझ केवल मनुष्यों को है। इसके अलावा जीवन की विकास की अवस्था में मनुष्य ही इस स्थिति में है, जो प्राण का नाभिकीय विखण्डन करने में सक्षम है।

महर्षि पतंजलि का कहना है कि जो प्राणायाम की साधना करना चाहते हों उनके लिए जरूरी है कि पहले वे अपने शरीर को स्थिर करने के लिए आसन सिद्ध कर लें। क्योंकि आसन के माध्यम से देह में संचारित होने वाला स्थूल प्राण अथवा देह की भौतिक ऊर्जा का प्रवाह नियमित व सुसंचालित होता है। इसकी ऐसी स्थिति बन पड़ती है, जिसके आधार पर प्राण के अनूठे व नवीन प्रयोग किए जा सकें।

प्राणायाम की सामान्य विधि को स्पष्ट करते हुए महर्षि बताते हैं-

तस्मिन् सति श्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः॥ २/४९॥

शब्दार्थ- तस्मिन् सति= उस आसन की सिद्धि होने के बाद; श्वासप्रश्वासयोः= श्वास और प्रश्वास की; गतिविच्छेदः= गति का रुकना; प्राणायामः= प्राणायाम है।

भावार्थ- आसन सिद्धि के बाद का चरण है प्राणायाम। वह सिद्ध होता है श्वास और प्रश्वास पर कुम्भक करने से या अचानक श्वास को रोकने से।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र बड़ा अनूठा एवं अपने में मौलिक अर्थ संजोये है। परम पूज्य गुरुदेव का कहना था कि प्राण की डोर से ही अपने अस्तित्त्व के सभी घटक गुंथे हैं। प्राण के सूत्र में ही देह पिरोयी है, इसी में मन पिरोया है। इस डोर के टूटते ही सब कुछ बिखर जाता है। प्राण की इस डोर का परिचय हमारी आती-जाती श्वास से मिलता है। देह का रोगी अथवा स्वस्थ होना या फिर मन के बनने-बिगड़ने की स्थिति के अनुसार श्वास-प्रश्वास की लय भी बनती-बिगड़ती है। देह और मन में यदि व्याधि व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विकार हो तो श्वास की लय भी उखड़-बिगड़ जाती है। इसके विपरीत यदि शरीर व मन की स्थिति विकार रहित है तो श्वास की लयबद्धता भी बड़ी सुखप्रद रहती है।

गुरुदेव अपनी वार्ताओं में बताते थे कि सबसे पहले तो यह जरूरी है कि श्वास गहरी व लयपूर्ण हो। जो यह करने में समर्थ हैं अथवा जिन्होंने ग़हरी व लयपूर्ण श्वसन पद्धति को अपनी आदत बना लिया है उनके लिए प्राणायाम का पथ प्रशस्त है। इस क्रम में गुरुदेव एक बड़ी रहस्यपूर्ण बात बताते थे। उनके अनुसार जो गहरी व लयपूर्ण श्वसन विधि का अभ्यस्त हो गया है, उसके मन में कभी भी निराशा, अवसाद या उद्वेग, आवेग नहीं ठहरते। साथ ही ऐसा व्यक्ति बड़ी आसानी से अपने सामने बैठे व्यक्ति के प्राण व मन की लय के साथ स्वयं को एक करके उसके मनोभावों को आसानी से पहचान सकता है।

इसके आगे की मञ्जिल प्राणायाम है, जिसके लिए वह कहा करते थे- प्राणायाम का सही मतलब लोग जानते ही न्नहीं। प्राणायाम तो अखिल ब्रह्माण्ड के प्राण के साथ स्वयं को एकाकार करना है, उनके शब्दों में, प्राणायाम विराट् ब्रह्म के साथ-साथ श्वास लेने की कला है। समग्र अस्तित्त्व के साथ जीवन-जीने की विधि है। जब योग साधक विराट् ब्राह्मी चेतना के साथ श्वास लेना सीखने लगता है, तब उसकी जीवन ऊर्जा फैलती चली जाती है, पेड़ों-पहाड़ों, आकाश व सितारों के साथ। साथ ही खुलने लगते हैं उसके चिन्तन, चेतना व व्यक्तित्व के नए-नए आयाम। इस क्रम में एक घड़ी ऐसी भी आती है, जब व्यक्ति का व्यक्तित्व विराट् ब्रह्म के साथ तदाकार हो जाता है। उपनिषद् की शब्दावली में वह अनुभव करने लगता है- प्राणौ वै ब्रह्म।

परम पूज्य गुरुदेव ने इसके लिए सर्वजन सुलभ एक सरल विधि भी अविष्कृत की थी- प्राणाकर्षण प्राणायाम। इसका सम्पूर्ण विधान गायत्री महाविज्ञान के द्वितीय भाग में दिया गया है। इसे वहाँ पर विस्तार में पढ़ा जा सकता है। संक्षेप में यहाँ इतना ही कहना है कि इसमें प्राणायाम की अन्य विधियों की तरह जटिलता नहीं है। बस स्थिर हो कर सुखासन पर बैठ कर फेफड़ों में भरी सारी हवा को धीरे-धीरे बाहर निकालना है, फिर धीरे-धीरे

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्वास लेते हुए फेफड़ों को वायु से पूर्ण करना है। इसके बाद पुनः नासिका छिद्रों से वायु को बाहर निकालना है। और थोड़ी देर तक बिना श्वास के रहना है। इसी तरह से बाद में धीरे-धीरे श्वास लेते हुए फेफड़ों को पुनः वायु से पूर्ण करके फिर से बिना श्वास के रहना है।

इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के प्रत्येक चरण में परम ब्रह्म परमेश्वर के विराट् प्राण से सर्वथा एकाकार होने का भाव रखना है। इसकी सम्पूर्ण विधि गायत्री महाविज्ञान भाग दो में पढ़ी जा सकती है। जिन्होंने भी इस विधि को सम्पूर्ण भावना के साथ लगातार तीन वर्षों तक किया है, उन्होंने बड़ी ही चमत्कारी अनुभूतियाँ अर्जित की हैं। इस विधि में श्वास के अन्दर व बाहर जो ठहरने के पल हैं, जिसे योग सूत्रकार ने 'गतिविच्छेद' की संज्ञा दी है, वे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यही पल द्वार बनते हैं- विराट् को धारण करने का, उसमें स्वयं को समाहित करने का। इन्हीं पलों में प्राणायाम-चेतना के अन्य आयामों को अन्वेषित, अवतरित, उद्घाटित करता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

प्राणायाम के स्थूल भेद

महर्षि पतंजलि प्राणायाम के सत्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए अपने अगले सूत्र में लिखते हैं-

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टोदीर्घसूक्ष्मः ॥२/५०/॥

शब्दार्थ- बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्ति= (प्राणायाम) बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति और स्तम्भवृत्ति (ऐसे तीन प्रकार का) होता है; तथा वह; देशकालसंख्याभिः= देश, काल और संख्या द्वारा; परिपुष्टः= भली भाँति देखा जाता हुआ; दीर्घसूक्ष्मः= लम्बा और हल्का (होता जाता है)।

भावार्थ= प्राणायाम के तीनों भेदों, बाह्य, आभ्यन्तर व स्तम्भवृत्ति की अवधि व आवृत्ति देश, काल और संख्या के अनुसार ज्यादा लम्बी व सूक्ष्म होती जाती है।

महर्षि पतंजलि के इस अनूठे सूत्र में प्राणायाम प्रक्रिया के भेद, विधि व प्रभाव का स्पष्ट विवेचन है। इसलिए इस सूत्र के प्रत्येक बिन्दु को स्पष्टता से समझे बिना इसमें अन्तर्निहित सत्य व तत्त्व को नहीं जाना-समझा जा सकता है। इसे समझने के लिए इस प्रकरण में पहला बिन्दु है- १. बाह्यवृत्ति- इसे प्राणायाम प्रक्रिया का पहला भेद कह सकते हैं। इसके अन्तर्गत प्राणवायु को शरीर से बाहर निकालकर रोकना होता है। प्राणवायु को बाहर सुखपूर्वक रोकना, साथ ही इस सच का भी आकलन करना कि वह बाहर कहाँ ठहरा है, कितने समय तक के लिए ठहरा है और उतने समय में प्राण गति की स्वाभाविक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

संख्या क्या है ? इसे रेचक या बाह्यवृत्ति प्राणायाम कहते हैं। अभ्यास लगातार जारी रहे तो यह दीर्घ यानि देर तक अथवा काफी समय तक रूके रहने वाला और सूक्ष्म अर्थात् हल्का- अनायास साध्य हो जाता है।

इस प्राणायाम प्रक्रिया का दूसरा भेद २. आभ्यन्तर वृत्ति है- इसके अन्तर्गत प्राणवायु को भीतर ले जाकर भीतर ही जितने काल तक सुखपूर्वक प्राणवायु रुक सके रोके रहना होता है। इसे रोकने के साथ इस बात का भी आकलन करना चाहिए कि आभ्यन्तर देश में प्राण कहाँ जाकर रुका है। वहाँ कितने समय तक सुखपूर्वक ठहरा और उतनी देर में प्राणगति की स्वाभाविक संख्या क्या है ? इसे आभ्यन्तर प्राणायाम के साथ पूरक प्राणायाम भी कहते हैं। क्योंकि इसमें देह के अन्दर भाग में प्राण को रोका जाता है। इसका अभ्यास यदि निरन्तर जारी रहे तो यह धीरे-धीरे दीर्घ व सूक्ष्म होता जाता है।

इस भेद के बाद प्राणायाम प्रक्रिया का तीसरा प्रकार ३. स्तम्भ वृत्ति है- इसके अन्तर्गत प्राणगति को रोकने का अभ्यास किया जाता है। सामान्य क्रम में प्राणवायु स्वाभाविक रूप से शरीर से बाहर या भीतर आती-जाती रहती है। इस प्रक्रिया में इस स्वाभाविक क्रम को न करके प्राणवायु अपने स्वाभाविक क्रम से बाहर निकला हो अथवा भीतर गया हो, जहाँ भी हो उसकी गति को स्तम्भित कर देना (रोक लेना) और इस बात का आकलन करना कि प्राण किस देश में रुके हैं, कितने समय तक सुखपूर्वक रुके रहते हैं, इस समय में स्वाभाविक गति की कितनी संख्या होती है, यह स्तम्भ वृत्ति प्राणायाम है। सामान्य क्रम में इसे कुम्भक प्राणायाम भी कहते हैं। लगातार अभ्यास बनाये रखने पर भी दीर्घ व सूक्ष्म होता जाता है।

प्राणायाम की इन तीनों विधियों के द्वारा प्राण का परिशोधन-परिमार्जन व प्राण ऊर्जा का विस्तार होता जाता है। जो प्राणायाम का अभ्यास करने के उत्सुक हैं, उनके लिए परम पूज्य गुरुदेव का कहना था कि ऐसे लोगों को अपना आहार व दिनचर्या नियमित व नियन्त्रित रखनी चाहिए। जिनका खान-पान व दिनचर्या नियमित व नियन्त्रित नहीं है, ऐसों के लिए प्राणायाम के परिणाम बहुत सुखद व सुखकारी नहीं रहते। श्रीमद्भवद्गीता में योगेश्वर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

श्रीकृष्ण का कथन भी यही है, **''अपरे नियताहारः प्राणायाम परायणः''** अर्थात् अन्य प्रकार के साधक आहार को नियत व नियन्त्रित करके प्राणायाम का अभ्यास करते हैं।

प्राणायाम का अभ्यास यदि योग्य मार्गदर्शन में किया जाय तो अच्छा है। यदि ऐसा न हो सके तो गायत्री महाविज्ञान में बताये गए प्राणाकर्षण प्राणायाम के अभ्यास के साथ इसकी शुरूआत की जा सकती है। बाद में इसके निरन्तर अभ्यास से योग साधक की योग्यता का आधार विकसित होता जाता है। ऐसा होने पर बाद में जटिल-कठिन प्राणायाम को अभ्यास करना सम्भव हो जाता है। जो इसके अभ्यास में रत हैं, उन्हें यह सच आसानी से अनुभव हो जाता है कि इस साधना में धैर्य-नियमितता व निरन्तरता के साथ आहार-विहार पर कठोर अनुशासन अनिवार्य है। ऐसा होने पर प्राणायाम की चतुर्थ विधि के द्वार खुलने लगते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जानें प्राणायाम का उच्चस्तरीय भेद

जो योग साधक प्राणायाम की साधना में संलग्न है, जिन्होंने प्राणायाम की प्रक्रिया के सभी तीनों भेदों के रहस्य का सम्यक् ज्ञान पाया है, उनके लिए प्राणायाम का चतुर्थ भेद स्वत: ही अनुभूति में आने लगता है, क्योंकि यह प्राणायाम केवल उनके लिए है, जो काफी कुछ सूक्ष्म चेतना का संस्पर्श पा चुके हैं। जिन्हें परा प्रकृति की झलकियाँ मिलने लगी हैं।

प्राणायाम के इस भेद को महर्षि ने अपने अगले सूत्र में स्पष्ट किया है-

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थ: ॥ २/५१ ॥

शब्दार्थ= बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी= बाहर और भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला; चतुर्थ:= चौथा प्राणायाम है।

भावार्थ= प्राणायाम का चौथा प्रकार आन्तरिक है, यह पहले बताए गए प्राणायाम के तीनों भेदों के पार जाता है।

महर्षि पतंजलि के द्वारा कहा गया यह सूत्र सूक्ष्म चेतना के रहस्यों को स्वयं में समेटे है। जो योग की साधना के यथार्थ को समझते हैं, उन सभी को यह सच्चाई मालूम है कि योग का मकसद केवल उत्तम स्वास्थ्य तक सीमित नहीं है। इसका वास्तविक लक्ष्य चिन्तन, चेतना व चित्त का परिष्कार करते हुए कैवल्य ज्ञान को पाना है। और यह तभी सम्भव है जब योग साधक स्थूल जीवन और उसके भोगों से ऊपर उठे। इन्द्रियों तथा इनके विषयों की आसक्ति को पार करे। यह काम आसान नहीं है। सामान्य जनों की कौन कहे, उच्चकोटि के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

साधक तपस्वी भी अपने सारे जीवन के प्रयत्नों के बावजूद भी इसे कर पाने में असमर्थ रहते हैं। उनके इस प्रयास में कहीं न कहीं कोई संस्कार अथवा आसक्ति बाधा बनती रहती है।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में बताया करते थे कि ऐसी बाधाओं से तभी निबटा जा सकता है जब भावनाओं व विचारों में अच्छी धारणायें विकसित हों। भावों में भगवान् की भक्ति हो और विचार सकारात्मक व स्वच्छ हों। इसके लिए जरूरी नहीं कि व्यक्ति बहुत पढ़ा-लिखा व प्रतिभावान हो। अल्पशिक्षित अथवा अशिक्षित भी प्राणायाम के चतुर्थ प्रकार के प्रभाव परिणाम को पा सकते हैं। बस जरूरत भगवान में भावलीनता की है। यह भावलीनता बनी रहे और मन में प्रभु नाम मन्त्र का मनन होता रहे तो इस कठिन समस्या का आसानी से सुलझना सम्भव है।

इस प्रसंग में श्रीरामकृष्ण परमहंस की शिष्या व भक्त अघोरमणि देवी का साधना जीवन उल्लेखनीय है। अघोरमणि देवी को श्रीरामकृष्ण संघ में गोपालेर मां अर्थात् गोपाल की मां के नाम से जाना जाता था। अघोरमणि देवी बाल विधवा थी। कर्मवश उनका विवाह बचपन में हो गया। थोड़े ही समय में काल ने उन्हें विधवा बना दिया। उनकी ससुराल में और भी गहरी विपदाएँ आयी। उनका मायका भी इन विपदाओं से अछूता न रहा। लेकिन स्वयं उन्होंने इन सभी विपदाओं को अपने आराध्य का वरदान माना। और अपने रिश्ते में दूर के भाई के साथ एक मन्दिर में रहकर वह भगवान् श्रीकृष्ण के बाल रूप का ध्यान व गोपाल मन्त्र का जप करने लगी।

धीरे-धीरे उन्हें जप में प्रगाढ़ता होने लगी। हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण के बालरूप का ध्यान व मन में गोपाल मन्त्र का मनन। उनका यह क्रम प्रात: तीन बजे से दोपहर बारह बजे तक तथा पुन: दोपहर बाद तीन बजे से रात्रि बारह बजे तक चलता रहता। नियमित अठारह घण्टे की उनकी यह साधना वर्षों तक चलती रही। इस बीच उनकी श्वास की लय में प्राण की प्रक्रिया में अनेकों परिवर्तन हुए। पहले उनकी श्वांस की गति स्वयं ही धीमी व गहरी हुई। इसके लिए उन्होंने कभी कोई प्राणायाम नहीं किया। बाद के समय में उन्हें जप व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ध्यान करते हुए स्वत: ही अन्त:कुम्भक व बाह्य कुम्भक होने लगे। उनकी ध्यान व जप में लीनता इतनी गहरी हो जाती कि उन्हें इसका पता भी न चलता कि उनकी श्वांस कब अन्दर अथवा बाहर ठहर गयी है।

इसी तरह बिना किसी अन्य प्रयास के केवल जप व ध्यान के द्वारा उनका प्राण सूक्ष्म व दीर्घ होता गया। स्वाभाविक कुम्भक का स्वरूप भी निखरता गया। और धीरे-धीरे उनकी सूक्ष्म चेतना के द्वार खुलते गए। यहाँ तक कि उनको समाधि का अनुभव भी होने लगा। उनका यह अनुभव भी समय के साथ इतना परिपक्व व प्रगाढ़ हुआ कि उनके आध्यात्मिक व अलौकिक अनुभव लौकिक व सामान्य जीवन में प्रत्यक्ष होने लगे। उनके आराध्य बालकृष्ण उनके साथ अनेकों लीलाएँ करने लगे। कभी उनकी गोद में बैठते तो कभी उनसे माखन-मिश्री खाने का हठ करते। इतना ही नहीं उनकी परिष्कृत प्रज्ञा में तत्त्वज्ञान भी उदय होने लगा।

ऐसा इसलिए हो सका क्योंकि जप व ध्यान की प्रक्रिया की तीव्रता व प्रगाढ़ता में उनमें प्राणायाम का चतुर्थ प्रकार स्वाभाविक ही घटित हो गया। प्राणायाम की आन्तरिक विधि स्वाभाविक ही उनमें प्रकट व फलित हो गयी। और जैसा कि इस विधि में होता है, उनके बाहरी व आन्तरिक विषय छूटते गए। चिन्तन-चेतना व चित्त का स्वत: परिष्कार होता गया। और वह आध्यात्मिक लोक के आलोक में स्नात होती गयी। प्राणायाम की यह विधि किसी स्थूल विद्या के द्वारा नहीं बल्कि केवल सूक्ष्म मानसिक प्रक्रियाओं के द्वारा ही घटित व फलित हो पाती है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आवरणों से मुक्त हो चित्त

अन्तर्यात्रा विज्ञान में प्राणायाम के जिन प्रयोगों की चर्चा की गयी है, उनके परिणाम रहस्यमय एवं आश्चर्यपूर्ण हैं। अनुभवी योग साधकों का अनुभव यह प्रमाणित करता है कि प्राणायाम की प्रक्रियाएँ एवं विधियाँ अपने प्रभाव एवं परिणाम केवल देह के रोगों तक सीमाबद्ध नहीं रखती। शरीर की बीमारियों का निवारण तो बस इसके साधारण व सतही प्रभाव से ही हो जाता है। इसके यथार्थ व वास्तविक प्रभाव तो चेतना की सूक्ष्म परतों पर पड़ते हैं, जिसकी वजह से चित्त की अशुद्धियों का क्षय होता है, अन्तर्चेतना का अंधियारा हटता व मिटता है। संस्कारों की धूल झड़ती है, कर्मपाश कटता है। ऐसा होने की प्रक्रिया जितनी तीव्र होती है, उतना ही त्वरित गति से प्रकाश का आवरण हटता है और आत्मा की अमर ज्योति पूरे अस्तित्त्व में फैल जाती है।

पिछले सूत्र में प्राणायाम के सबसे अधिक उन्नत चौथे प्रकार की चर्चा करते हुए इसके रहस्यमय परिणाम की ओर संकेत किया गया था। प्राणायाम योग की ऐसी गहन प्रक्रिया है, जिसकी गहनता में सामान्य जन की कौन कहें, योगाभ्यासी भी कम ही प्रवेश कर पाते हैं। दरअसल इस सच की ओर कम ही लोगों का ध्यान जा पाता है कि प्राणायाम अपनी प्रक्रिया, प्रभाव एवं परिणाम में सतत् विकसित होते जाने वाली प्रयोग विधि है। इसका प्रारम्भ भले ही स्थूल देह एवं स्थूल प्रक्रिया से होता हो, परन्तु अपने विकास क्रम में यह उत्तरोत्तर सूक्ष्मता एवं सूक्ष्मतम हो जाती है। इसी का संकेत करते हुए पिछले सूत्र में कहा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

गया था कि बाहर एवं भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला चौथा प्राणायाम है। प्राणायाम का यह चौथा प्रकार आन्तरिक एवं मानसिक है।

इसके प्रभाव की चर्चा महर्षि पतंजलि ने अपने अगले योग सूत्र में की है-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्॥ २/५२॥

शब्दार्थ= ततः= उस (प्राणायाम के अभ्यास)से; प्रकाशावरणम्= प्रकाश (ज्ञान) का आवरण; क्षीयते= क्षीण हो जाता है।

भावार्थ= फिर उस आवरण का विसर्जन हो जाता है, जो प्रकाश को ढके हुए है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र योग साधना के कई आयामों को स्वयं में समेटे है। यह सूत्र इस सच को भली प्रकार सुस्पष्ट करता है कि मनुष्य की आत्मा का प्रकाश, कर्म जनित संस्कारों के आवरण से ढका हुआ है। ये आवरण हटे तो जीवन प्रकाशित हो, आत्मा की ईश्वरीय महिमा प्रकट हो। आवरण न हटने की स्थिति में मानव जीवन अंधेरों से घिरा है। जीवन की ये दोनों स्थितियाँ एक दूसरे के विपरीत है। यही वजह है कि जब मानव जीवन की चर्चा होती है तो दो विपरीत तरह की बातें कहीं और की जाती है। इन्हें सुनने वाला आम जन यही सोचेगा कि इनमें से सच तो कोई एक ही बात होगी। भला दोनों बातें किस तरह सही व सच हो सकती है ?

लेकिन जो तत्त्ववेत्ता हैं, जो मनुष्य के जीवन के समग्र सत्य व तत्त्व को जानते हैं, उनका कहना है कि दोनों ही चीजें सच हैं। पर अलग-अलग अवस्थाओं में। मनोविज्ञान की दुनिया में प्रख्यात् सी.एस. लेविस का कहना है कि मनुष्य उखड़ा जा रहा है। ऐसे ही ख्यातिनामा मनोविज्ञानी बी.एफ. स्किनर का कथन है- 'अच्छा छुटकारा है। जबकि साहित्यकार शेक्सपियर का हेमलेट मनुष्य के बारे में कहता है- कितना ईश्वर जैसा है।' इसके विपरीत पावलोव मनुष्य के व्यवहार की तुलना कुत्ते से करता हुआ प्रकारान्तर से यह सिद्ध करता है कि देखो मनुष्य कितना कुत्ते जैसा है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

ये दोनों ही बातें एक-दूसरे की पूरी तरह से विरोधी है। लेकिन जो समझदार हैं जिन्हें तत्त्व की सत्य की समझ है वे कहते हैं कि ये दोनों ही बातें सच है। यदि मनुष्य का चित्त, चिन्तन एवं चेतना आवरणों से घिरी है तो उसकी स्थिति कुत्ते जैसी नहीं, बल्कि कुत्ते से भी बदतर है। और यदि मनुष्य का चित्त, चिन्तन एवं चेतना आवरणों से मुक्त है तो वह ईश्वरीय है, बल्कि ईश्वर से भी ज्यादा महिमावान है। बात आवरण के होने और न होने की है। महर्षि पतंजलि का योगशास्त्र कहता है कि प्राणायाम की विधियों के सम्यक् प्रयोग से ये आवरण हटाए जा सकते हैं।

प्राणायाम की प्रक्रिया अपने प्रारम्भिक दौर में स्थूल शरीर में प्रवाहित होने वाले प्राण के प्रवाह को नियमित, नियन्त्रित एवं सुव्यवस्थित करती है। इसी के साथ प्राण परिशोधित तथा ऊर्ध्वगामी एवं अन्तर्गामी होने लगता है। प्राणायाम प्रक्रिया के विकसित एवं परिपक्व होने के साथ प्राण प्रवाह भी अधिक परिशोधित एवं ऊर्ध्वगामी एवं अन्तर्गामी होता जाता है। तब इसके प्रभाव की परिधि केवल देह की बीमारियों एवं मन के विचारों की उलट फेर तक सीमित नहीं रहती है। इसके प्रभाव का दायरा चित्त के कर्मबीज एवं उसके संस्कारों तक व्यापक होता जाता है। तब इसकी अन्तर्गामी एवं ऊर्ध्वगामी ऊर्जा चित्त के आवरणों का भेदन-उच्छेदन करती है।

इस प्रक्रिया में जैसे-जैसे चित्त के आवरण हटते जाते हैं, वैसे-वैसे आत्मा का प्रकाश अस्तित्त्व में छाता चला जाता है। चिन्तन एवं चेतना में ज्ञान के नए-नए आयाम प्रकट होते जाते हैं। इस प्रकरण में सबसे प्रभावी अनुभूति महर्षि अरविन्द के जीवन की है। जिसे प्राय: उनके सभी जीवनी लेखकों ने अपने-अपने शब्दों में निरूपित किया है। घटना प्रसंग उस समय का है जब श्रीअरविन्द बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ के कालेज आचार्य होने के साथ उनके निजी सचिव थे। उन दिनों उनकी महाराष्ट्रियन योगी विष्णु भास्कर लेले से मुलाकात हो चुकी थी। उनका अधिकतर समय अध्ययन-लेखन एवं साधना में व्यतीत होता था।

बड़ौदा निवास की इसी अवधि में उन्होंने प्राणायाम का नियमित

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अभ्यास किया। वह दीर्घकाल तक सुव्यवस्थित एवं नियमित तौर पर प्राणायाम करते रहे। इसके प्रभाव एवं परिणाम बताते हुए उन्होंने लिखा कि ऐसा करते हुए दीर्घ अवधि तक स्थिति जस की तस बनी रही। लेकिन बाद में अचानक मेरे अस्तित्त्व में प्रकाश की धाराएँ उमड़ पड़ीं। पहले के समय में मुझे कविता की पंक्तियों के बारे में काफी सोच-विचार करना पड़ता था। लेकिन प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास के बाद स्थितियाँ बदल गयी। अब तो कविता स्वतः अवतरित होने लगी। कुछ ऐसा हुआ कि बस मैं इस अवतरण का माध्यम बन गया।

इसके बाद उन्होंने और भी अनेकों परिवर्तन अनुभव किए। इन परिवर्तनों की अनुभूति दूसरे भी कर सकते हैं। प्राणायाम यदि सम्यक् रीति से किया जाता रहे तो अनेकों सूक्ष्म परिवर्तन घटित होते हैं। यहाँ तक कि यदि अभ्यास दीर्घ अवधि तक रहे तो समूचा जीवन ही रूपान्तरित होने लगता है। आवरण क्षीण होने के क्रम में मनुष्य की महिमा स्वतः प्रकट होने लगती है। उसकी ईश्वरीय झलक उसके चरित्र, चिन्तन एवं व्यवहार में झलकने लगती है। तब वह उपनिषद् के शब्दों में अमृत की सन्तान बन जाता है। उसकी ईश्वरीय विभूतियाँ जीवन में प्रकट हो जाती हैं।

-

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

तब मन धारण की योग्यता पा लेता है

अन्तर्यात्रा विज्ञान में कही गयी प्राणायाम की प्रयोग विधि रहस्यमय होने के साथ बहुआयामी भी है। इसके परिणाम देह में स्वास्थ्य का सकारात्मक परिवर्तन करने के साथ चित्त-चिन्तन एवं चेतना में अचरज भरा रूपान्तरण करते हैं। यह प्रक्रिया यदि निरन्तर जारी रहे तो तमस एवं रजस की अनेकों परतें टूटती हैं। इसी के साथ अस्तित्त्व में सात्त्विकता का संचार होता है। व्यक्तित्व में जितनी भी विसंगतियाँ एवं विकृतियाँ हैं, उन सभी के मूल कारण इन्हीं तमस व रजस की परतों में छुपे हैं।

सात्त्विकता प्रकाश का पर्याय एवं परिचय है। इसके विपरीत तमस अंधियारे का द्योतक है। रजस की अवस्था बीच की है। इसमें अंधियारा गाढ़ा व घना तो नहीं होता, परन्तु प्रकाश भी नहीं होता। चित्त-चिन्तन एवं चेतना में निषेधात्मक कर्मों, भावों एवं विचारों की जितनी गहरी परतें चढ़ती जाती हैं, सात्त्विकता क्षीण होती जाती है और अंधियारे का आवरण गहरा व घना होता जाता है। प्राणायाम की प्रक्रिया से यह आवरण देह, प्राण एवं मन से क्रमिक रूप से हटता-मिटता जाता है।

इसी क्रम से इसके परिणाम भी जीवन में उभरते हैं। जिन्होंने सही व सम्यक् विधि से प्राणायाम शुरू किया, उसे अपने जीवन में सबसे पहले स्वास्थ्य का वरदान प्राप्त होता है। उसकी देह अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ एवं कान्ति युक्त हो जाती है। शरीर के सभी अंग-अवयव सही व सुचारू रूप से

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

काम करने लगते हैं। प्राणायाम यदि सही व सम्यक् ढंग से नियमित व दीर्घकाल तक किया जाता रहे, तो न केवल परिस्थिति जन्य रोग ठीक होते हैं, बल्कि जटिल-कठिन प्रारब्ध जन्य रोग भी ठीक होने लगते हैं। दूसरे क्रम में इसके परिणाम प्राण के तल पर साहस, शौर्य आदि के रूप में उभरने लगते है। यह प्रयास यदि गहरा होता जाय तो स्वत: ही व्यक्ति व व्यक्तित्व में सद्भाव एवं सद्विचारों का विकास होता है। जो क्रमिक रूप से सद्ज्ञान व सद्विवेक के रूप में प्रकट होता है। प्राणायाम की दीर्घता व सूक्ष्मता प्राप्त होने पर एक अवस्था ऐसी भी आती है, जब तमस व रजस के आवरण क्षीण हो जाते हैं और सात्त्विकता का प्रकाश और उसकी प्रभा पूरे व्यक्तित्व में छा जाती है।

इसके प्रभाव की चर्चा महर्षि ने अपने अगले सूत्र में की है-

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ २/५३ ॥

शब्दार्थ= च= तथा; धारणासु= धारणाओं में; मनसः= मन की; योग्यता= योग्यता (भी हो जाती है)।

भावार्थ= और तब मन धारणाओं के योग्य हो जाता है।

महर्षि का यह सूत्र अपूर्व एवं अद्भुत होने के साथ कई सूक्ष्म सत्य स्वयं में संजोये है। धारण कुछ भी करना हो, उसके लिए आवश्यक है पात्र का होना। पात्र न हो तो प्राप्ति से भी वंचित रहना पड़ता है। प्रकृति एवं परिस्थितियाँ देना चाहे भी, अवसर भी सहज सुलभ हो जाय तो भी पात्र एवं पात्रता के बिना व्यक्ति को वंचित ही होना पड़ता है। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो प्राणायाम के प्रयोग से योग साधक सुपात्र बनता है, उसकी पात्रता विकसित होती है। यही पात्रता उसे धारणा के योग्य बनाती है।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में कहा करते थे कि प्रकृति पात्र को कभी वंचित नहीं करती है और कुपात्र को कभी कुछ मिलता नहीं। यदि संयोगवशात् कभी कुछ मिल भी जाय तो मिला हुआ टिकता नहीं। उनका कहना था कि कुछ लोग धारणा को एकाग्रता मान लेते हैं, पर ऐसा है नहीं। एकाग्र होने पर तो सिर्फ धारणा की झलक मिलती है। धारणा तो धारण करने की क्षमता है। कुछ वैसे ही जैसे कि विवाहित स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उनके द्वारा यह गर्भ धारण करना उनके गर्भाशय के शुद्ध, स्वस्थ होने की क्षमता पर निर्भर करता है। बस इसी तरह योग साधक के चित्त को भी शुद्ध एवं स्वस्थ होना चाहिए।

चित्त से जब तमस् एवं रजस की परतें टूटती हैं, जब कर्म संस्कार का व्यूह टूटता है, तो चित्त में एक रूपान्तरण घटित होता है। ऐसी स्थिति में चित्त की दशा उस गर्भ की भाँति हो जाती है, जो कि परमेश्वर का गर्भ धारण कर सके। तमस एवं रजस की अवस्था में यह सम्भव नहीं है। इसकी वजह यह है कि तमस में चित्त एवं चेतना में जड़ता व मूर्छा की स्थिति बनी रहती है। वह न तो स्वयं के प्रति सजग रहता है और न ही परिवेश व वातावरण के प्रति। ऐसी स्थिति में उसमें किसी भी सत्य या तथ्य को धारण करने की योग्यता नहीं रहती। रजस की अवस्था इससे भिन्न तो है, पर इस अवस्था में भी धारणा सम्भव नहीं है।

चित्त, चिन्ता एवं चेतना में जब रजोगुण छाया रहता है तो वासनाएँ, कामनाएँ एवं लालसाएँ पूरे अस्तित्त्व में हावी रहती है। संशय, सन्देह एवं भ्रम का जाल भी रह-रहकर कसता व जकड़ता है। ऐसी अवस्था में चित्त धारण तो करता है, पर निषेधात्मक एवं नकारात्मक सत्यों को प्रकाशित करने वाली बात उसे समझ में नहीं आती। सद्विवेक एवं सद्ज्ञान इसे आडम्बर लगते हैं। सारा समय स्वार्थ व अहंकार पूरा करने के लिए सोचते व जुगत लगाते बीतता है। इस अवस्था में जाग्रति तो है, पर दिशा नहीं है।

लेकिन जब प्राणायाम के प्रभाव से रजस व तमस की परतें टूटती हैं, तब स्थिति, अवस्था व दशा में चमत्कारी परिवर्तन होते हैं। जड़ता टूटती है, साथ ही वासनाएँ, कामनाएँ व लालसाएँ भी तिरोहित हो जाती हैं। सद्ज्ञान, सद्विवेक स्वत: ही जाग्रत हो उठते हैं। उच्चस्तरीय व आध्यात्मिक जीवन के प्रति जिज्ञासा जगती है। योग साधक की अन्तर्चेतना परिपूर्ण प्रकाशित हो उठती है। तब मन धारणा की योग्यता पा लेता है। ऐसी अवस्था में मन माँ की भाँति हो जाता है। माँ बच्चे को नौ महीने अपने भीतर धारण करती है, वह उसे बीज की भाँति सम्हालती है। सम्भवत: इसीलिए शास्त्रों में स्त्री को धरती भी कहा गया है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्योंकि वह बच्चे को धारण करती है, बच्चे के बीज को। ठीक उसी तरह जैसे कि धरती वृक्ष के बीज को महीनों तक धारण करती है। जब बीज धरती में निश्चिन्त हो जाता है, तभी उसकी खोल टूटती है और वह अंकुरित होता है। कुछ इसी तरह सात्त्विक चित्त भी प्रकाश व पवित्रता को धारण करने के योग्य हो जाता है। वह उच्चस्तरीय धारणा के बीज को भी सहेजता है। तप व ज्ञान एवं भक्ति से उसे सिंचित करता है। इसी के साथ धारणा का भी परिपाक होता रहता है। तप, ज्ञान व भक्ति की साधना गहराने के साथ धारणा परिपक्व होती जाती है। परिशोधि प्राण उसे पुष्ट करता रहता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

विक्षेपों से मुक्ति की राह

अन्तर्यात्रा विज्ञान में बतायी गयी प्रत्येक तकनीक का महत्त्व है। इन वैज्ञानिक सूत्रों में जो कुछ भी कहा गया है सब अनमोल है, बहुमल्य है। इन सूत्रों में कही गयी हर तकनीक प्रत्येक क्रियाविधि का सम्बन्ध चित्त के परिष्कार से है। सच तो यह है कि महर्षि पतंजलि के द्वारा निर्देशित प्रत्येक विधि, प्रत्येक प्रयोग चित्त की विशिष्ट व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है। साथ ही यह चित्त की वर्तमान अवस्था एवं वर्तमान व्यवस्था से चित्त की अपेक्षाकृत अधिक उन्नत व्यवस्था व अवस्था के लिए प्रवेश द्वार है। साधना की निचली कक्षा से आगामी उच्च कक्षा में उन्नति है। जो कुछ ज्यादा प्रकाशपूर्ण व ज्यादा उच्च है। जो साधक, सत्यान्वेषी या जिज्ञासु इस मर्म को समझते हैं, उनके लिए ऋषि पतंजलि एवं उनके सूत्रों को समझना अधिक आसान हो जाता है।

जो इस सत्य की अनदेखी करते हैं, वे यूं ही अटकते-भटकते रहते हैं। उनके द्वारा इन सूत्रों के सत्य, मर्म एवं निहितार्थ की खोज असम्भव हो जाती है। अनुभवी जनों की यही राय है कि योगऋषि पतंजलि द्वारा कही गयी हर तकनीक अपने स्वरूप, प्रभाव एवं इनकी विधि-व्यवस्था से क्रमिक रूप से जुड़ी हुई है। जैसे कि प्राणायाम का सम्बन्ध एक ओर आसन से है, तो दूसरी ओर प्रत्याहार से है। जो व्यक्ति शरीर से स्थिर व दृढ़ नहीं है, वह प्राणायाम की गहनता का स्पर्श नहीं कर सकता। इसी तरह जिसने प्राणायाम की प्रक्रिया के द्वारा नाड़ियों के

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मलों का शोधन नहीं किया, चित्त के आवरण को क्षीण नहीं किया वह प्रत्याहार के योग्य नहीं बन सकता।

प्रत्याहार के लिए मन का धारणा योग्य बन जाना जरूरी है। क्योंकि ऐसा मन इन्द्रियों की शक्तियों को स्वयं में पुनर्लीन करने में समर्थ है। इसी सत्य का संकेत पिछले योगसूत्र में किया गया था, इसमें बताया गया था कि प्राणायाम के प्रभाव से मन धारणाओं के योग्य हो जाता है। मन धारणा योग्य बन सके, यह काम आसान नहीं है। ऊपरी तल पर विचारों की अनगिन लहरों से मन चंचल रहता है। थोड़ा गहरे में यादों व आग्रहों के ढेर लगे रहते हैं। इससे भी कहीं गहराई में संस्कारों व कर्म राशि की परत है। ये सभी चित्त में आवरण बन छाये हुए हैं। इनमें से बहुत सी चीजें प्रकृति में एक दूसरे से समान भी है और विरोधी भी। ऐसे में जब भी किसी उपयुक्त एवं औचित्यपूर्ण विचार, भावना या छवि को धारण करने की कोशिश की जाती है, तो इन सबमें यदि एक हिस्सा उसका समर्थन करता है तो अनेक हिस्से इसके विरोधी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में विचार, भावना या छवि की धारणा का मन में टिक पाना कठिन और प्राय: असम्भव हो जाता है।

प्राणायाम की प्रक्रिया से उत्पन्न हुई परिष्कृत स्थिति में ये अवरोध बहुत न्यून हो जाता है। यहाँ तक चित्त इन्द्रियों की शक्तियों को पुन: वापस बुलाने की सामर्थ्य पा लेता है। इसी की चर्चा महर्षि ने अपने अगले सूत्र में की है-

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार: ॥ २/५४॥

शब्दार्थ= स्वविषयासम्प्रयोगे= अपने विषयों के सम्बन्ध से रहित होने पर; चित्तस्वरूपानुकार: इव= जो चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाता है, वह; प्रत्याहार:= प्रत्याहार है।

भावार्थ= प्रत्याहार का मतलब इन्द्रियों की शक्तियों का स्रोत में वापस लौट आना। यह मन की उस क्षमता की पुनर्स्थापना है, जिससे बाह्य विषय जनित विक्षेपों से मुक्त हो इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

महर्षि के इस सूत्र में योग साधना में आने वाली बाधाओं, उत्पन्न होने वाले विक्षेपों का समाधान है। जब तक बाहरी विक्षेपों से पीछा नहीं छूटता, न तो अन्तर्यात्रा सम्भव है और न अन्तर्चेतना के गर्भ में प्रवेश। यह कुछ ऐसी बात हुई जैसे कि कोई ध्यान कर रहा है, लेकिन उसका टेलीफोन भी उसी कक्ष में है। अब टेलीफोन तो बार-बार बजेगा, तो ऐसी स्थिति में ध्यान करने के लिए वहाँ से टेलीफोन हटाना होगा। यह तो बस एक उदाहरण है। हमारे अपने आस-पास ऐसी कितनी ही लाखों चीजें चल रही हैं। जब भी हम साधना करने की कोशिश करते हैं, मन का एक हिस्सा एक काम करने की सलाह देता है, तो दूसरा हिस्सा उसी समय किसी दूसरे काम को जरूरी बताने लगता है।

मन का यह भटकाव तभी रूकना सम्भव है, जब मन का उन संस्कारों, विचारों एवं यादों से पीछा छूटे जो कि इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में रस ले रहे हैं। यह रसासक्ति किसी प्रतिज्ञा या संकल्प से नहीं जाती। यह तो बस मन के परिष्कृत होने पर जाती है। यह जाती है मन में भगवान के प्रति प्रेम एवं भक्ति उत्पन्न होने से। ऐसा न हो सका तो बचपन हो या जवानी अथवा बुढ़ापा बात एक ही बनी रहती है। कभी तो मन स्वाद में ललचता है, तो कभी किसी रूप में उलझता है, तो कभी उसे कोई गन्ध खींचती है तो कभी उसे किसी के शब्द आकर्षित करते है। इस खींच-तान भरी स्थिति में न तो साधना सम्भव है और न ही किसी उच्चस्तरीय सत्य की धारणा।

यह तो तभी सम्भव है, जब इन विक्षेपों से पीछा छूटे। इसके लिए मन को प्रत्याहार की क्षमता पानी होगी। युगऋषि गुरुदेव कहते थे कि कोई राज्यपाल किसी प्रदेश में तभी तक राज्यपाल रह सकता है, जब तक कि उसे राष्ट्रपति का विश्वास प्राप्त है। यदि राष्ट्रपति अपनी शक्ति उससे छीन ले तो फिर वह सामान्य व्यक्ति से अधिक और कुछ भी नहीं। यही स्थिति मन व इन्द्रियों की है। मन की शक्ति से ही इन्द्रियाँ शक्ति सम्पन्न हो विक्षेप उत्पन्न करती हैं। यदि मन अपनी शक्ति को वापस लौटा ले तो फिर इनके विक्षेप निरर्थक हो जाते हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है जब मन का रस, मन की आसक्ति थोड़ी उन्नत, उच्चस्तरीय एवं ईश्वरीय हो। यह कहने-समझने से नहीं होता। इसके लिए

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अनुभव आवश्यक है।

तप एवं योग के प्रयोग से मन जैसे-जैसे स्वच्छ होता जाता है, वैसे-वैसे उसका इन्द्रियों से इन्द्रिय विषयों से रस जाता रहता है। भगवान के स्मरण एवं भक्ति से भी यह स्थिति बनती है। जीवन के कड़वे-कठिन अनुभव भी यदा-कदा अन्तर्विवेक को जगा देते हैं। अनुभव बता देते हैं, कि संसार व सांसारिकता में अटकना-भटकना व्यर्थ है। इसमें ठोकरों, चोटों के सिवा और कुछ भी नहीं। जीवन की सच्चाई यही है कि इन्द्रिय विषयों को कोई अपनी मर्जी, संकल्प या प्रतिज्ञा से नहीं छोड़ पाता। मन की अवस्था के बदलते ही ये स्वत: छूट जाते हैं।

इन बाहरी विक्षेपों का इस तरह त्याग हो जाने पर योग साधक स्वयं प्रत्याहार के योग्य हो जाता है। अब बाहर के संसार में उसे रस नहीं रह जाता। तब वह हजारों दिशाओं एवं हजारों चीजों के पीछे भागता नहीं है। अपने प्रिय परमेश्वर के स्वरूप में साथ ही अपने आत्म स्वरूप में उसकी सारी रसासक्ति केन्द्रित हो जाती हे। स्वयं में लय होने की आकांक्षा अन्य सारी आकांक्षाओं का स्थान ले लेती है। फिर सारी अटकन-भटकन, उलझन के फंदे स्वत: ही टूट जाते हैं।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण की दशा

अन्तर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग चेतना के अन्तर्प्रवाह की दिशा परिवर्तित करते हैं। सामान्य क्रम में जीवन चेतना का जो प्रवाह, इन्द्रिय द्वारों से बह कर जीवनी शक्ति का क्षय करता रहता है, उसकी दिशा और दशा योग के प्रयोग करने वाले साधक में परिवर्तित होने लगती है। इन्द्रियाँ दो ही कारणों से उत्तेजित, उद्वेलित व विक्षुब्ध होती हैं। इनमें से पहला कारण है विषय भोग के रूप में बाहरी उद्दीपक। ये उद्दीपक परिवेश में विभिन्न परिस्थितियों, घटनाक्रमों एवं अलग-अलग व्यक्तियों के माध्यम से उपजते रहते हैं। दूसरा कारण है अन्तःकरण के संस्कार, जिनका संचय अनेक-अनेक जन्मों में हुए कर्म के कारण हुआ है। वर्तमान जीवन एवं जन्म में भी यह प्रक्रिया अनवरत जारी है। अभी भी विभिन्न यादों व आदतों के रूप में हम इन्हीं का संचय कर रहे हैं।

इन्द्रियों के जो भोग वर्तमान अथवा अतीत के किसी जीवन में भोगे गए हैं, उनकी यादें और संस्कार बार-बार हमारी विचारधारा व भावना में अनेक लहरें पैदा करते रहते हैं। ये लहरें अपने गुण व प्रकृति के अनुरूप हमारे मनों में इच्छाओं को जन्म देती हैं। ये लहरें जितनी बलवती हैं, उसी के अनुसार हमारी इच्छाओं का वेग तीव्र होता है। यदि इच्छाओं के इस वेग में तीव्रता अधिक हुई तो व्यक्ति इसके अनुरूप इन्द्रिय भोगों को पाने के लिए इन्हें भोगने के लिए व्याकुल-बेचैन हो जाता है। वह इसके लिए अनेक तरह के अच्छे-बुरे सभी प्रयास करता है। यदा-कदा तो अपने इस प्रयास में वह

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सभी तरह की मर्यादाएँ-वर्जनाएँ भूल जाता है। भले ही इस कारण उसे कितना ही अपमानित, तिरस्कृत अथवा दण्डित-प्रताड़ित होना पड़े।

सम्भवत: इसीलिए समाज के नीति-नियामकों ने, आध्यात्मिक गुरुओं तत्त्ववेत्ता मनीषी जनों ने इन इन्द्रिय भोगों की निन्दा की है। बार-बार उन्होंने इन्द्रियों को बस में करने की बात कही है। विश्व की प्राय: सभी संस्कृतियों ने तथा दुनिया के हर कोने में बसे मानव समाज के सभी समूहों ने इसी उद्देश्य को लेकर अनेक नियमों-विधानों की रचना की है। प्राय: सभी धर्मों के द्वारा रचित शास्त्रों की स्थिति भी यही है। धर्म कोई भी हो पर इनके सभी शास्त्र अलग-अलग तरीके से इन्द्रियों को वश में करने का उपदेश देते हैं। लेकिन नियम-विधान हों अथवा उपदेशों की भरमार, पर स्थिति जस की तस है। सामान्य जनों की तो कौन कहे, इन सामाजिक नियमों को रचने वाले, धर्म उपदेश देने वालों में से अनगिन लोग स्वयं इन्द्रियों की लपेट-चपेट में अपनी प्राणशक्ति व जीवन संजीवनी को लुटाते रहते हैं। क्योंकि इन्द्रियों की वश्यता नियमों या उपदेशों से नहीं, बल्कि प्रत्याहार की क्षमता से होती है।

विगत् सूत्र में इसी सत्य की चर्चा की गयी थी। इस प्रकरण में योगऋषि पतंजलि ने बताया कि प्रत्याहार के प्रयोग से इन्द्रियों में विचरण करने वाली मानसिक शक्तियाँ पुन: अपने स्रोत की ओर वापस लौट जाती है। यह स्थिति सिद्ध होने पर बाहरी विषय जनित विक्षेपों से इन्द्रियाँ मुक्त हो जाती हैं। फिर जीवन चेतना का अन्तर्प्रवाह इन्द्रिय द्वारों से बह कर व्यर्थ में नष्ट नहीं होता। जीवन संजीवनी का क्षरण व प्राणशक्ति के क्षय की समस्या का भी स्वाभाविक समाधान हो जाता है। लेकिन यह सब होता तभी है जब योगी प्रत्याहार में प्रवीण हो जाए। सामाजिक नियम-विधान अथवा धार्मिक उपदेश इसे कर पाने में सदैव विफल रहते हैं।

प्रत्याहार की इसी चमत्कारी परिणाम व परिणति की चर्चा महर्षि पतंजलि ने अपने योग सूत्र में की है-

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्॥ २/५५॥

शब्दार्थ= तत:= उस (प्रत्याहार)से; इन्द्रियाणाम्= इन्द्रियों की; परमा= परम; वश्यता= वश्यता (हो जाती है।)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

भावार्थ= फिर (प्रत्याहार सिद्ध होने के बाद) समस्त इन्द्रियों पर पूरा वश हो जाता है।

महर्षि पतंजलि का यह सूत्र उनके द्वारा विरचित योग दर्शन के द्वितीय पाद- साधन पाद का अन्तिम सूत्र है। इस पाद में उन्होंने अनेकों प्रयोगों, अनेकों साधनाओं की चर्चा करने के बाद अन्त में इस सूत्र को प्रकट किया है। कुछ इस तरह से जैसे कि यह सूत्र साधनपाद के प्रयोगों का अन्तिम निष्कर्ष हो। उनके अनुसार यह अन्तिम निष्कर्ष है- इन्द्रियों की पूर्ण वश्यता। इस सूत्र में इन्द्रियों के साथ जोड़ा गया विशेषण परमा वश्यता बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। थोड़े-बहुत रूप में, आधे-अधूरे रूप में तो इन्द्रियों पर नियंत्रण किया जाता रहता है। कभी व्रत-उपवास से, कभी खान-पान के संयम से कुछ समय के लिए इन्द्रियाँ नियंत्रित हो जाती है। परन्तु जैसे ही यह संयम हटा फिर से इन्द्रियों की उच्छृंखलता, उद्दण्डता दिखाई देने लगती है।

युगऋषि परम पूज्य गुरुदेव अपनी आध्यात्मिक वार्ताओं में कहते थे व्रत-उपवास करने वाले साधकों को बीच-बीच में ऐसा लगता है जैसे कि उन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है। परन्तु यह होता है उनका निरा भ्रम। इन्द्रियों से बाहरी विषयों का छूट जाना इन्द्रियों का वशीभूत होना नहीं है। इन्द्रियाँ तो तब वशीभूत हो पाती हैं जब अन्तःकरण से चित्त भूमि से भोग के संस्कार मिट जाएँ। चित्त शुद्ध, स्वच्छ व परिष्कृत हो जाए। जब तक अन्तःकरण का, चित्त भूमि का परिमार्जन नहीं हो जाता तब तक इन्द्रियों को वश में करने के प्रयास निष्फल होते रहते हैं। और इनके द्वारा इन्द्रियों को वश में करने का केवल बार-बार भ्रम होता रहता है।

इस प्रसंग में उन्होंने बताया कि अखण्ड ज्योति संस्थान में उनके पास मध्यप्रदेश प्रान्त का एक युवक आया। वह युवक उच्चशिक्षित था। अच्छे पद पर सरकारी नौकरी करते हुए वह कई वर्षों से चान्द्रायण व्रत पूर्वक गायत्री साधना कर रहा था। उस युवक ने गुरुदेव से निवेदन किया मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। उत्तर में गुरुदेव ने कहा- तुम्हारे लिए अभी इसका समय नहीं है। इस पर उसने कहा- गुरुदेव मैंने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है। अब संसार

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। इस पर गुरुदेव मुस्कराए और बोले- बेटा! तुम्हारे विचार से संसार गया है, पर संस्कार से नहीं।

लेकिन उसने गुरुदेव की बात पर विशेष ध्यान नहीं दिया और अपनी बात पर अड़ा रहा। उसके इस बालहठ पर गुरुदेव हँसने लगे और बोले- तब ठीक है। परन्तु मेरी भी सुन लो- तुम आज से ठीक पाँच वर्ष बाद मेरे पास फिर से आओगे। लेकिन तब तुम्हारे साथ तुम्हारी पत्नी और एक वर्ष का पुत्र भी होगा। इस पर उसने बलपूर्वक कहा- यह किसी भी तरह से सम्भव नहीं है। इस घटना की चर्चा करते हुए गुरुदेव ने बताया कि वह युवक चला गया, समय भी बीतता गया। कुछ वर्षों बाद वही युवक फिर से उनसे मिलने आया। इस बार सचमुच ही उसकी पत्नी और एक वर्षीय पुत्र भी था। उसने गुरुदेव के चरण पकड़ लिए और क्षमा मांगी।

इस पर गुरुदेव ने कहा- बेटा! संसार को संस्कार से मिटाना पड़ता है। यह कठिन तप और गुरुकृपा से सम्भव है। जब संसार संस्कार से मिट जाता है, तभी सही अर्थों में प्रत्याहार सिद्ध होता है। चित्त भूमि से विषय भोग के संस्कार मिट जाने पर मन की शक्ति जो इन्द्रियों मं विचरण करती है, पुन: मन में वापस हो जाती हैं। जब संस्कार में ही विषयों की लालसा नहीं रहती तब बाहर का कोई इन्द्रिय सुख मन को, इन्द्रियों को आकर्षित नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति में इन्द्रियों का पूर्ण वशीकरण परम वश्यता सिद्ध हो जाती है। ऐसा न हो सके तो केवल इन्द्रियों के वश में करने का बस भ्रम होता रहता है।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org